प्रश्नोत्तरी

अभिलाष दास

प्रकाशक
कबीर पारख संस्थान

प्रकाशक

कबीर पारख संस्थान
संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद—211011
दूरभाष : (0532) 2436820, 2436020, 2436100
Visit us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo.com

पहली बार वि० सं० 2052, सन् 1995
छठीं बार वि० सं० 2066, सन् 2009
सत्कबीराब्द 611

ISBN : 81-8422-054-5

मूल्य : 100.00 रुपये

मुद्रक
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०
पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद

Prashnottari : ABHILASH DAS

भूमिका

प्राणिमात्र मूलत: एक समान ज्ञान-गुण सम्पन्न चेतन होते हुए भी देहोपाधि से सबकी योग्यताएं, जानने-समझने तथा ग्रहण करने की क्षमताएं अलग-अलग हैं। मानवेतर प्राणी तो जीवन-निर्वाह तथा प्रजनन के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर कुछ सोच ही नहीं सकते। मनुष्य में भी ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या है जिनके सोच का दायरा पेट और प्रजनन तक ही सीमित रहता है। परन्तु कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो इनसे ऊपर उठकर अन्य अनेक विषयों पर सोचते हैं और उन्हें समझने का प्रयास करते हैं।

किसी समस्या के समाधान के लिए या किसी विशेष बात को समझने के लिए दो ही मुख्य रास्ते हैं—एक तो स्वयं उस पर गहराई से चिंतन कर किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंचा जाये और स्वस्थ समाधान ढूंढ़ लिया जाये, दूसरा—किसी विवेकी-विद्वान पुरुष के पास विनम्रतापूर्वक जाकर उनके चरणों में बैठकर उसे समझा जाये। पहला रास्ता किसी विशेष प्रतिभासम्पन्न के लिए ही है, सामान्य मनुष्य तथा साधक के लिए दूसरा रास्ता ज्यादा सुकर होता है।

संसार में मुख्य दो समस्याएं या शंकाएं बड़ी जटिल हैं—मनुष्य का अपना अस्तित्व और मन। शेष सारी समस्याएं एवं शंकाएं इन्हीं के विस्तार हैं। जिन्होंने इन दोनों समस्याओं को सुलझा लिया या दोनों शंकाओं का समाधान कर लिया उनके लिए सारी समस्याएं सुलझ गयीं और उनकी सारी शंकाओं का समाधान हो गया। ऐसे ही महापुरुषों के सान्निध्य में रहकर अन्य मनुष्य भी अपनी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं।

यह पूरी पुस्तक प्रश्नोत्तर रूप में है। सन 1971 में जब 'पारख प्रकाश' का प्रकाशन शुरू हुआ तब उसमें 'शंका समाधान' एक स्तम्भ रखा गया। इस स्तम्भ में परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता रहा। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं सबका संकलन है। इसमें 'पारख प्रकाश' के सन 1971 से 1991 तक प्रकाशित 'शंका समाधान' का संकलन किया गया है। कुछ ऐसे प्रश्न जो विभिन्न जिज्ञासुओं द्वारा समय-समय पर पूछे गये, परन्तु जो एक ही विषय पर थे उन्हें एक ही बार रखा गया है

तथा कुछ प्रश्न जो सामयिक विषय पर थे सम्पादन करते समय उन्हें निकाल दिया गया है। इसमें कुल 1111 प्रश्नों के उत्तर हैं।

यद्यपि प्रयास यही किया गया है पुस्तक में पुनरुक्ति दोष न आने पाये, फिर भी यदि पाठकों को कहीं-कहीं पुनरुक्ति जान पड़े तो उन्हें उन विषयों का अभ्यास समझें तथा मधुकरवत गुणग्राही बनें।

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद विनम्र

श्रावण पूर्णिमा, वि० सं० 2052 **धर्मेन्द्र दास**

सद्‌गुरवे नमः

प्रश्नोत्तरी

1. प्रश्न—चेतन जीव शरीर से भिन्न और अजर-अमर है, इसका क्या प्रमाण है? और यह अप्रमाणित होने से पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग सब असिद्ध होते हैं।

उत्तर—हम अपनी देशी भाषा में तत्त्वों को चाहे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु नाम दें और चाहे वैज्ञानिकों द्वारा कथित ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, फास्फोरस आदि नाम दें—जिन तत्त्वों से शरीर की रचना हुई है वे सर्वथा जड़ हैं, उनमें चेतना के गुण-धर्म रत्ती भर भी नहीं हैं, यह वैज्ञानिक भी मानते हैं। जिन मूल द्रव्यों में जो गुण-धर्म न हों उनके सम्मिश्रण से वे गुण-धर्म आ जायें, यह सर्वथा असम्भव है। वैशेषिक सूत्रकार कहते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणोदृष्टः।

(वैशे० अ० 2, आ० 1, सू० 24)

अर्थात—उपादान कारण के सदृश ही कार्य में गुण देखे जाते हैं।

श्रीकृष्णजी भी गीता में कहते हैं कि 'असत्य का अस्तित्व नहीं हो सकता तथा सत्य का अभाव नहीं हो सकता।'

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥ गीता 2/16॥

तात्पर्य यह कि जिन जड़ तत्त्वों से शरीर बना है वे नितान्त जड़ हैं, अतएव उनसे बने शरीर में चेतना नहीं आ सकती। शरीर में चेतना है इसका तात्पर्य है कि उसमें चेतना गुण-धर्म वाला चेतन द्रव्य उपस्थित है।

"चेतना या ज्ञान का कोई आकार नहीं, वह शरीर से भिन्न रहकर अपने को प्रदर्शित नहीं कर सकता; इसलिए वह शरीर ही का विकार होगा, उसका आधार कोई स्वतन्त्र चेतन नहीं"—यह शंका अज्ञान से होती है।

शीतत्व और उष्णत्व का क्या आकार है? शरीर में ठण्डी-गरमी लगती है, वह आंख से कहां दिखती है? परन्तु शीतत्व-उष्णत्व रूपी धर्म जिस धर्मी में रहते हैं वे जल-अग्नि के परमाणु भी आंखों से नहीं दिखाई देते। हां, वे अनेक विरोधी तत्त्वों से संयोगवान तथा विकारी हैं, इसलिए उनमें कारण-कार्य होते रहने का प्रवाह है। अत: जब कार्यरूप में उपस्थित होते हैं तब दृष्टिगोचर होते हैं। वायु के कोमल धर्म तथा स्पर्श में भी कहां आकार दिखता है? वायु अत्यन्त घनीभूत होने पर भी वह नेत्र से दृश्यमान नहीं होता, परन्तु अपने गुण-धर्मों से अपना अस्तित्व प्रदर्शित करता है। जब हम जल में गरमी का अनुभव करते हैं तब जल में आग न दिखते हुए भी यह जान लेते हैं कि इस जल में आग मिली है। इसी प्रकार जब हम देखते हैं कि शरीर में चेतना है, ज्ञान है, तब हमें यह अनुभव हो जाता है कि इसमें चेतन जीव निवास करता है।

तार तथा बादल से विद्युत भिन्न वस्तु है, परन्तु बादल या तार का आधार न पाकर विद्युत का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता; इसी प्रकार शरीर-मन से चेतन जीव भिन्न वस्तु है, परन्तु शरीर और मन के बिना चेतन का प्रत्यक्षीकरण संसार के सामने नहीं होता। परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि चेतन देह का ही विकार है।

मूल तथा नित्य वस्तु वही है जो दूसरे से सर्वथा विलक्षण हो। चेतन इसी प्रकार है। चेतन का लक्षण किसी भौतिक तत्त्व में नहीं है, अतएव वह सर्वथा विलक्षण है। विलक्षण होने के नाते ही वह नित्य है।

जड़ से चेतन की उत्पत्ति असम्भव है और चेतन से जड़ की भी उत्पत्ति असम्भव है; क्योंकि दोनों के लक्षण विरोधी हैं और दोनों का अस्तित्व प्रत्यक्ष है। फिर केवल जड़ ही का नित्य अस्तित्व है चेतन का नहीं, यह मानना अज्ञान है। प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन, दृश्य-द्रष्टा, देह-जीव, भोग-भोक्ता—सर्वथा भिन्न हैं।

किसी की सत्ता स्वीकार-अस्वीकार करने वाला; जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति का द्रष्टा, समस्त जड़-पदार्थों का ज्ञाता यह परम और नित्य सत्य चेतन जीव ही है।

न हि कश्चित् सन्दिग्धे ऽहं वा न ऽहं वा इति। (भामती)

अर्थात किसी को यह सन्देह नहीं होता कि मैं हूं या नहीं हूं।

प्रिंसपल्स आफ फिलॉसफी (Principles of philosophy) में डेकार्ट (Descartes) ने कहा है—

I think therefore I am.

'मैं सोचता हूं, सन्देह करता हूं, इसलिए मैं हूं।'

जो सबको जानता है वह अपने आपको ठीक से नहीं जानता यही दुख की बात है। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं—

आपन पौ आपुहि बिसर्‍यो। (बीजक, शब्द 76)

जब जीव प्रकृति से भिन्न और सत्य है, तब पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग तथा बन्ध-मोक्ष स्वयमेव सिद्ध हैं। न जड़ की अन्तिम इकाई का नाश होता है और न चेतन का नाश होता है। पानी सूर्य की गरमी तथा वायु द्वारा बिखरकर आकाश में जाता है और लुप्त-जैसा हो जाता है, परन्तु वह नष्ट नहीं होता, वही समय से बादल बनकर वृष्टि के रूप में हमारे सामने आता है। जड़ तत्त्व की अन्तिम इकाई जो न नेत्र द्वारा देखी जा सकती है और न किसी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही, उसका भी नाश नहीं होता। यदि उसका नाश हो जाये तो संसार ही शून्य हो जाये। जो है वह नष्ट कैसे हो जायेगा? अतएव जड़-चेतन दोनों नित्य हैं। जड़ अपने स्वभावानुसार निरन्तर गतिशील है और चेतन वासना-वश पुनर्जन्म के चक्कर में घूम रहे हैं।

एक ही माता-पिता से एक ही स्थिति में जन्में हुए बच्चों के गुण, कर्म, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि में अन्तर क्यों होता है? यह सब पूर्वजन्मों की ही देन है।

वही पानी सूखता है, वही पुन: बरसता है और पुन: सूखता है। वही पर्वत घिस-घिस कर नदी में होता हुआ समुद्र को जाता है और तह पर तह जमता हुआ पुन: पर्वत बनता है और पुन: घिसता है। वे ही चांद-सूर्य-तारे रोज दिखाई देते हैं और नेत्रों से ओझल हो जाते हैं। इसी प्रकार वे ही जीव जन्म लेते अर्थात देह धारण करते हैं और पुन: छोड़ते हैं, पुन: देह धरते तथा छोड़ते हैं। संसार में कुछ मिट नहीं जाता और कुछ नया नहीं बनता। सब वही के वही रहते हैं।

पाप-पुण्य कर्मों के फल आज तो लगते ही हैं, परन्तु वे आज ही समाप्त नहीं हो जाते। उनके संस्कार जन्मान्तर में भी रहते हैं और फलित होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नाना गुण-कर्म और भोगों के संयुक्त संसार के प्राणी स्वयं हैं।

मनोमय बड़ा विलक्षण यन्त्र है। इसमें सब संस्कार संग्रहीत रहते हैं और वे अविनाशी जीव के साथ लगे रहते हैं। इनका नाश तभी सम्भव है जब जीव अपने स्वरूप को ठीक से समझकर जड़-वासनाओं की निवृत्ति करे और स्व-स्वरूप में स्थित हो जाये।

2. प्रश्न—शब्दादि विषय दृश्य, जड़, इदम हैं अत: वे अहम या परमतत्त्व नहीं हो सकते। फिर कहा गया है कि बोलता को ही परमतत्त्व समझो, तो बोलता शब्द जड़ है, वह परमतत्त्व कैसा? अत: परमतत्त्व का क्या स्वरूप है?

उत्तर—शब्द अवश्य जड़, इदम तथा दृश्य है, वह परमतत्त्व नहीं, परन्तु जो शब्द प्राणी के मुख से निकलता है वह चेतन की प्रेरणा से निकलता है, इसलिए साधारण लोगों को समझाने के लिए कहा गया 'बोलता को ही परमतत्त्व समझो।'

जो परमतत्त्व को खोजता है, वही परमतत्त्व है, परमात्मा की जिज्ञासा करने वाला ही परमात्मा है, जो मुक्ति चाहता है वही वास्तविक स्वरूप से मुक्त है। 'मैं' ही परमतत्त्व है, उसका शब्दादि विकारी विषयों से सम्बन्ध नहीं; परन्तु प्रकृति-सम्बद्ध तथा शरीरयुत होने से वही बोलता है ऐसा कहा जाता है। वास्तव में 'मैं' की प्रेरणा से ही ओष्ठ, तालू, दन्त में क्रिया होकर शब्दों का ध्वनन होता है। शब्द या वाक्य परमतत्त्व नहीं है, किन्तु जिसकी प्रेरणा से शब्द अर्थात वाक्य निकलता है वह परमतत्त्व है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जब लग बोला तब लग ढोला, तौ लौं धन ब्यौहार ।
ढोला फूटा बोला गया, कोइ न झाँके द्वार ॥

(बीजक, साखी 293)

अर्थात जिसकी प्रेरणा से बोल निकलती है वह बोलता चेतन जब तक शरीर में है तब तक शरीर-ढोल बजता है और धनादि का व्यवहार होता है। जब शरीर ढोला फूट गया और बोलता चेतन शरीर से निकल गया, तब कोई इस शरीर की इज्जत करने वाला नहीं।

उपनिषद् कहती है—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

(केन उपनिषद्, खण्ड 1, मंत्र 4)

अर्थात जो वाणी के द्वारा नहीं बताया गया है बल्कि जिससे वाणी बोली जाती है, उसको ही तू ब्रह्म जान। वाणी के द्वारा बताने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

सद्गुरु कबीर ने भी कहा—

जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि लेह।

(बीजक, साखी 35)

परमतत्त्व जिह्वा पर नहीं आता, उसे ज्ञान द्वारा परखो। सार यह है कि आप जिनको परखेंगे, जानेंगे, वह सब दृश्य, जड़, इदम होगा, और परखने वाला, जानने वाला ही अहम एवं परमतत्त्व होगा।

शरीर सम्बन्ध में चेतन बोलता है, ज्ञाता है, द्रष्टा है, अन्यथा प्रकृति सम्बन्ध से रहित शुद्ध स्वरूप से वह बोलता, द्रष्टा, ज्ञाता भी नहीं, अपितु निर्विकार चेतन है। वही मेरा अर्थात परमतत्त्व का वास्तविक स्वरूप है।

3. प्रश्न—एक ओर आप जीव को ही सब कुछ मानते हैं दूसरी ओर स्वभाव को भी अनादि कहते हैं तो जीव को न मानकर स्वभाव को ही क्यों न मान लिया जाये?

उत्तर—जड़-चेतन दो पदार्थ अत्यन्त स्पष्ट हैं। चेतन से जड़ की उत्पत्ति असम्भव है तथा जड़ से चेतन की उत्पत्ति भी असम्भव है; क्योंकि कारण के विरोधी गुण-धर्म कार्य में नहीं आ सकते। चेतन को ही जीव, आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म, राम, रहीम कुछ भी कह सकते हैं। चेतन ही देह सम्बन्ध में द्रष्टा, भोक्ता तथा ज्ञाता है और जड़ दृश्य, भोग्य तथा ज्ञेय है। ये दोनों एक कभी नहीं हो सकते। अतएव जीव को न मानकर स्वभाव को ही सब कुछ कैसे मान लें।

चेतन अपने ज्ञान-स्वभाव में पूर्ण है तथा जड़ अपने जड़त्व स्वभाव में पूर्ण है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त शक्तिशाली हैं।

जो जीव सबको जानता-मानता है उसको न मानने का प्रसंग ही नहीं आता। मेरे मुख में जिह्वा नहीं, मेरा पिता बालब्रह्मचारी है, केशव अपने कंधे पर चढ़कर नाचता था—ये वाक्य जैसे व्याघात दोषपूर्ण हैं, वैसे जीव को न मानने की बात है। जो सबको मानता है उसके अस्तित्व में सन्देह कहां!

4. प्रश्न—चेतन स्वतः पूर्णकाम तथा मंगलमय है तो यह अज्ञान का परदा कैसे? शोक-मोह क्यों? यह दुख किसने पैदा किया?

उत्तर—दुख, क्लेश, अज्ञान का परदा प्रत्यक्ष है, इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। परन्तु ज्ञान, विवेक, वैराग्य के पुरुषार्थ से इनका मूलोच्छेदन किया जा सकता है। द्रष्टा चेतन अपने अज्ञानवश प्रकृति की ओर आकर्षित होता है इसी से इसे नाना कष्ट होते हैं। यदि यह अपने मूल दिव्य स्वरूप को समझकर प्रकृति के मोह से विरत हो जाये तो इसके सारे कष्ट दूर हो जायें। बीड़ी, सिगरेट या जिस विषय को भोगने की हमारी आदत बनी है उसी में हम सुखी-दुखी होते हैं, परन्तु जिस विषय-भोग की आदत हमारे में नहीं है, उससे हम सर्वथा मुक्त हैं।

इस निरर्थक उधेड़बुन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि अज्ञान, दुख तथा शोक-मोह कब से और कैसे हैं? अपितु यह सोचना है कि इनका सर्वथा विनाश कैसे हो। वैसे अज्ञान तथा दुख अनादि ही मानना पड़ेगा। प्रश्न हो सकता है कि अनादि वस्तु मिटती नहीं, परन्तु कुछ ऐसी भी वस्तु है जो अनादि

होने पर भी मिट सकती है। जो मूलत: अनादि है वह नहीं मिटती और जो प्रवाह रूप अनादि हैं उनमें किसी-किसी वस्तु को मिटते देखा जाता है, जैसे बीज-वृक्ष प्रवाह रूप अनादि हैं, परन्तु जिस बीज को आग में भून दिया जाये उससे वृक्ष नहीं उग सकता। इसी प्रकार अज्ञान-बन्धन अनादि होने पर भी ज्ञान-वैराग्य द्वारा उनका सर्वथा उपशमन हो सकता है। दृश्य से उपरत होकर स्वत: द्रष्टा स्वरूप में अवस्थित होने पर अज्ञान तथा दुखों का अन्त है।

5. प्रश्न—गर्भ में मेरे शरीर को किसने बनाया? यदि मैंने बनाया तो अब उसे क्यों भूल गया?

उत्तर—गर्भ में शरीर बनने का अनादि नियम है। जीव का स्थूल शरीर तो छूट जाता है; परन्तु सूक्ष्म शरीर उसके साथ रहता है, जो मनोमय है। उसी में अनादिकाल से चारों खानियों के संस्कार चित्रित हैं। समय आने पर योग्यतानुसार शरीर का निर्माण स्वयं होता है। उसे कोई दूसरा बनाता नहीं।

वृक्षों में पत्तियां तथा पत्तियों में नसें कौन बनाता है? दर्पण में परछाई, मोरपंख में नक्काश कौन बनाता है? वे केवल अनादि नियम से बन जाते हैं।

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी विनय-पत्रिका में लिखते हैं—

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर, अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥
बिटप-मध्य पूतरिका, सूतमहँ कंचुकि, बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥

(विनयपत्रिका, पद 124)

अर्थ—एक मणि में भोजन, वस्त्र, पशु तथा विविध वस्तुएं भरी हैं। अर्थात एक मणि भुना लो और ये सब वस्तुएं खरीद लो। इसी प्रकार स्वर्ग-नरक तथा चर-अचर लोक सब मन में समाये हैं। अर्थात मन में निहित बीज-वासनानुसार जीव संसार में भटकता है। पेड़ में पुतली (मूर्ति) तथा सूत में कपड़ा बिना बनाये ही स्थित हैं। पेड़ को काटकर गढ़-छील देने पर पुतली बन जाती है और सूत को ताना-बाना के रूप में व्यवस्थित कर देने पर कपड़ा बन जाता है। इसी प्रकार अनादिकाल से जीव सभी खानियों में असंख्य बार गया है, अत: उनके संस्कार—बीज-वासना मन में चित्रित हैं। समय पाकर उन संस्कारों द्वारा शरीर का निर्माण स्वत: हो जाता है।

आंखों के ऊपर पलक लगने की बात जानबूझ करके नहीं करनी पड़ती है। अनादिकाल से आंखों पर पलकें हैं, अत: उनका निर्माण शरीर के साथ स्वत: होता है।

जब किसान खेत में बीज डालकर चला जाता है, तब पुन: वह उन बीजों को फोड़कर अंकुर निकालने नहीं आता। जल-मृत्तिका तथा अपनी पूरी योग्यता पाकर बीज में अंकुर स्वत: निकलते हैं और उनमें स्वत: पत्तियां आदि आती हैं। जब हम सोने चलते हैं, तब यह नहीं जानते हैं कि अमुक स्वप्न, अमुक प्रकार देखेंगे। जो पूर्व में देखा, सुना तथा भोगा है (चाहे उसका ख्याल हमें न हो परन्तु उसका गुप्त अध्यास मन में है) उसका स्वप्न अपने आप सोते समय आ जाता है।

इसी प्रकार अनादि नियम-कर्म स्वभावानुसार जीव जब गर्भ में जाता है, तब कर्म संस्कारानुसार स्वत: शरीर बनने लगता है। जीव को बनाना नहीं पड़ता। आम के बीज का जल-मृत्तिकादि से संयोग होने पर उसमें से आम के वृक्ष, पत्ते तथा फल-फूल होते हैं। कटहल के बीज से कटहल के वृक्ष, पत्ते, फल-फूलादि होते हैं। इसी प्रकार जीव के जैसे कर्म-संस्कार होते हैं, रज-वीर्य का सम्बन्ध पाकर सूक्ष्म-शरीर द्वारा रज-वीर्य से शरीर बनने लगता है और उसी प्रकार बनकर तैयार हो जाता है।

यदि यह मानें कि कोई ईश्वर होगा वही बनाता होगा, तो जिस ईश्वर को लोग सर्वत्र, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान तथा दयालु भी कहते हैं, क्या वह संसार में पाप और पीड़ा रहने देता! सर्वशक्तिमान होने से वह जीवों की बुद्धि तो बदल ही सकता है। यदि आपको ईश्वरत्व मिला होता, तो क्या आप संसार में पाप और पीड़ा रहने देते। जब हमारे महर्षिगण चाहते हैं कि 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' अर्थात सब सुखी हों, तब जो सर्वशक्तिमान है, वह कैसे नहीं चाहता? और यदि वह चाहता है तो उसकी चाहना की पूर्ति कैसे नहीं होती?

6. प्रश्न—पुरुष के वीर्य में शुक्र होते हैं, उन्हीं से गर्भ रहता है। ये जीवधारी हैं, इनमें भी नर-मादा होते हैं। ये भी आपस में सम्भोग करते होंगे, तो उनके भी रज और वीर्य में जीवाणु होते होंगे, क्योंकि वे भी जीवधारी हैं। इस प्रकार विचार करने पर यह श्रृंखला बहुत दूर तक जाती है। तो ऐसी दशा में उन जीवाणुओं में से किसको माना जाय कि इस जीवाणु का चेतन गर्भ में रहकर पिंड बना रहा है?

उत्तर—पुरुष के शुक्र में कुछ भिन्न ग्रंथि-कणों को नर-मादा मानना विज्ञान की अपनी एक अलग नर-मादा की परिभाषा है। उनके द्वारा भी सम्भोग मानना और पुन: उनमें भी जीवाणु की अगणित श्रृंखला मानना एक कल्पना है।

चाहे शुक्र में कितने ही जीव मानें, परन्तु शरीर तो एक ही जीव द्वारा बनता है। 'अब वह कौन जीव है?' तो जीवों का जीव या चेतन छोड़कर अन्य नाम तो हो सकते हैं, परन्तु उनकी कोई दूसरी जाति नहीं हो सकती। अतएव

किसी एक जीव द्वारा गर्भ में शरीर बनता है और उसके पैदा होने पर उस शरीर में एक ही जीव प्रतीत होता है।

अगणित चेतन जीव अविनाशी हैं और जड़ से पृथक हैं। जल में अग्नि के परमाणु मिले रहते हैं; किन्तु अग्नि के परमाणु जल नहीं हो जाते। इसी प्रकार जीव कहीं भी रहे, वह चेतन ही रहेगा और उसका अस्तित्व सबसे पृथक ही रहेगा। प्रत्यक्ष जीव शरीर धारण करता है और कर्म-वश सुख-दुख भोगता है। पवित्र कर्मों से प्रत्यक्ष सुख होता है और अपवित्र कर्मों से दुख होता है। यह जानकर पवित्र कर्म करने चाहिए।

*　　　　*　　　　*

7. प्रश्न—संसार में हिन्दू-धर्म ही कहता है कि मांस खाना पाप है और मांसाहार छोड़ देने से मुक्ति है। संसार के नब्बे प्रतिशत लोग मांस खाते हैं, शेष दस प्रतिशत शाकाहारी होंगे, तो क्या इसी दस प्रतिशत का कल्याण होगा?

उत्तर—हिन्दू-धर्म यह बताता है कि मांसाहार पाप है यह बात ठीक है, परन्तु इसलामी, इसाई, यहूदी, पारसी आदि यह नहीं बताते कि मांसाहार पुण्य है। संसार के समस्त धर्मों के आचार्यों में से मांसाहार को किसी ने उत्तम नहीं कहा है। इन पंक्तियों के लेखक ने जिन इसलामी तथा इसाई बन्धुओं से बातचीत की, वे सभी मांसाहार का समर्थन करते हुए नहीं मिले।

धर्म की परिधि से जो लोग पृथक हैं, वे भी ठण्डे दिल से विचार करेंगे तो उनको भी यही प्रतीत होगा कि मांसाहार करना मानवता नहीं है। विशेषज्ञों ने बताया है कि मनुष्य की पाचन-प्रणाली मांसाहार के अनुकूल नहीं है। मांस गरिष्ठ होता है, अशुचि होता है तथा रोगमय होता है। 'शरीरं व्याधि मन्दिरम्' के अनुसार तथा प्रत्यक्ष अनुभव से यह जाना जाता है कि प्राणिमात्र के शरीर में कोई-न-कोई रोग रहता है। जिस प्राणी के शरीर का मांस मनुष्य खाता है, उसके रोग भी मांस के साथ मांसाहारी में आते हैं।

किसी रोगी व्यक्ति को वैद्य-डाक्टर यही राय देते हैं कि आप साग-सब्जियों के बागों में, उपवनों में प्रातः-सायं घूमा करें। यह कोई नहीं कहता कि मांस की मण्डियों तथा बूचड़खानों में घूमा करें। अन्न, साग-सब्जी आदि देखने से ही प्रसन्नता उत्पन्न होती है, परन्तु मृत पशु तथा मछली आदि का अपवित्र शव देखकर ही मनुष्य का मन घृणा से भर जाता है। उसे कपड़े आदि में छिपाकर लाता है, कहीं एकांत में बनाता है और उसे खाने के पश्चात भी पात्र, हाथ, मुंह आदि दुर्गन्ध से भरे रहते हैं और उस दुर्गन्ध को दूर करने लिए कितने लोग साबुन, इतर आदि का प्रयोग करते हैं।

जहां मांस की मण्डियां होती हैं वहां का दृश्य कितना भयावह तथा घृणास्पद होता है, परन्तु क्या साग-सब्जियों की मण्डियों में भी ऐसी घृणा-भावना आ सकती है? साग-सब्जियों का बाजार तो मनोरम लगता है। प्रत्येक प्राणी का आहार वही है जिसको देखकर प्रसन्नता से मन भर जाये, परन्तु क्या रुधिर से सने हुए घृणित मांस को देखकर प्रसन्नता आ सकती है?

किसी के घर में जब कोई मर जाता है, लोग उसका घर तक अशुद्ध मानते हैं। बिना शुद्धि हुए उसके घर में कोई भोजन नहीं करता; परन्तु उन्हीं लोगों में से बकरे, मुरगे, मछली आदि को मारकर और उन मुरदों को मुख से चबाकर पेट में भर लेते हैं तो भी वे अपने को अशुद्ध नहीं मानते, क्या यह निरा अविवेक नहीं है?

एक बार जार्ज बर्नाड् शॉ अपने सम्बन्धियों के यहां थे। उनके लिए टेबल पर भोजन की सामग्री सजा दी गयी। जब वे टेबल पर पहुंचे और भोजन देखे तो उसमें मांस भी था। वे चुपचाप बैठे रह गये। घर का स्वामी आकर बोला—"आप भोजन क्यों नहीं करते?" जार्ज बर्नाड् शॉ तुरन्त बोल पड़े—"माई स्टमक इज़ नाट ए ग्रेवयार्ड दैट आई शैल ईट डेड बॉडीज़" अर्थात "मेरा पेट कब्रस्तान नहीं है कि मैं मुरदे खाऊं।"[1]

संसार के जितने प्राकृतिक चिकित्सक हैं, एक स्वर से कहते हैं कि मांस, अण्डा, मछली, शराब, ताड़ी, गांजा, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट अर्थात मांस-नशा की सभी वस्तुएं मानव प्रकृति के सर्वथा विपरीत हैं। और वे केवल कहते ही नहीं हैं प्रत्युत आचरण करते हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि के भी प्राकृतिक चिकित्सालयों में मांस, अण्डा, मछली तथा नशीले पदार्थों का सर्वथा वर्जन है।

इसाई धर्मावलम्बी प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक एडोल्फ जस्ट् ने 'रिटर्न टु नेचर' में मांसाहार का सविस्तार खण्डन किया है। इसका अधिकांश हिन्दी अनुवाद मैंने अपनी बीजक व्याख्या के सैतालीसवें शब्द में दिया है। यहां केवल कुछ पंक्तियां दी जा रही हैं—

"प्रकृति के प्रांगण की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि केवल मांस खाने वाले प्राणी हत्या करते हैं। प्रकृति मांसाहारी में हत्या की इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्य ने अपने पतन के बाद पहला या यों कहिये कि एक ही बुरा काम किया था, वह था हत्या—भातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य के पतन का कारण मांसाहार है अन्यथा हत्या का यहां कोई अर्थ नहीं है।

---

1. **My stomach is not a graveyard that I shall eat dead bodies.**

ऐसी स्थिति में ईसा मांस कैसे खा सकते थे। ईसा सबसे अधिक मृदुता और दया की शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वर की आवाज के विरुद्ध मनुष्य को राक्षस बनाने वाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करने में दया को एकबारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है। यह कार्य ईसा की दया का विरोधी होता, वह हत्या के पाप से मुक्त नहीं हो सकते थे। भला, ईसा शरीर और आत्मा को रुग्ण बनाने वाले, पाप और दोष में फंसाने वाले मांस को स्वीकार कर सकते थे?

तौरेत के अनुवाद में की गयी गलती के समान ही बाइबिल के अनुवाद में भी गलती मिलती है। प्राचीन समय में लोग मांस खाने के पाप के प्रायश्चितस्वरूप देवताओं की शान्ति के लिए पशु बलि दिया करते थे। इतिहासकारों का कहना है कि एसेन जाति के लोग जिनसे ईसा सम्बद्ध थे, पशु-बलि नहीं देते थे। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि वे मांस भी नहीं खाते थे। धर्मशास्त्रियों की भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि वे लोग पशु की बलि नहीं चढ़ाते थे, मांस नहीं खाते थे, ईसा और उनके शिष्यों ने कभी कोई बलि नहीं दी। उन्होंने तो पशु-बलि का निषेध भी किया है—

''मुझे दया चाहिए, बलि नहीं।''

लोग बकरियों, मुरगियों, भेड़ों को पालते हैं। उन्हें गोद में खेलाते, चूमते और प्यार करते हैं; परन्तु अपनी जिह्वा के स्वाद में पड़कर वे ही लोग उन मूक, निरीह पशु-पक्षियों के ऊपर छूरी चलाते हैं। क्या ऐसे लोग मानव कहला सकते हैं? आपकी उंगुलियों को कोई तोड़े, आंखें फोड़े तथा शरीर में सुई चुभोये तो आपको कितनी पीड़ा होगी, इसका आप सहज अनुमान कर सकते हैं। क्या इसी प्रकार दूसरों की पीड़ा आप नहीं समझ सकते? अपने तुच्छ जिह्वा-स्वाद के लिए क्या दूसरे को पीड़ा देना उपयुक्त है।

लोग कहते हैं ''मांस में प्रोटीन विशेष होता है।'' वास्तव में जो प्रोटीन या विटामिन (जीवन सत्व) साग-सब्जियों में होता है वह मांस में हो नहीं सकता। पशु साग-सब्जियों द्वारा विटामिन प्राप्त करते हैं और मनुष्य उसे विकृत रूप में पशु के मांस द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता है। क्या ही अच्छा होता मनुष्य विटामिन प्राकृतिक रूप से साग-सब्जियों द्वारा ही प्राप्त करता।

आजकल प्रोटीन या विटामिन का बड़ा मोह है। आजकल प्राय: पढ़े-लिखे लोग दाल-भात-रोटी-साग आदि नहीं खाते, अपितु विटामिन खाते हैं। उन्हें कह दिया जाये कि अन्न की अपेक्षा भूसा में अधिक विटामिन होता है तो सम्भवत: वे अन्न को छोड़कर भूसा ही खाने लग जायें।

प्रोटीन या विटामिन कितना ही खाया जाये, परन्तु जब तक उसकी रक्षा नहीं की जायेगी, खाने का कोई फल नहीं है। आज का विमोहित मानव प्रोटीन या विटामिन के मोह में पड़ा हुआ अण्डा-मांस-मछली आदि सभी अभक्ष्यों का सेवन करता है, परन्तु प्रोटीन या विटामिन का जो सारभूत तत्त्व वीर्य है उसकी रक्षा करने का किंचित ध्यान नहीं है। जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जायेगा, सैकड़ों विटामिन वाली वस्तुओं को खाने का फल शून्य ही होगा और ब्रह्मचर्य पालन करने वाले व्यक्ति के लिए सामान्य आहार से ही पर्याप्त शक्ति संचित हो जाती है।

यह ठीक है कि संसार के सभी लोग पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हो सकते, परन्तु गृहस्थी में रहकर जितना सम्भव हो सकता है उतना तो करना ही चाहिए। गृहस्थ को केवल सन्तान के लिए ब्रह्मचर्य का स्खलन करना उचित कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसको भी हर समय ब्रह्मचारी[1] रहना चाहिए। यहां का मुख्य विषय तो यह है कि प्रोटीन या विटामिन के मोह में पड़कर मांस आदि अभक्ष्य का सेवन नहीं करना चाहिए, प्रत्युत विटामिन की रक्षा करनी चाहिए। अर्थात वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार केवल हिन्दू ही मांसाहार को बुरा कहते हों, ऐसी बात नहीं। विश्व के सभी देश, जाति तथा संप्रदाय के समझदार लोग मांसाहार को उचित नहीं कहते, प्रत्युत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अब रही यह बात कि संसार के अधिकतम लोग मांसाहारी ही हैं, शाकाहारी बहुत कम हैं, तो इस तर्क में क्या सार है? क्या जिस काम को संसार के अधिकतम लोग करें वह उचित हो सकता है? क्या यह भी विधान-सभा का चुनाव है, जिसमें बहुमत से विजय मिलती है? संसार में पूर्ण सत्यवादी अत्यन्त कम हैं, तो क्या इसी से सत्य की अप्रतिष्ठा तथा असत्य की प्रतिष्ठा हो जायेगी? पत्थरों के विशाल पर्वत होते हैं और हीरे कहीं-कहीं मिलते हैं, परन्तु जो मूल्य हीरे का है, क्या पत्थर का हो सकता है?

"क्या मोक्ष या कल्याण मांस न खाने वाले को ही मिलेगा?" तो भाई, केवल मांसाहार का त्याग ही मोक्ष का पूर्ण साधन नहीं है। वह तो एक साधन है। मांसाहार के त्याग के साथ-साथ शम-दम, विवेक-वैराग्य आदि मुख्य साधनों की आवश्यकता है। पहले तो मनुष्य हिंस पशु-स्वभाव प्रिय मांसाहार आदि अभक्ष्य का त्याग करे और मनुष्य के गुण धारण करे, फिर वह अन्य मोक्ष-साधनों को भी प्राप्त कर सकेगा।

---

1. **'ब्रह्मचर्य जीवन' नाम की पुस्तक पढ़ें, कबीर संस्थान इलाहाबाद से प्रकाशित है।**

आत्म-कल्याण के लिए मांसाहार जैसी घृणित वस्तु का सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा। जो मांसाहार जैसा घिनौना व्यवहार भी नहीं छोड़ सकता, उसको अपने कल्याण की आशा करना व्यर्थ ही है।

* * *

8. प्रश्न—संचित कैसे बच रहता है?

उत्तर—कर्म-भूमिका मनुष्य-शरीर है। मनुष्य-शरीर में जितने कर्म बन जाते हैं, वे बहुत होते हैं। शरीर छूटने पर कुछ ही कर्मों के भोगने योग्य अगला शरीर बनता है। दो-चार पशु आदि शरीरों के धरने के बाद यदि जीव किसी कर्म-संस्कारवश पुन: मनुष्य शरीर में आ गया तो कुछ अभुक्त कर्म संचित रूप में रह जाते हैं। किसान ने फसल काटकर अन्न घर में रख लिया। अगली फसल तैयार हो गयी और पहले का अन्न अभी सब खाकर समाप्त नहीं हुआ तो संचित रहेगा ही। रहा, अनादिकाल से जो विषयों की वासनाएं तथा देहासक्ति है, यही मुख्य संचित है। यह सब जीव के पास है, यही मुख्य बन्धन है। इसके मिट जाने पर जीव सभी प्रकार के कर्मों से मुक्त हो जाता है। संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण कर्म, जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति आदि को समझने के लिए 'कबीर दर्शन' तथा 'रहनि प्रबोधिनी सटीक' पढ़ना चाहिए।

9. प्रश्न—'जहिया जन्म मुक्ता हता.....।' जब जीव कभी मुक्त था, तो बन्धन में कैसे आया?

उत्तर—जीव का शुद्ध स्वरूप मुक्त रूप अवश्य है; परन्तु देह बन्धन से जीव कभी मुक्त नहीं था। बन्धन अनादि है। 'जहिया जन्म मुक्ता हता।' की साफ व्याख्या 'बीजक पारख प्रबोधिनी व्याख्या' में देखें।

10. प्रश्न—यह हम कैसे जानें कि अमुक जीव मुक्त हो चुका है?

उत्तर—दूसरे मुक्तों को जानने का तरीका है अपने को मुक्त करना। जो जीते जी सब विषयों से अपनी मुक्ति कर लेता है, वह विदेहमुक्ति को समझ लेता है, जो विदेहमुक्ति को समझ लेता है, वह अन्य मुक्तों के लक्षणों को भी अपनी स्थिति से जान लेता है। रसगुल्ला कैसा होता है, यह स्वयं खाने से पता चलेगा।

11. प्रश्न—जीव निराकार है कि साकार? साकार है तो क्या आकार है?

उत्तर—निराकार का अर्थ शून्य होता है। जीव शून्य नहीं, अत: निराकार नहीं। जड़ तत्त्वों के समान वह स्थूल आकार वाला भी नहीं। जीव वस्तु है,

भाव है, तो द्रव्य अवश्य है; क्योंकि द्रव्य में ही गुण रहता है और जीव में ज्ञान गुण है। अत: जीव का आकार अवश्य हुआ, भले वह अदृश्य है। जब जड़ तत्त्व वायु तक अदृश्य है तब जीव के अदृश्य होने में आश्चर्य क्या? अतएव जीव का ज्ञान ही आकार है, ज्ञान ही गुण है।

12. प्रश्न—एक जीव दूसरे को क्यों नहीं देखता?

उत्तर—जीव अदृश्य है वह दृश्य कैसे होगा, तुम जड़ नेत्र से ही तो जड़ रूप-विषय को देखते हो। जीव की तो बात ही छोड़ो, तुम शब्द, स्वाद, स्पर्श और गन्ध ही को नहीं देख पाते हो।

13. प्रश्न—मुक्त जीव चलता है कि अचल है?

उत्तर—मुक्ति अवस्था में चंचलता का प्रश्न ही समाप्त है। मुक्त जीव अपने स्वरूप में ही अवस्थित रहता है। उसकी जड़-प्रकृति से सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। इसको विस्तार से समझने के लिए 'रहनि प्रबोधिनी' टीका पढ़ना उपयुक्त रहेगा। फिर साक्षात्कार होने पर सारे सन्देह समाप्त हो जायेंगे।

14. प्रश्न—आत्मा अमर है तथा परमात्मा का सम्बन्ध?

उत्तर—आत्मा अमर है ही, परमात्मा नाम की वस्तु आत्मा से अलग नहीं। जब आत्मा महात्मा हो जाता है तब वही परमात्मा हो जाता है। महात्मा का अर्थ निर्मलात्मा है।

15. प्रश्न—आत्मा शरीर से अलग होने पर शरीर द्वारा किये गये पापों का प्रायश्चित करता है कि नहीं?

उत्तर—शरीर में रहते हुए तो प्रायश्चित कर सकता है, परन्तु शरीर से निकलकर प्रायश्चित करने का कोई आधार नहीं, क्योंकि शरीर छूट जाने पर जीव के साथ केवल वासनामय सूक्ष्म शरीर ही रहता है, वहां सोचने-विचारने का साधन नहीं रहता। हां, अपने किये गये कर्मों का फल शरीर छूट जाने पर जीव दूसरा शरीर धारणकर अवश्य भोगता है।

16. प्रश्न—वैराग्य परम सुखरूप है, यदि संसार के समस्त नर-नारी वैराग्य-सुख की प्राप्ति के लिए विरक्त हो जायें तो सृष्टि का अन्त हो जायेगा?

उत्तर—यदि सबके विरक्त हो जाने से सृष्टि रुक जाये तो क्या हानि है? जब हानि नहीं तो चिंता बेकार है। जब सब लोग मोटे-मोटे दोष नहीं छोड़ पाते तब सब वैराग्य धारण कर लेंगे और इस कारण सृष्टि का अन्त हो जायेगा—यह बात सोची भी नहीं जा सकती। सहस्रों में कोई एक सच्चा

वैराग्य धारण करता है और जीव असंख्य हैं। सृष्टि कब रुकने वाली है? हम अपना कल्याण करें, सृष्टि रुकने की चिन्ता छोड़ दें।

17. प्रश्न—मोक्ष क्या है, उसका अनुभव हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यदि अनुभव नहीं हो सकता है तो फिर ऐसे मोक्ष के लिए हम क्यों परेशान हैं? अपना लक्ष्य केवल यह बनायें कि हम वही दूसरे के लिए करें जो अपने लिए दूसरों द्वारा चाहते हैं। वह भी ब्रह्मचर्य के साथ।

उत्तर—मोक्ष में दो वर्ण हैं, 'म' और 'क्ष'। 'मो' से मोह तथा 'क्ष' से क्षय—इस प्रकार मोह का क्षय ही मोक्ष है। जब मनुष्य को स्वरूपज्ञान (आत्मज्ञान) हो जाता है और वह अपने चेतन स्वरूप से पृथक पदार्थों की आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देता है, तब वह स्वरूपस्थ हो जाता है इसी को मोक्ष कहते हैं। समस्त आसक्तियों, विकारों, मनोमालिन्यताओं का अन्त ही मोक्ष है। सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै॥

(बीजक, शब्द 14)

शरीर के रहते ही सर्व आसक्तियों का ध्वंस मोक्ष है। प्रश्न होता है कि मोक्ष का अनुभव हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? उसके लिए ऊपर की बात पुनः दोहराई जायेगी। अर्थात गुरु-सन्तों से स्वरूपज्ञान प्राप्त करें और शरीरादि जड़ पदार्थों की आसक्ति का त्याग करें। जिस दिन मन कामादि विकारों तथा राग-द्वेषादि से सर्वथा शून्य होगा उस दिन मोक्ष का अनुभव अपने आप होगा। इसके लिए भक्ति, सत्संग, वैराग्य, बोध, साधना सबकी आवश्यकता है।

प्रश्न है "यदि मोक्ष का अनुभव नहीं होता तो हम क्यों परेशान हैं?" आप यह कैसे जाने कि किसी को मोक्ष का अनुभव नहीं होता। कक्षा 1 का बच्चा कहे कि बी० ए०, एम० ए० के कोर्स के विषय बिलकुल निरर्थक हैं या उनका ज्ञान होना असम्भव है, तो यह उसका कहना कहां तक उचित है!

"दूसरे के लिए हम वही करें, जो दूसरे से अपने लिए चाहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्यपूर्वक।" यह तो बहुत बढ़िया बात है। मोक्ष की साधना में भी हमें इस बात की आवश्यकता है ही। जो मोक्ष साधना करना चाहेगा, वह अपने वैरी का भी अनिष्ट क्यों चाहेगा, सबका हित सोचना, जहां तक सम्भव हो हित करना—यह प्रत्येक मानव का परम पुनीत कर्तव्य है।

ब्रह्मचर्य का पालन तो उसके लिए भी आवश्यक है जो समाज की सेवा करना चाहता है और मोक्ष-साधक के लिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है ही।

18. प्रश्न—गुरु कौन है तथा गुरु करने से क्या होता है?

उत्तर—किसी विषय की शिक्षा देनेवाला गुरु कहलाता है और गुरु करने से उससे शिक्षा मिलती है।

माता, पिता, अध्यापक तथा किसी विषय का ज्ञान कराने वाले गुरु कहलाते हैं, इस प्रकार जीवन में अनेक गुरु किये जाते हैं; परंतु प्रश्न संभवतः सद्गुरु के लिए है। सद्गुरु वह है जिसकी शिक्षा से सारी भ्रांतियों का अन्त होकर दिव्य ज्ञान का प्रकाश होता है।

19. प्रश्न—गुरु कैसा करना चाहिए?

उत्तर—प्रश्न में सद्गुरु को ही गुरु कहा है। सद्गुरु कैसा करना चाहिए का उत्तर है कि जिसका आचरण पवित्र हो तथा ज्ञान निष्पक्ष, तर्कपूर्ण, अन्धविश्वास से रहित और शुद्ध हो, उस सद्गुरु की शरण लेना चाहिए। काम, क्रोध, मद, मत्सर तथा अनेक अन्धविश्वासों एवं मूढ़ताओं में लिप्त लोग दूसरे को क्या प्रकाश देंगे?

20. प्रश्न—गुरु की आज्ञा न मानने से क्या होता है?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान तथा आचरण से सम्पन्न राग-द्वेष से रहित यथार्थ सद्गुरु की ऐसी कोई आज्ञा नहीं होगी जो न मानने योग्य हो, अपितु वह कल्याणकारी ही होगी और ऐसी आज्ञा न मानने वाला गड्ढे में जायेगा।

यदि गुरु में शुद्ध ज्ञान तथा आचरण की सर्वथा पूर्णता नहीं है और वह ऐसी आज्ञा देते हैं जो निष्पक्ष ज्ञान तथा शुद्ध आचरण के विरुद्ध है तो उसे न मानने में ही शिष्य का हित है और गुरु का भी। गुरु की गलत आज्ञा मानकर शिष्य अपना और गुरु, दोनों का अकल्याण ही करेगा। इसलिए कहा है—

जब तक न देखे निज नैना। तब तक न माने गुरु के बैना॥ (पंचग्रंथी)

अर्थात जब तक अपने विवेक में न आवे तब तक गुरु की बात भी ज्यों-की-त्यों न मान ले।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै शब्द का, भटके बारम्बार॥
साँचे गुरु के पक्ष में, दीजै मन ठहराय।
चंचल से निश्चल भया, नहिं आवै नहिं जाय॥

(कबीर अमृतवाणी)

21. प्रश्न—गुरु की शरण लेकर गृहस्थी में हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर—सद्गुरु के चुनाव में शीघ्रता न करे। खूब समझ-बूझकर यथार्थ सद्गुरु की शरण ले। तन, मन, धन को अर्पित कराने वाले गुरु तो बहुत घूमते हैं, परन्तु वास्तविक गुरु वह है जो निष्काम है।

समय-समय पर सद्गुरु की सेवा करते हुए उनके सत्संग द्वारा अपना बोध-विचार पुष्ट करता रहे। अवैज्ञानिक तथा अन्ध मान्यताओं से दूर रहकर सदाचार से जीवन व्यतीत करे।

22. प्रश्न—कबीरपन्थ में कुछ गद्दीनशीन आचार्य, महन्त या गुरु लोग परस्पर छोटे-बड़े का भेदभाव करते हैं, वह कहां तक ठीक है? प्रसंग सहित समझावें।

उत्तर—ज्ञान और आचरण में सच्चा पुरुष ही महापुरुष है। ऐसे जो भी महापुरुष होते हैं वे समाज के प्रकाशस्तम्भ होते हैं। उनके अनुयायियों में अनेक लोग आ जाते हैं। अच्छे के साथ गलत लोग भी घुस जाते हैं और वे पंथ, समाज व सम्प्रदाय को दूषित कर देते हैं।

सद्गुरु कबीर के ज्ञान, आचरण तथा व्यक्तित्व की प्रशंसा उनके विरोधी भी करते हैं, फिर अन्य को क्या कहना! परन्तु कितने ही कबीरपन्थी कहलाने वाले गद्दीधारी आचार्य, महन्त, गुरु-साधु नामधारियों का हृदय बहुत छोटा है। वे अपनी गद्दी, मठ तथा समाज के उत्तराधिकार में ही सद्गुरु कबीर के उपदेश, मोक्ष तथा शांति की ठेकेदारी समझते हैं, अपने को महान तथा दूसरे को तुच्छ घोषित करने की चेष्टा करते हैं। वे यद्यपि यह उपदेश देते फिरते हैं कि कोई ब्राह्मण के घर में जन्म लेने मात्र से ब्राह्मण और पूज्य नहीं हो सकता जब तक उसमें ब्राह्मण-कर्म न आवें; परन्तु वे स्वयं अमुक गुरु, घेरा, गद्दी, संस्था में दीक्षा ले लेने मात्र से अपने को बड़ा तथा दूसरे को छोटा मानते हैं। क्या ये लोग कबीर साहेब के उदार विचार समझ सके हैं? क्या ये अपने को उदार सन्त कबीर के अनुयायी कहलाने के अधिकारी हैं? हां, जो आचार्य, महन्त, गुरु, साधु, उदार तथा विनम्र हैं, वे धन्य हैं।

परमार्थ में धन, मठ, जनसमूह आदि का महत्त्व नहीं हो सकता, उसमें महत्त्व है त्याग, तप, ज्ञान, वैराग्य, परोपकार, उदार-भावना आदि का। जब तक मनुष्य में ज्ञान-आचरण न आये तब तक वह किसी बड़े गद्दीधारी आचार्य, महन्त एवं जीवन्मुक्त ही से दीक्षित क्यों न हो, दीक्षामात्र लेकर श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

गद्दी, महन्ती, मठ, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से सद्गुरु कबीर अत्यन्त दूर थे, इन समस्त ऐश्वर्यों के अहंकार से सर्वथा मुक्त थे। वे व्यक्ति सोचनीय हैं जो इन्हीं मायावी ऐश्वर्यों के मद को लेकर अपने को

श्रेष्ठ तथा दूसरे को हीन गिनते हैं फिर भी वे अपनी अहंता-ममता का घर जला देने वाले फक्कड़, मस्त, निराले सन्त कबीर साहेब के उपदेशों के ठेकेदार बनते हैं।

न तो कोई कबीरपंथी कहलाने से बड़ा होगा और न तो कबीरपंथ अन्तर्गत अमुक गद्दी, आचार्य, महंत तथा गुरु-साधु का अनुगामी तथा शिष्य कहलाने से बड़ा होगा। बड़ा वही होगा जो निराले सन्त कबीर के पारदर्शी ज्ञान तथा दिव्य आचरणों को धारण करेगा, जो केवल कबीर साहेब की भी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है, अपितु सनातन सत्य है।

विज्ञानी वही वस्तु खोजकर निकालता है जो प्रकृति के गर्भ में छिपी है, इसी प्रकार सद्‌गुरु कबीर ने भी वही वस्तु संसार के सामने रखी है जो अटल सत्य और नित्य है। इसीलिए वह वस्तु सबकी है चाहे कबीरपंथी हो या अन्य पन्थी, हिन्दू हो या मुसलमान।

कितने ही कबीरपन्थी कहलाने वाले सद्‌गुरु कबीर के विचारों से करोड़ों कोस दूर हैं और कितने ही अपने को कबीरपन्थी तो नहीं घोषित किये हैं, परन्तु कबीर साहेब के विचारों के अनुसार बहुत कुछ चलने की चेष्टा करते हैं। अतएव केवल किसी गद्दी, शाखा, गुरु आदि का अनुगामी होने से नहीं, किंतु उच्च ज्ञान तथा आचरण से लोग बड़े हो सकते हैं।

23. प्रश्न—वर्तमान में किसी को गुरु न बनाकर यदि सद्‌गुरु कबीर को ही गुरु मानकर उनके उपदेशों के अनुसार चला जाये तो क्या हानि है?

उत्तर—यह कहना ऐसा है जैसे कोई कहे कि किसी अध्यापक से न पढ़कर जिसने बी० ए० तथा एम० ए० की पुस्तकें लिखी हैं उसी को गुरु मान लें और उसकी पुस्तकें पढ़ लें तो क्या हानि? उन पुस्तकों को पढ़ाने वाला तथा उसका पूरा रहस्य समझाने वाला आज कोई होना ही चाहिए।

सद्‌गुरु कबीर के विचारों को ग्रहण करने वालों के लिए कबीर साहेब परम सद्‌गुरु हैं ही, परन्तु उन विचारों का पूरा रहस्य बताने वाला आज किसी को होना ही चाहिए। आज किसी गुरु की सेवा न करना पड़े तथा उसकी आज्ञा में न चलना पड़े, इसलिए वर्तमान गुरु की शरण न लेना बहुत बड़ी दुर्बलता है। हां, जब तक यथार्थ गुरु न मिले तब तक खोजता रहे।

24. प्रश्न—क्या जीव ईश्वर का अंश है?

उत्तर—संसार में एक भी प्रमाण नहीं है कि कोई वस्तु एक ही साथ अंश और अविनाशी हो। जल अंशी है और तरंग उसका अंश है, तो तरंग अविनाशी नहीं, अपितु नाशवान है। घड़ा मिट्टी का अंश है तो अविनाशी नहीं। अतएव

जीव किसी का अंश नहीं अपितु अविनाशी है।

याको माय न याको बापा। यह तो स्वत: आप ही आपा॥ (निर्णयसार)

25. प्रश्न—पहले बीज है कि वृक्ष?

उत्तर—दोनों प्रवाह रूप अनादि हैं।

26. प्रश्न—मुक्त जीव कहां जाकर रहता है?

उत्तर—शरीर में रहते-रहते जो समस्त आसक्ति-कामनाओं से मुक्त हो गया वही जीवन्मुक्त है। जो जीवन्मुक्त है वही शरीर छूटने पर विदेहमुक्त होता है। जीवन्मुक्ति के लिए ही पुरुषार्थ करना चाहिए और उसके बाद विदेहमुक्ति अपने आप हो जायेगी, उसके लिए अलग पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होगी।

जो वस्तु कारण या कार्य होती है, वह आधार या आधेय होती है। मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य, अत: मिट्टी आधार है और घड़ा आधेय। परन्तु चेतन न तो कारण है न कार्य; अतएव वह न आधार है न आधेय, अपितु निराधार है। वासनावशी चेतन प्रकृति के आधार में रहता है; परन्तु जब वह वासना से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है और प्रारब्ध शरीर भी समाप्त हो जाता है, तब वह न किसी को आधार देता है और न दूसरे का आधार लेता है। वह निराधार अपने आप असंग रहता है।

यह सूक्ष्म विषय है, शीघ्र समझ में न आये तो आश्चर्य नहीं। प्राथमिक पाठशाला का एक साधारण अध्यापक होने के लिए मनुष्य को 12-14 वर्ष पढ़ना पड़ता है, फिर इस सर्वोच्च विषय-मोक्षतत्त्व के अध्ययनार्थ कुछ समय तो लगाना ही पड़ेगा।

विदेहमुक्ति की स्थिति कोई शीघ्र न समझ सके तो भी हर कोई जीवन्मुक्ति की स्थिति की यथार्थता समझ सकता है। शरीर रहते-रहते मनोविकारों से मुक्त होकर ही हम सच्चे अर्थ में सुखी रह सकते हैं, और यही जीवन्मुक्ति है जो हर मनुष्य की अन्तरात्मा की प्रबल मांग है।

27. प्रश्न—जड़-चेतन दो वस्तुएं हैं, फिर किसके परखने से बन्धन छूटता है? पारख किसे कहते हैं?

उत्तर—जब मनुष्य शरीरधारी चेतन अपने को जड़ से सर्वथा पृथक परख लेता है और जड़ की सभी आसक्तियां त्याग देता है तब उसका बन्धन छूट जाता है।

देह-इन्द्रिय, अन्त:करण साधनों द्वारा चेतन सबको परखता (जानता) है, इसलिए चेतन का ही शुद्ध स्वरूप पारख है।

28. प्रश्न—यदि जीव ईश्वर का अंश है तो उसे कष्ट क्यों दिया जाता है?

उत्तर—जीव अविनाशी है, अत: किसी का अंश नहीं। कष्ट किसी को इसलिए नहीं देना चाहिए क्योंकि वह किसी को पसन्द नहीं। जो दूसरे को कष्ट देता है वह भूला है और वह उसके फल में कष्ट पायेगा।

29. प्रश्न—एकादशी या अन्य व्रतों के दिन उपवास रहना ठीक है कि नहीं?

उत्तर—एकादशी या अन्य व्रत के दिन उपवास रहने से स्वर्ग मिलेगा या मोक्ष तथा भगवान मिलेंगे यह मानना केवल भ्रम है। किसी-किसी दिन उपवास रहने से पेट की गड़बड़ी ठीक हो जाती है। इसलिए कभी-कभी उपवास रहना चाहिए; परन्तु उस दिन पानी तथा एक-दो बार शर्बत को छोड़कर और कुछ नहीं खाना-पीना चाहिए। अर्थात उपवास के दिन एक या दो बार गुड़ का शरबत, कागदी नीबू का रस डालकर पीना चाहिए। गुड़ न मिले तो शक्कर का शरबत नीबू सहित प्रयोग करें।

आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा, हाथ, पैर, मुख, गुदा, उपस्थ तथा मन इन ग्यारहों को अपने वश में करना ही एकादशी व्रत है।

30. प्रश्न—दान किनको देना चाहिए?

उत्तर—दान केवल असहाय को देना चाहिए, जो अपने हाथों से किसी प्रकार कमाई नहीं कर सकता है। लूले, लंगड़े, अन्धे, कोढ़ी आदि जो सर्वथा लाचार हैं, उन्हीं को दान करो, उन्हीं को दो। और जो ये भिखारियों का बहुत बड़ा दल भारत में घूम रहा है जो कि काम कर सकता है उसको भिक्षा देकर तो देश को बरबाद करना है। जो लोग लूले, कोढ़ी आदि असहायों को यह कहते हैं कि ये अपने पूर्वजन्म के फल भोग रहे हैं, इनको क्यों दिया जाये, यह कहना ठीक नहीं है। सब अपने ही कर्म-फल भोग रहे हैं, यह कहना तो ठीक है; परन्तु उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए—यह कहना गलत है। यदि ऐसा कहने वाला स्वयं अन्धा हो जाये तो क्या वह अपने लिए यह नहीं चाहेगा कि हमें कोई रास्ता बता दे।

दूसरे, दान उनको भी देना चाहिए जो सच्चे विरक्त सन्त तथा विद्वान हैं; क्योंकि उनके द्वारा समाज को सदाचार तथा ज्ञान की प्रेरणा मिलती है। जो साधु-वेष बनाकर विषय-वासना या गांजा-भांग, तम्बाकू आदि व्यसनों तथा नाना विकारों में आसक्त हैं, उनको कभी कुछ नहीं देना चाहिए। जो सच्चे हृदय से त्यागी तथा सदाचारी सन्त हैं, उनकी सेवा करना चाहिए। विद्वान ही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं, चाहे वे किसी वर्ण-जाति के हों; और उनसे भी समाज को कुछ मिलता है इसलिए विद्वान की भी सेवा करना चाहिए।

31. प्रश्न—नित्य के जीवन व्यवहार तथा खेती-गृहस्थी के क्रम में अहिंसा व्रत का पालन कहां तक हो सकता है?

उत्तर—गृहस्थ को चाहिए कि वह जिन पशुओं का पालन करे, उनकी पूरी सेवा करे, उन्हें कष्ट न होने दे। खाट जब बनवाये तब उसमें पाउडर डाल देने से कीड़े नहीं पड़ते। यदि कदाचित कभी कीड़े पड़ जायें तो खाट को घर के बाहर करके झाड़ देना चाहिए। छोटे-छोटे जीवों को मारने की आदत बनाना, अपने स्वभाव को क्रूर बनाना है। मनुष्य को चाहिए कि वह शक्ति चले तक जीवहत्या से बचे। वैसे गृहस्थी में गृहस्थी का काम तो करना ही पड़ेगा।

मछली मारते हुए एक मछुआरा से पूछो—तुम क्या करते हो तो वह कहेगा कि मैं मछली मारता हूं। परन्तु एक हल चलाने वाले किसान से पूछो कि तुम क्या करते हो, तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं चींटी या कीड़े मारता हूं। वह कहेगा मैं खेत जोतता हूं। यद्यपि खेत जोतने में चींटी तथा कीड़े मरते हैं; परन्तु उसका उद्देश्य उन्हें मारना नहीं, अपितु खेत जोतना है।

सांप-बिच्छू हमारे शत्रु नहीं, वे एक सहज प्राणी हैं, सांप-बिच्छू पहले प्राय: नहीं काटते जब तक वे हमारे पैरों या अंगों से कटते-दबते नहीं। परन्तु उनसे विषधर हम हैं जो उन्हें मात्र देखकर ही हम उनके ऊपर हमला कर देते हैं। मनुष्य जितना सांप-बिच्छुओं को देखता है, उन्हीं को मार सकता है, परन्तु घर में न मालूम कितने सांप-बिच्छू होते हैं, वे सब कहां मनुष्यों को सब समय काटते रहते हैं? अत: उनको मारना निरर्थक है।

32. प्रश्न—जो दुराचारी मनुष्य चोरी-डाका आदि कुकर्मों में रत हैं, उनके साथ क्या करें?

उत्तर—दुष्टों का दमन आवश्यक है। जनता तथा शासन को चाहिए कि दुष्टों का दमन करें। समझा-बुझाकर प्रेम के रास्ते से उन्हें सन्मार्ग में लाना उत्तम है। परन्तु इस प्रकार इक्के-दुक्के ही सन्मार्ग पर आते हैं। दुष्टों के दमन से समाज तथा देश में शांति आ सकती है।

33. प्रश्न—अध्ययन काल में प्राणिविज्ञान के अध्ययन में निरपराध मेढक आदि को मारा जाता है, क्या यह पाप है?

उत्तर—निरपराध प्राणी को मारना पाप तो है ही। भले ही तुम उसके बाद डॉक्टरी पास करके बहुतों की सेवा करो और पुण्य अर्जित करो, परन्तु जो निरपराध प्राणी को पीड़ा दी गयी है, उसका फल दुख होगा ही। शिक्षा प्रणाली में भी बहुत त्रुटि है, जो आवश्यकता से अधिक प्राणियों को पीड़ा दी जाती है।

34. प्रश्न—कोई दूसरा देश हमारे देश पर चढ़ आये तो हम क्या करें?

उत्तर—उसका डटकर सामना करें तथा उसे खदेड़कर अपना देश स्वतंत्र रखें।

35. प्रश्न—आत्मा एक है या अनेक?

उत्तर—यदि आत्मा एक होता तो कौन किससे पूछता? आत्मा एक है या अनेक, यह प्रश्न ही अनेकता को सिद्ध करता है। एक ही काल में कोई जन्म लेता है, कोई मरता है, कोई बन्ध है, कोई मुक्त—अनेकता का इससे प्रबल प्रमाण और क्या होगा? हर आत्मा अर्थात चेतन अपने को दूसरे से सर्वथा पृथक अनुभव करता है।

अनेक आत्माओं को प्रतिबिम्ब, प्रतिभास आदि मानना महान अज्ञान है; क्योंकि प्रतिबिम्ब-प्रतिभास आदि को ज्ञान नहीं हो सकता और आत्माओं को प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसी प्रकार आत्मा को व्यापक भी नहीं कहा जा सकता। अपनी व्यापकता का किसी को अनुभव नहीं होता। साधारण ही नहीं, बड़े-बड़े ज्ञानी भी अपने आपके विषय में किंचित्मात्र भी व्यापकता का अनुभव नहीं कर पाते। यदि हम आत्मा व्यापक हैं तो अनन्त ब्रह्मांड की बात क्यों नहीं जानते? आत्मा एक है और व्यापक है, कल्पित वाणी-प्रमाण को छोड़कर इसको सिद्ध करने का आधार न प्रत्यक्ष व्यवहार है और न विवेक।

सभी आत्माओं का ज्ञान गुण एक है; इसलिए गुण की दृष्टि से आत्माओं की एक जाति—ज्ञान है; परन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से सभी आत्माएं एक दूसरे से सर्वथा सर्वकाल में भिन्न हैं। 'आत्मा व्यापक है' का अर्थ यह लग सकता है कि आत्मा अपने ज्ञान की दृष्टि से महान है, विशाल है, न कि वह द्रव्य की दृष्टि से सर्वत्र फैला है।

कितने विद्वानजन की धारणा है कि "आत्मा एक और व्यापक रहने से ही वह अजर-अमर-अविकारी रह सकता है, यदि आत्मा अनेक तथा एकदेशी होंगे तो वे नष्ट हो जायेंगे।" परन्तु यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जड़ तत्त्व की अन्तिम सूक्ष्म इकाई भी नहीं नष्ट होती, तो आत्मा क्यों नष्ट हो जायेगा। आत्मा व्यापक है तो शरीर मुरदा क्यों हो जाता है? व्यापक होने से मुरदा में भी आत्मा सिद्ध हो जाता है, अतः शरीर मुरदा नहीं होना चाहिए। अतएव आत्मा, अर्थात चेतन व्याप्य-व्यापक भाव रहित असंख्य हैं।

सांख्य दर्शन के सिद्धांत में भी चेतन अनेक माना गया है—'पुरुषबहुत्वं सिद्धम्'। अर्थात—चेतन अनेक सिद्ध हैं।

(श्री ईश्वरकृष्ण, सांख्य कारिका 18)

36. प्रश्न—सत्पुरुष तथा कबीर साहेब दो हैं या एक?

उत्तर—जड़-चेतन दोनों सत्य हैं। मनुष्य का जो अपना लक्ष्य है, वह उसका चेतन स्वरूप है। इसलिए कल्याणस्वरूप यह चेतन ही सत्य है। जो जड़ की आसक्ति को छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में स्थित हैं वे व्यक्ति ही सत्पुरुष हैं। अत: सद्गुरु कबीर साहेब सत्पुरुष हैं, यह मानने में कोई सन्देह नहीं। इसी प्रकार जो कोई भी जड़ विषयों की आसक्ति छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में स्थित होता है वह सत्पुरुष है। इसके अतिरिक्त लोक-लोकान्तरों में सत्पुरुष की खोज करना एक भ्रम है। चेतन ही सत्पुरुष है, और चेतन की स्थिति ही सतलोक है।

सत्पुरुष को कबीर साहेब से पृथक खोजना एक भ्रम है तथा कबीर साहेब को एक महत्तम मानव (सन्त) से पृथक बताना भूल है। जो लोग कबीर साहेब को, उनकी वास्तविकता (मानवीय स्तर) से ऊपर उठाकर उन्हें अनन्त ब्रह्माण्ड का हर्ता-कर्ता सिद्ध करने का असफल प्रयास करते हैं; उन्हें भी चाहिए कि वे सत्पुरुष को कबीर साहेब से पृथक न खोजें।

37. प्रश्न—सृष्टि कब से हुई?

उत्तर—बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीच, अण्डा से मुरगी और मुरगी से अण्डा, प्रारब्ध से पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ से प्रारब्ध सदा से होते आये हैं। इनमें न कोई पहले है न पीछे। इसलिए यह दिखती हुई सृष्टि प्रवाह रूप अनादि है।

असंख्य चेतन नित्य हैं, मिट्टी, पानी, आग, हवा जड़ तत्त्व भी नित्य हैं। इनकी उत्पत्ति या सृष्टि की कल्पना करने की आवश्यकता ही नहीं है। इनके बीच में जो सृष्टि होती है वह तो इनके ही गुण, धर्म, क्रियाओं से हो रही है, फिर इनकी सृष्टि की अलग कल्पना करने की क्या आवश्यकता है?

वास्तव में यह जड़-चेतनमय संसार ऋत और सत्यमय है। जगत की सर्वथा उत्पत्ति या प्रलय मानना निरर्थक है। जैसे संसार आज है, सदा से रहा है और सदा रहेगा। इस विषय को भलीभांति समझने के लिए 'जगन्मीमांसा' पढ़ें।

38. प्रश्न—क्या सभी प्राणियों में आत्मा एक जैसा ही रहता है?

उत्तर—आत्मा अर्थात चेतन सभी शरीरों में एक जैसा ही है। क्योंकि सभी आत्माओं का एक गुण-ज्ञान ही है। हां, देहोपाधि से उनके गुण, कर्म तथा संस्कारों में भिन्नता अवश्य हो सकती है; परन्तु मूल रूप में सभी चेतन एक समान हैं।

39. प्रश्न—गुरुसम्प्रदाय आदि है या अनादि?

उत्तर—रोग पहले चिकित्सा पीछे। बन्धन अनादि है। बन्धनों से दुखी होकर उससे मुक्ति पाने की खोज उसके पीछे होती है। इसलिए सम्प्रदाय आदि है। परन्तु गुरु स्वरूप, अर्थात मूलतः चेतन का ज्ञानपक्ष अनादि है। वस्तु अनादि, उसकी खोज आदि।

40. प्रश्न—पारख सिद्धान्त के महात्मा अपने को कबीरपंथी क्यों लिखते हैं?

उत्तर—क्योंकि वे कबीर साहेब के मौलिक सिद्धान्त 'पारख' को मानने वाले हैं।

41. प्रश्न—क्या कबीर साहेब के पहले के महात्मा मुक्त नहीं होते थे, कबीर ही से मुक्ति का आरम्भ हुआ है?

उत्तर—मुक्त चेतन का स्वरूप है। वह जब विषयासक्ति बन्धन को त्यागकर अपने आप सन्तुष्ट हो जायेगा, तभी मुक्त हो जायेगा। इस अनादि-काल के जगत में जब जो अपने सत्य स्वरूप को समझकर उसमें स्थित हुआ होगा, तब वह मुक्त हो गया होगा, तथा आगे भी जो सत्य में स्थित होगा, वह मुक्त हो जायेगा। उसमें किसी व्यक्ति, समाज, पन्थ, सम्प्रदाय, स्थान की हदबन्दी नहीं हो सकती। व्यक्ति की वास्तविकता मुक्त स्वरूप ही है। उसे समझना होगा तथा जैसा वह असंग, निराधार, अकेला है, वैसी स्थिति बनानी होगी।

42. प्रश्न—क्या ईश्वर की प्राप्ति बिना मन्दिर गये; मन में ध्यान करके हो सकती है?

उत्तर—पहले यह समझ लेना होगा कि ईश्वर क्या है? ईश्वर नाम की कोई ऐसी वस्तु मुझसे पृथक नहीं है जो किसी साधन से मिलती हो। जो वस्तु मिलती है वह छूटती है। मिलने-छूटने वाली वस्तु प्रकृतिजन्य एवं जड़ होती है। मनुष्य का मूलस्वरूप, उसका आत्मा, उसका अपना चेतनस्वरूप, जो मैं के रूप में इस शरीर के खोल में विद्यमान है, वह चेतन तत्त्व ही उसका सर्वस्वरूप है, उसका सर्वतन्त्र स्वतंत्र धन है। उसी को यदि आप कहना चाहें तो ईश्वर कह लें, परमात्मा, ब्रह्म तथा खुदा कह लें, चाहे उसे गॉड कह लें, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु यह निश्चय समझ लें कि वह आप ही हैं। उससे पृथक वस्तु नाशवान है।

सीधी बात है, जो जीवन का लक्ष्य है, जो सत्, चिद् तथा मंगलमय शांतस्वरूप है; वह आप स्वयं हैं। स्वयं को पाना नहीं होता। वह तो नित्य

अपने आप ही है। केवल अपने मन को बाह्य भटकाव से हटाकर अपने आप में शांत होना होता है। इसके लिए सद्ग्रन्थों का अध्ययन, विवेकी सन्तों का सत्संग तथा सदाचार का पालन आवश्यक है।

जिसको विवेकी गुरु नहीं मिले, जिसको बोध-विचार नहीं प्राप्त है, वह मन्दिर, मसजिद में जाकर कुछ लाभ उठाता है तो अच्छा ही है। कुछ न करने की अपेक्षा कुछ करना अच्छा है। वैसे यथार्थ गुरु तथा यथार्थ ज्ञान मिल जाने पर तो यह शरीर ही मन्दिर है तथा इसमें निवास करने वाला चेतन ही देवता है।

* * *

43. प्रश्न—क्या बिना गुरु के हम इस संसार रूपी सागर से पार उतर सकते हैं?

उत्तर—मैं भी प्रश्न कर रहा हूं कि क्या कोई बिना अध्यापक के विद्यार्जन तथा किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है? यदि नहीं, तो वही बात अपने प्रश्न के विषय में समझें। जब व्यावहारिक ज्ञान के लिए भी गुरु की आवश्यकता है, तब आध्यात्मिक ज्ञान तथा साधना के दिशानिर्देश के लिए तो साधना-बोध-सम्पन्न गुरु की महान आवश्यकता है ही।

44. प्रश्न—गुरु का अपमान करने से क्या होता है?

उत्तर—सब प्रकार से पतन।

45. प्रश्न—मरने के बाद मनुष्य की आत्मा का निवास कहां होता है?

उत्तर—जैसे उसके कर्म होंगे, वैसी योनि में उसका निवास होगा। यदि वह समस्त कर्मबन्धनों से एवं सर्वासक्ति से मुक्त हो गया है, तो शरीर छूट जाने पर विदेहमुक्त तथा सदैव के लिए मंगलमय हो जाता है।

46. प्रश्न—स्वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्संग को। भौतिकीय दृष्टि से सुबुद्धिपूर्वक सांसारिक सुखों का उपभोग भी स्वर्ग है। अलग स्वर्गलोक केवल कल्पित है। वस्तुतः स्वर्ग है आत्मा का अपने आप में स्थित हो जाना।

47. प्रश्न—संयम और विवेक क्या है?

उत्तर—मन, वाणी तथा शरीर को अपने वश में रखना संयम है, और सार-असार को पृथक करना विवेक है।

48. प्रश्न—असली स्नान क्या है?

उत्तर—मन को सत्संग-सद्विचार में धोकर शुद्ध करना।

49. प्रश्न—जब चेतन पारख (ज्ञान) स्वरूप है, तब पिछले जन्मों की बातें क्यों नहीं जानता?

उत्तर—आप अपने इसी जन्म की शिशु अवस्था की बात क्यों नहीं जानते? आज से एक वर्ष के पूर्व इसी दिन, तिथि, घण्टा, मिनट, सेकेण्ड में क्या सोच रहे थे, इस बात को आप क्यों भूल गये? फिर पूर्व जन्मों की बातें कैसे याद रहें? वास्तव में इस चेतन से तन, मन, संसार पृथक हैं, इसलिए वे भूल जाते हैं। इस बात को ठीक से समझने के लिए सद्गुरु श्री विशाल साहेब रचित 'मुक्तिद्वार' के चतुर्थपाठ 'बन्ध-मोक्ष शतक' के छठें प्रसंग की 58 से 92 साखियां टीका सहित देखें।

50. प्रश्न—'मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥' इसका भाव क्या है?

उत्तर—रामचरितमानस में श्रीरामचन्द्रजी शबरी के आश्रम में जब पहुंचे, तब शबरी ने श्रीराम का स्वागत कर उनसे प्रार्थना की। महाराज राम ने उसे नवधाभक्ति सुनायी और उसके अन्त में यह चौपाई कही। उपदेष्टा गुरु होता है और श्रोता शिष्य। यहां श्रीराम जी उपदेष्टा होने से गुरु हैं तथा शबरी श्रोता होने से शिष्या है।

श्रीराम जी कहते हैं कि मेरे दर्शन अर्थात सद्गुरु के दर्शन का फल बड़ा विलक्षण होता है, इससे जीव अपने सहज स्वरूप को पा लेता है। शिष्य जब श्रद्धापूर्वक सद्गुरु के दर्शन करता है और सद्गुरु जब उसे स्वरूपज्ञान देते हैं, तब शिष्य अपने सहज-स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो जाता है। यही स्वरूप को पाना है।

जो अपने से पृथक होता है, उसका मिलना कठिन तथा असम्भव भी होता है; परन्तु जीव का उसका अपना चेतन-स्वरूप स्वत: है, इसलिए सहज है। उसे पाना नहीं है, अपितु जो जड़ प्रकृति है, उसे मन से त्यागकर शेष रह जाना है। इस प्रकार जीव जब अपने से पृथक सारे दृश्यों को मन से त्याग देता है, तब वह त्यागने वाला शेष रहता है, तब उसे अपने स्वरूप का महत्त्व प्रतीत होता है। यही अपने आपको पाना है। समस्त आसक्तियों एवं बन्धनों से छूट जाना ही, अपने आपको पाना है।

श्रीराम जी द्वारा कथित यहां की नवधाभक्ति साम्प्रदायिक नहीं है, अपितु सार्वजनीन है, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है। पूरी नवधा-भक्ति को न लिया जा

सके तो शुरू की प्रथम भक्ति तथा अन्त की उक्त चौपाई का भाव ले लेने से कल्याण की पूरी सामग्री आ जाती है। उन्होंने आरम्भ में कहा "प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा" और नवधा भक्ति के अन्त में उक्त चौपाई कही "मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥" इसमें संतों की संगत तथा सद्गुरु के दर्शन से जीव को अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति होना बताया गया है। श्रीरामजी ने यह नहीं कहा कि जीव हमारे स्वरूप को पा लेता है, प्रत्युत यह कहा कि जीव अपने सहज स्वरूप को पा लेता है। वास्तव में जीव का अपना स्वरूप ही परम तत्त्व है। जीव चेतन है, ज्ञान-स्वरूप है, अविनाशी है और प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न विद्यमान है। उसका वास्तविक स्वरूप शरीर-रहित है।

सभी जीव अर्थात चेतन ज्ञान गुण में समान होने से सजातीय हैं किन्तु व्यक्तित्व में परस्पर सर्वथा भिन्न हैं।

51. प्रश्न—"सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नाशहिं तबहीं।" जीव की सन्मुखता और विमुखता क्या है?

उत्तर—जब विभीषण रावण से अपमानित होकर श्रीराम की शरण में जाता है, तब सबके सहित सुग्रीव विभीषण को शंका की दृष्टि से देखते हैं। उस समय श्रीरामजी ने अनेक वचनों के साथ यह चौपाई कही है, जिसका भाव है कि जीव जब मेरे सम्मुख होता है, तब उसके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है।

दुखी और भक्त जीव विभीषण है, वह मन-रावण से प्रताड़ित होकर और संसार-लंका से उपराम होकर सद्गुरु रूपी श्रीराम की शरण में जाता है। बोध-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु उसे निर्भय दान देते हैं। वास्तव में जब मुमुक्षा एवं उपासनापूर्वक शिष्य पूर्णरूपेण सद्गुरु के सम्मुख होता है, तब उसके जन्म-जन्मांतर के अज्ञान रूपी अपार पाप नष्ट हो जाते हैं। जीव का संसार-विषयों से विरक्त होकर स्वरूपज्ञान तथा सदाचार की ओर चलना ही गुरु के सम्मुख होना है; और देहाभिमान तथा विषयासक्ति में लगना ही गुरु से विमुख होना है।

जो सदाचरणपूर्वक स्व-स्वरूपस्थिति की ओर चलता है, वह भवतारक सद्गुरु के सम्मुख है।

52. प्रश्न—क्या वर्तमान के गुरु मुक्त नहीं हैं, फिर भूतकाल के कबीर का गुणानुवाद क्यों गाया जाता है?

उत्तर—जो विषयों से अनासक्त तथा स्वरूपज्ञान में स्थित हैं, ऐसे व्यक्ति ही सन्त तथा गुरु हैं, और वे वर्तमान में भी हैं। उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति वर्तमान

में रखना आवश्यक है। परन्तु जो पहले के सन्त हमें ज्ञान-धन का अपार कोष दे गये हैं, क्या आज हम उनके लिए कृतज्ञता के दो शब्द भी न कहें? सद्गुरु कबीर के बताये हुए ज्ञान का आचरण करता हुआ व्यक्ति क्या उनको भूल सकता है? ऐसी स्थिति में यदि वह कबीर साहेब की महानता का स्मरण करके उनके विषय में श्रद्धा के दो शब्द कह दे, तो कौन-सा अपराध हो गया? इसी प्रकार भूतकाल के अन्य महापुरुषों के प्रति भी है।

53. प्रश्न—बड़े-बड़े महात्माओं में एकता, प्रेम न रहकर द्रोह क्यों रहता है? क्या प्रेम-एकता लाने के लिए कोई अन्य स्थान शेष है?

उत्तर—आप बड़े महात्मा का लक्षण क्या मानते हैं? क्या विद्वता, वक्तव्य, ख्याति, लोकप्रतिष्ठा, धन, बड़ा मठ, ऊंची गद्दी, हजारों-लाखों अनुगामियों का होना? बड़ा महात्मा तो वह है, जो राग-द्वेष से सर्वथा रहित है।

सच्चे महात्मा किसी का स्वभाव न मिलते हुए देखकर उससे अलग होकर भले रहें, परन्तु उसका वे अहित नहीं चाहेंगे और न सपने में भी उससे द्रोह करेंगे। जो दूसरे से द्रोह करता है वह सन्त कहां?

सबसे उत्तम समझदारी सन्त की होती है या यों कहिये कि जिनकी समझदारी सर्वोत्तम है, वह सन्त है। ऐसे सन्त के चित्त में समता और प्रेम ही विराजते हैं। वे किसी से द्रोह नहीं करते, अपितु अपने द्रोही का भी मन से हित चाहते हैं।

जितने लोग साधुवेष धारण करते हैं, वे तुरन्त परिपक्व सन्त नहीं हो जाते। यदि उनके कुछ शुभ-कर्मों तथा प्रारब्धिक योग्यताओं से उनको धन, प्रतिष्ठा, अनुगामी मिलने लगें और यदि वे सावधान न रहें, तो साधना की दृष्टि, वैराग्य एवं कल्याण के लक्ष्य से रहित होकर धन-प्रतिष्ठा तथा शिष्य-शाखा की ही इच्छा में हर समय निमग्न रहते हैं। वे जितने धन, प्रतिष्ठा, शिष्य पाते जाते हैं, उतनी ही उनकी भूख बढ़ती जाती है। इसलिए वे अपने समान या अपने से अधिक किसी को देखकर सह नहीं पाते और ईर्ष्या-द्वेष के शिकार हो जाते हैं। ऐसे लोगों का गलत व्यवहार देखकर लोग कहने लगते हैं कि सब ऐसे ही होते हैं, वेष में ईर्ष्यालु-द्वेषी अधिक होते हैं, सच्चे संत कम होते हैं। परन्तु जो सन्त हैं वे सचमुच निम्न साखी के अनुसार होते हैं—

सोना सज्जन साधुजन, टूटि जुरैं सौ बार।
कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार॥

(बीजक, साखी 225)

54. प्रश्न—आत्मा के ऊपर किसका नियन्त्रण है तथा आत्मा को कौन शक्ति संचालित करती है?

उत्तर—आत्मा के ऊपर किसी का भी नियन्त्रण नहीं है। यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। इस बात की प्रत्यक्षता जगत में प्रकट है। जिसकी जो इच्छा होती है, वह वही कर्म करता है; जिस मत, पथ, ग्रन्थ को ग्रहण करने की इच्छा होती है, वही ग्रहण करता है; जिधर जाना चाहता है, जाता है।

यदि ईश्वर के बनाये वेद होते तो वह वेद से बाहर किसी को न जाने देता। वस्तुस्थिति ऐसी है कि संसार में वेदों को ईश्वर-वाक्य मानने वाले बहुत कम हैं। यही बात बाइबिल तथा कुरान पर भी लागू है।

आजकल भारत पर इन्दिरा-सरकार का नियन्त्रण है तो उसके कानून को सभी को मानना पड़ता है; ऐसा नियन्त्रण जीवों पर किसी शक्ति का नहीं दिखता है, अन्यथा ये आत्मा भी एक कानून में आबद्ध होते। वस्तुस्थिति ऐसी है कि एक तो वेदपाठ, सन्ध्या, यज्ञ आदि मोक्षमार्ग मानता है। दूसरा ये सब महाकुपन्थ मानता है किंतु वह कुरान-पाठ, रोजा, नमाज, हजरत मोहम्मद में विश्वास करना कल्याण का पथ बताता है। तीसरा इसके विरुद्ध है और प्रभु ईसा मसीह को सर्वोपरि बताता है। जो कुपन्थ में जाना चाहता है, वह कुपन्थ में जाता है और जो सुपन्थ में जाना चाहता है, वह सुपन्थ में जाता है। उसको कोई अपर शक्ति घुमाकर दूसरी ओर नहीं करती। हां, एक मनुष्य दूसरे को सुपन्थ-कुपन्थ की ओर प्रेरता है या अपने हृदय की शुभ-अशुभ वासनाएं आत्मा को अच्छे या बुरे की ओर ले जाती हैं।

यदि यह मान लिया जाये कि जीव को कोई दूसरा संचालित करता है अर्थात उसे कर्म करने की प्रेरणा कोई दूसरा देता है, तो ऐसी स्थिति में जीव निर्दोष होगा और सारा पाप-पुण्य जीव को प्रेरित करने वाले के ऊपर जायेगा। यदि किसी व्यक्ति ने हत्या कर दी, डाका डाला तो वह बेचारा क्या करे। यह अपराध तो उसको प्रेरित करके दूसरी शक्ति ने करवाया। इस धारणा में न वस्तुतथ्य है और न तो यह मान्यता मानव-समाज के लिए कल्याणकर है। इस धारणा से मनुष्य अपने द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मों का सारा उत्तरदायित्व अपने से परे प्रेरक शक्ति पर डालकर मनमाना कुकर्म करने पर तत्पर हो जायेगा।

इस विश्व के प्रवहमान आध्यात्मिक धारा में दो धाराएं मुख्य हैं—एक विश्वास धारा, जिसमें माना जाता है कि हमसे पृथक परमात्मा है, वही हमारा नियन्त्रणकर्ता, प्रेरक तथा रक्षक है; दूसरी विवेक धारा, जिसमें माना जाता है कि परमात्मा नाम की वस्तु मुझसे पृथक नहीं है। यह आत्मा ही जब समस्त

जड़ संस्कारों से मुक्त हो जाता है, तब यही परमात्मा है। यथा—

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व 187/23)

अर्थ—जब आत्मा प्रकृति के गुणों में बंधा रहता है, तब वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है; जब वह उसके बन्धनों से भलीभांति छूट जाता है, तब परमात्मा कहलाता है।

महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है "अत्ता ही अत्तनो नाथो॥ 160॥ अत्ता ही अत्तनो गति॥ 380॥ अर्थात आत्मा ही आत्मा का स्वामी है तथा आत्मा ही आत्मा का लक्ष्य है।

कबीर साहेब बीजक में कहते हैं "हो हजूर ठाढ़ कहत हौं, तैं क्यों धोखे जन्म गमाव॥ रमैनी 24॥" अर्थात तू स्वतः हुजूर है, सरकार है, मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं, तू धोखे में क्यों जीवन खो रहा है।

विश्वासी व्यक्ति आत्मा से परमात्मा को अलग मानता है तथा विवेकी आत्मा ही को परमात्मा मानता है।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, यह बात सबकी समझ में प्रायः आ जाती है। कर्मफल भोगों में जीव उन कर्मों के ही अधीन है। विश्वासी मानता है कि कर्मफल भोग ईश्वर देता है। यदि ईश्वर ही दे तो भी वह पाप का फल सुख तथा पुण्य का फल दुख नहीं दे सकता। हमारे कर्मानुसार ही कर्मफल दे सकता है। विवेकी मानता है मन में कर्मों का संस्कार होता है और बीज-वृक्ष-न्याय उन कर्मों के अनुसार फल स्वतः होता है।

जैसा कि वेदों में भी बताया गया है 'ऋत' और 'सत' से संसार की स्थिति चलती है। भौतिक नियमों की कारण-कार्य परम्परा—ऋत है तथा धर्म और नैतिक नियमों की कारण-कार्य परम्परा—सत्य है।

सार यह है कि अपने कर्मों के सुधार करने वाले हम स्वयं हैं। विषयासक्ति ही माया है, यही दुखों का कारण है। इसके त्याग देने पर व्यक्ति सन्तुष्ट हो जाता है। अतएव अपने सुधार-बिगाड़ की सारी जिम्मेदारी हमारे अपने ऊपर है। यह वस्तु-तथ्य है, तथा व्यक्ति एवं समाज का उन्नायक भी।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता 6/5॥

व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा अपने आपका उद्धार करे, अपने को नीचे न गिरावे, क्योंकि जीव आप ही अपना मित्र है तथा आप ही अपना शत्रु है।

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बीजक, साखी 277)

* * *

55. प्रश्न—भक्ति बड़ी है या ज्ञान?

उत्तर—अपने-अपने स्थान पर दोनों बड़े हैं।

56. प्रश्न—इस जन्म की याद आगे जन्म में तो रहेगी नहीं, तो आज किये गये कर्मों के फल आगे जन्म में कैसे भोगेंगे?

उत्तर—खेत में बीज डाल देने पर उनकी याद किये बिना वे उगते हैं। जो वासनाएं जाग्रत में बना ली गयी हैं, उन्हें हम भूल जाते हैं तो भी उनका स्वप्न होता है। जीव का अन्त:करण कर्म संस्कारों की रील या स्वचालित यन्त्र है। उसके द्वारा अगले जन्म में भी कर्मफल भोग उदय हो जायेंगे।

57. प्रश्न—क्या सांसारिक कर्मों को करते हुए भी समाधि लग सकती है?

उत्तर—निर्वाह का काम तो करना ही पड़ेगा, कहीं मोह न करो।

58. प्रश्न—सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर—जो सदा रहे। आप स्वयं सत्य हैं।

59. प्रश्न—मन बड़ा चंचल है, वह स्थिर कैसे हो?

उत्तर—उसे स्थिर वस्तु दो। प्यासा मनुष्य पानी के लिए तब तक भटकता है जब तक वह शीतल एवं मीठा जल नहीं पाता। इसी प्रकार मन स्थिर एवं नित्य सुख के लिए भटकता है। जिस दिन उसे वह मिल जायेगा, भटकना छोड़ देगा। वह स्थिर सुख अपने आप में है।

60. प्रश्न—अहिंसा का व्रत कैसे निभाया जाये?

उत्तर—मन में दया रखकर।

61. प्रश्न—स्वतन्त्र भारत में भुखमरी, शोषण और अत्याचार क्यों?

उत्तर—क्योंकि अधिक खाने वालों की आदत अभी नहीं सुधरी है।

62. प्रश्न—धर्मनिरपेक्षता किसे कहते हैं?

उत्तर—धर्म के किसी भी सम्प्रदाय का पक्ष न होना।

63. प्रश्न—क्या भक्त होने के लिए कंठी-हीरा पहनना जरूरी है?

उत्तर—भक्त की परिभाषा यदि हम अपनी देशी भाषा में करें तो होगा 'बुराइयों से भागने वाला।' जो सब बुराइयों से भागे वह भक्त है। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसे यथार्थ स्वरूपज्ञान हो। स्वरूपज्ञान की प्राप्ति तथा जीवनपर्यन्त बुराइयों से बचे रहने के लिए विवेक-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु ही आधार हैं। अतएव सद्गुरु शरण ग्रहण करना आवश्यक है; जिससे उनके सत्संग से बोध-विचार की प्राप्ति हो।

रहा, कंठी-हीरा पहनना, यह अहिंसाव्रत का वेष है। सात्विक वेष का कोई दुरुपयोग न करे तो उसका उत्तम प्रभाव पड़ेगा ही। जिसे गुरु का बोध-विचार प्रिय होगा, उसे उसके द्वारा दिये हुए शुद्धवेष धारण करने में संकोच नहीं होगा। प्रधानता ज्ञान एवं यथार्थ आचरण की है, कंठी-हीरा या किसी वेष की नहीं। वेष सहायक मात्र है। यदि कोई उसका दुरुपयोग करे तो वह क्या करेगा।

64. प्रश्न—एक गुरुमुख व्यक्ति गांजा, भांग, शराब, बीड़ी आदि दुर्गुणों से परिपूर्ण है और दूसरा व्यक्ति इन सबसे दूर है, परन्तु बिना गुरुमुख है। निस्तार (कल्याण) क्रम में प्रथम पारी किसकी होगी?

उत्तर—किसी गुरु से दीक्षा ले लेने मात्र से कोई गुरुमुख नहीं होता जब तक यथार्थ ज्ञान एवं यथार्थ आचरण उसमें न आये। जो गुरुदीक्षा लेकर पुन: दुराचरण में लगा है, वह अपने आपके साथ समाज को भी धोखा देता है। उसका कल्याण होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। जो गुरुमुख तो नहीं है, परन्तु दुराचरण से बचा है वह उत्तम है; परन्तु उसका कल्याणकार्य उतने में ही पूरा नहीं हो गया। उसे यथार्थ ज्ञान के लिए योग्य सद्गुरु की आवश्यकता है और गुरु से प्राप्त ज्ञान तथा साधना की युक्तियों से उसे आगे आध्यात्मिक स्तरों में बढ़ना है।

65. प्रश्न—अबोध, अनिच्छुक व्यक्ति को जबरदस्ती दीक्षा-मन्त्र देना एवं कंठी पहना देना कहां तक उचित है?

उत्तर—कहां तक उचित नहीं, सर्वथा अनुचित है। जो यथार्थ गुरु होता है वह जिज्ञासु की श्रद्धा और कोशिश पर उसकी चारित्रिक स्थिति देखकर उसे दीक्षा देता है। जबर्दस्ती किसी को दीक्षा देने वाले, लोगों को शिष्य नहीं बनाते, अपितु स्वयं लोगों के शिष्य बन जाते हैं।

66. प्रश्न—गुरुमुख होना जरूरी है कि गुरु के उपदेशों का पालन करना?

उत्तर—यह प्रश्न विरोधाभास को लिए हुए प्रतीत होता है। गुरु की आज्ञाओं का पालन ही सब कुछ है परन्तु जो गुरुमुख नहीं होगा वह गुरु-आज्ञा का पालन कैसे करेगा? कोई व्यक्ति गुरु-आज्ञा का पालन करता है, इसका अर्थ है कि वह किसी को गुरु मानता है। यदि कोई जिज्ञासु किसी ज्ञानी एवं संतपुरुष को दृढ़तापूर्वक गुरु मानता और सन्मार्ग में चलता है तो चाहे वह दीक्षा संस्कार लिए हो या नहीं, परन्तु वह गुरुमुख ही है।

उपर्युक्त बातें होने पर भी एक बात निश्चित है कि दीक्षा-संस्कार ग्रहण कर लेने पर शिष्य के मन में स्थायी भाव उत्पन्न हो जाता है। बिना दीक्षा लिए कोई बिरला ही गुरु के प्रति स्थायी भाव बना पाता है। यह ठीक है कि शिष्य किसी गुरु से दीक्षा लेता है परन्तु उस गुरु में पूर्ण योग्यता न होने से उसकी उसमें स्थायी श्रद्धा नहीं जम पाती और दूसरे योग्य ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न शिक्षक संत में श्रद्धा जम जाती है। इसीलिए दीक्षागुरु की अपेक्षा शिक्षागुरु अधिक श्रेष्ठ होता है। श्री रामरहस साहेब कहते हैं—

जा मुख निर्णय लखे विशेष। तेहि गुरु सम न और कोई लेख॥ (पंचग्रन्थी)

अर्थात जिसके मुख से विशेष निर्णय एवं ज्ञान प्राप्त हो, उसके समान दूसरा गुरु नहीं है।

जिसके ज्ञान और आचरण दोनों पवित्र हैं, वह वास्तविक गुरु है। ऐसे गुरु की खोज करनी चाहिए। जिसे जीवन का कल्याण करना प्रिय हो, उसे चाहिए कि ऐसे महान गुरु को आत्मसमर्पण करे। अपना मन बिना किसी योग्य गुरु को समर्पित किये जिज्ञासु का उद्धार होना असम्भव है। जिसमें जन्म-जन्मांतर के शुद्ध संस्कारों से परम विवेक का स्रोत स्वयं फूट पड़े, अपने विवेक बल से अपना उद्धार स्वयं कर ले, ऐसा पुरुष बिरला होता है। परन्तु वह भी पहले गुरु से दिशा तो ग्रहण करता ही है और जीवनपर्यन्त भी किसी न किसी रूप से गुरु-सन्तों के प्रति अपनी श्रद्धा रखता है। फिर सर्वसामान्य के लिए तो गुरु के चरणों में अपने को सर्वथा डाल दिये बिना कल्याण की प्राप्ति कहां सम्भव है? स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—

"स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता की बातें चाहे जितनी अच्छी लगें; परन्तु विनय, नम्रता, भक्ति, श्रद्धा एवं विश्वास के बिना कोई धर्म नहीं रह सकता।"

(प्रेमयोग, पृष्ठ 52)

"तुम अपने सिर को दुनिया के चारों कोनों में हिमालय, आल्पस, काकेशस पर्वत पर अथवा गोबी या सहारा की मरुभूमि अथवा समुद्र की तली में जाकर भटका लो, परंतु गुरु के मिले बिना तुम्हें ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। गुरु की

खोज करो, बालक के समान उनकी सेवा करो, उनके प्रसाद (प्रभाव) को ग्रहण करने के लिए अपना हृदय खोल रखो।''

(प्रेमयोग, पृष्ठ 53)

सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

जाको सतगुरु ना मिला, ब्याकुल दहुँ दिश धाय।
आँखि न सूझै बावरा, घर जरै घूर बुताय॥

(बीजक, साखी 245)

जब साधारण ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है तब जीवन का परम लक्ष्य एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए सद्‌गुरु की आवश्यकता के विषय में सन्देह ही नहीं होना चाहिए।

67. प्रश्न—कबीर साहेब ने जीव, आत्मा, परमात्मा, चेतन, जड़ में किसको श्रेष्ठ माना है?

उत्तर—सद्‌गुरु कबीर ने जड़-चेतन दो वस्तुएं मानी हैं। जड़-चेतन दोनों अपनी-अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु दोनों में चेतन ही श्रेष्ठ है। आत्मा और परमात्मा चेतन जीव की ही विशेषता के नाम हैं, ऐसा सद्‌गुरु कबीर ने माना है। जीव, चेतन, आत्मा एक ही बात है। यह आत्मा जब शुद्ध हो जाता है, तब परमात्मा हो जाता है। परम का अर्थ शुद्ध या श्रेष्ठ है। जिस जीव ने सारी जड़ासक्तियों एवं माया-मोह से अपने को ऊपर उठा लिया वही परमात्मा = परम + आत्मा एवं महान आत्मा है। आत्मा कहते हैं स्वयं को।

वस्तुत: लोग भूलवश जिसे बहुत छोटा मानते हैं वह 'जीव' ही महान है। आत्मा, परमात्मा सब उसी के विशेषण हैं।

सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥

(बीजक, रमैनी साखी 37)

68. प्रश्न—जड़-चेतन दो वस्तुएं हैं। चेतन जड़ से पृथक होकर मुक्त हो जाने पर कहां रहता है?

उत्तर—जो जीवन्मुक्ति का अनुभव करता है वही विदेहमुक्ति को ठीक से समझ सकता है। जो कारण-कार्य होता है वह आधार-आधेय होता है। पृथ्वी कारण है और घड़ा कार्य है, तो पृथ्वी आधार है और घड़ा आधेय है। घड़ा

बिना पृथ्वी के ठहर नहीं सकता। चेतन न तो किसी का कारण है न कार्य; अतएव वह न किसी का आधार है और न आधेय। वह स्वरूपत: निराधार है।

जब तक चेतन जीव अपने आपको शरीर मानकर विषयों में आसक्त है, तब तक यह कारण-कार्यमय कर्म-शरीर के चक्कर में भटकता है; और जब अपने आपको शरीर से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन ठीक से समझकर विषयासक्ति एवं देहासक्ति की सर्वथा निवृत्ति कर देता है, तब यह शरीर में रहते हुए भी असंग, अनासक्त एवं वासनामुक्त हो जाता है। उसके चित्त में दृश्यमात्र में कहीं मोह नहीं होता। वह सदैव स्वरूपज्ञान में ही निमग्न होता है।

ऐसे पुरुष का प्रारब्धांत में जब शरीर नष्ट होता है तो उसी के साथ अनादि से लगा हुआ सूक्ष्म शरीर भी सदा के लिए नष्ट हो जाता है, और चेतन शुद्ध अपने आप रह जाता है। उस समय न उसे पृथ्वी से सरोकार रहता है, न जल से, न अग्नि से, न वायु से, न आकाश से। वह अपने आप असंग, निराधार, अकेला, शांत, महाशांत, अनन्तशांत रहता है। यहां उसकी यह परिभाषा की जा रही है। वैसी स्थिति में पहुंचकर तो—

मन वाणी का अन्त तहँ, आप-आप ही शेष।

(विशाल वचनामृत)

मुक्त चेतन तस अकेला तहिया। परख प्रकाश स्वरूपहिं रहिया।

(जड़ चेतन भेद प्रकाश)

वासना के सर्वथा त्याग से चेतन जीव का मोक्ष होता है। यह केवल विश्वास की वस्तु नहीं अपितु विवेकपूर्ण एवं अकाट्य है। परन्तु जिसकी समझ में यह न आये, वह भी जीवन्मुक्ति को समझ सकता है। जीते-जीते शोक-मोह से रहित, शांत रहना सब चाहते हैं; अतएव जीवन्मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वस्तुत: प्रयत्न तो केवल जीवन्मुक्ति की प्राप्ति के लिए करना है, उसके हो जाने पर विदेहमुक्ति अपने आप आयेगी।

69. प्रश्न—लोगों को नित्य मरते हुए देखते हैं और अपने लिए भी जानते हैं कि आजकल में मर जायेंगे, फिर माया-मोह से वैराग्य क्यों नहीं होता?

उत्तर—इसी का नाम है 'अविद्या'। यह जीव अनादिकाल से पांचों विषयों में आसक्त रहा है। सत्य को समझ लेने के बाद भी इस आसक्ति के कारण जीव पुन:-पुन: फिसलता रहता है। साधु-संगत, सद्ग्रंथ-अध्ययन और विवेक-विचार द्वारा इस आसक्ति को धीरे-धीरे क्षीण करना चाहिए। यह जितनी ही क्षीण होती जायेगी वैराग्य बढ़ता जायेगा। और जितना वैराग्य बढ़ता जायेगा उतनी ही विषयों से निवृत्ति होती जायेगी।

दीर्घकाल तक निरन्तर साधना में लगे रहने से वैराग्य बढ़ता जाता है, और अन्त में पूर्ण वैराग्य उदय हो जाता है। हृदय में पूर्ण वैराग्य के उदय होने पर "तीनहुँ लोक लगे तिनुका सम, इन्द्रिय स्वाद भये सब फीका" हो जाता है। वह शरीर को हर समय मरा हुआ देखता है। वह मिले हुए सारे प्राणी-पदार्थों, अवस्था-परिस्थितियों को स्वप्नवत समझता है। उसकी कभी किसी समय कहीं भी आसक्ति नहीं होती। वह अपने को शरीर में से हर समय उसी प्रकार विवेक से निकालकर रखता है जैसे मूंज में से सींक। सब कुछ का अन्त हर समय उसके सामने रहता है।

जो मन पहले रोकने से भी नहीं रुकता था, वह इस अवस्था में अपने आप सदैव शांत रहता है। उसकी दृष्टि में बड़ी-से-बड़ी भौतिक उपलब्धियां कुछ नहीं के समान हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह अकर्मण्य हो जाता है। वह सदैव लोक-कल्याण में संलग्न होता है, परन्तु शोक-मोह से मुक्त होता है।

अतएव हृदय में उत्कट वैराग्य उत्पन्न होने के लिए साधुसंग, सद्ग्रन्थ अध्ययन, सन्त-सेवा, विवेक, विचारादि से मन का मार्जन करते रहना चाहिए।

70. प्रश्न—चेतन स्वरूप से चल है या अचल?

उत्तर—अचल; क्योंकि वह स्वरूपत: वासना से रहित है।

71. प्रश्न—जिसके पूर्व संचित तो उज्ज्वल हैं, परन्तु उसे वर्तमान में सत्संग नहीं मिला, तो उसकी क्या गति होगी?

उत्तर—उज्ज्वल संचित एवं संस्कार वाले सत्संग न मिलने पर भी अपने शुद्ध संस्कार के बल पर उत्तम कर्म करते हैं और लोक-परलोक (पुनर्जन्म) में सुख के भागी होते हैं। वैसे शुद्ध संस्कारी को सत्संग भी किसी-न-किसी विधि से मिल ही जाता है।

72. प्रश्न—प्राचीन युग में नारी का महत्त्व क्या था, और आधुनिक युग में क्या है?

उत्तर—सभी युगों में नारी का महत्त्व ऊंचा रहा, आज भी है। नारी और पुरुष दोनों समाज के अंग हैं, उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं।

73. प्रश्न—सबसे अच्छा क्या है?

उत्तर—मन को पवित्र करना।

74. प्रश्न—अष्ट सिद्धियां जब कल्पित हैं, तब कई आदमी पानी के ऊपर चलकर दिखाते हैं, वे कैसे चलते हैं?

उत्तर—सिद्धि का अर्थ है किसी गुण या कला में परिपक्व हो जाना। मनुष्य पहले बोलना सीखता है, पीछे बोलते-बोलते उसमें इतना सिद्ध हो जाता है कि वह घण्टों प्रवाहपूर्वक बोलता रहता है। इसी प्रकार जो वैज्ञानिक कसौटी पर कसी जाये, वही सिद्धि या सफलता सम्भव है। छू-मन्तर के द्वारा कुछ-का-कुछ कर देने की बात पाखण्ड है। कोई मनुष्य अपने शरीर को मच्छर जैसा बना ले और पुन: पर्वताकार, यह सब असम्भव है।

75. प्रश्न—प्रकृति को किसने बनाया है?

उत्तर—प्रकृति को किसी ने नहीं बनाया, यह अनादि तथा अनन्त है।

76. प्रश्न—सभी मनुष्यों की शरीर-रचना एवं बनावट में अन्तर क्यों?

उत्तर—क्योंकि सभी जीवों के कर्म-संस्कार भिन्न-भिन्न हैं।

77. प्रश्न—मूर्ति-पूजा और वेदों का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—वेदों में यज्ञों के विधानों का बोलबाला है। उनमें मूर्ति-पूजा नहीं है। यह ठीक है कि किसी-न-किसी प्रकार मूर्ति-पूजा थोड़ी-बहुत सदा रही है, परन्तु ढाई-तीन हजार वर्षों से इसका प्रचलन अधिक बताया जाता है। कहा जाता है कि जैनों तथा बौद्धों द्वारा मूर्तिपूजा का अधिक प्रचार हुआ है।

78. प्रश्न—यदि पुनर्जन्म का सिद्धांत सही है तो मोक्ष का विषय कहां तक सही माना जा सकता है?

उत्तर—पुनर्जन्म शतप्रतिशत सही है। जीव वासना वश पुनर्जन्म को प्राप्त होता रहता है। अत: जब तक वासना, जड़ासक्ति एवं अज्ञान है तब तक यह अविनाशी जीव जन्म-मरण में घूमता रहता है। जो जीव विषयों को विजाति तथा दुखपूर्ण समझकर उन्हें त्याग देता है और उनकी वासनाओं से भी भलीभांति छूट जाता है वह मुक्त हो जाता है। जो जीव मुक्त हो जाता है वह पुन: जन्म नहीं ग्रहण करता।

79. प्रश्न—अनेक घड़ों में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने वत क्या ये असंख्य जीव किसी ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं?

उत्तर—सूर्य एकदेशी है तब दूसरे देश में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। ब्रह्मवादी लोग ब्रह्म को सर्वत्र मानते हैं, फिर वह कहां नहीं है जहां उसका प्रतिबिम्ब पड़ेगा? इस अविनाशी चेतन जीव को प्रतिबिम्ब, आभास, अंश आदि बताना भयंकर भूल है। वस्तुत: चेतन एक और व्यापक नहीं, अपितु अनेक और भिन्न-भिन्न हैं।

यह अविनाशी जीव ही जड़ासक्ति को छोड़कर शिव है। इससे पृथक शिव, ब्रह्म, आदि की खोज करना आकाश नापना है।

* * *

80. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब पंथवाद के समर्थक थे?

उत्तर—'पंथवाद' का तात्पर्य है अपने माने हुए पंथ या सम्प्रदाय में उलटी-सीधी चाहे जैसी बातें हों उन्हीं का समर्थन करते रहना। श्री कबीर साहेब इसके तनिक भी कायल नहीं थे; परन्तु सत्य बातों को मानने वालों की भी एक परम्परा हो जाती है, और वह परम्परा पंथ या सम्प्रदाय के नाम से पुकारी जाती है। उस परम्परा, पंथ एवं सम्प्रदाय वालों को सावधान रहना चाहिए कि वे अपनी परंपरा में किसी गलत मान्यता को स्थान न लेने दें। यदि किसी पंथ या सम्प्रदाय वाले किसी गलत एवं अवैज्ञानिक मान्यता को स्थान नहीं देते, सदैव सत्य में अनुराग रखते हैं और दूसरे पंथवालों की भी उचित बातों का आदर करते हैं, तो वह परम्परा पंथ तो कहला सकती है परन्तु उसमें पंथवाद का आरोप नहीं होगा।

81. प्रश्न—क्या कबीरपंथ कबीर दर्शन के अनुरूप है?

उत्तर—कबीरपंथ का दायरा वैदिक दायरा के समान ही बहुमुखी हो गया है और सब प्रकार के विश्वासी इसमें अपनी शाखा बना लिए हैं। इसलिए कबीरपंथ नाम मात्र से हम नहीं कह सकते कि वह सब-का-सब कबीर दर्शन की कसौटी पर खरा है। कबीरपंथ में कबीर दर्शन की मौलिक एवं खरी विचारधारा पर चलने वाली भी शाखाएं हैं और कबीर साहेब के मौलिक विचारों से कुछ या अधिक भिन्न होकर चलने वाली भी शाखाएं हैं। परन्तु वे सभी अपने को कबीर साहेब की सिधाई में समझती हैं। जैसे सभी हिन्दू या आर्य अपने को वैदिक कहते हैं चाहे परस्पर कितना अन्तर हो।

सद्गुरु कबीर का वास्तविक दर्शन क्या है इस पर अन्वेषण करें।

82. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर काम-भोग से कैसे बचें?

उत्तर—वीर्य हानि में अपना पतन और ब्रह्मचर्य में असीम सुख जानकर जब ब्रह्मचर्य का दृढ़ निश्चय कर लिया जाता है, साथ-साथ संगदोष से दूर रहा जाता है, तब गृहस्थी में रहकर भी मनुष्य कामभोग से बच सकता है। इसके लिए भोजन-वस्त्र सादा, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सत्संग आदि आवश्यक हैं।

83. प्रश्न—संस्कार तथा वासना आदि हैं कि अनादि? यदि आदि हैं तो कब से और क्यों तथा अनादि हैं तो छूटेंगे कैसे?

उत्तर—वासना को आदि कहते नहीं बनता। बिना देह के वासना नहीं बनती और बिना वासना के देह नहीं बनती; अतएव दोनों प्रवाहरूप अनादि हैं।

वासना अनादि होने से भी उसका नाश हो सकता है। बीज और वृक्ष प्रवाहरूप अनादि हैं और बीज को आग में सेंक देने से उससे वृक्ष नहीं होता। इसी प्रकार वासना का अभाव कर देने से उसका नाश हो जाता है, इसलिए पुन: शरीर नहीं होता, और जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

84. प्रश्न—कहा जाता है मन ही से सारा प्रपंच खड़ा है। जगह-जगह मन की बड़ी महिमा की गयी है, तो चेतन का क्या महत्त्व है?

उत्तर—चेतन का सर्वोपरि महत्त्व है। चेतन की सत्ता से ही मन सत्तावित है, अन्यथा वह पंगु है और कहना चाहिए कुछ नहीं है। परंतु चेतन जीव की सत्ता पाकर मन ही सारे प्रपंचों का कारण बना है। यदि व्यक्ति दीर्घ-काल तक वैराग्य-अभ्यास करके मन को समेट ले तो वह मुक्त हो जाये।

85. प्रश्न—सत्युग में राजा हरिश्चन्द्र और द्वापर युग में धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर—ये मृत्युलोक से सशरीर स्वर्गलोक कैसे पहुंचे होंगे?

उत्तर—मनुष्य इस संसार में इच्छानुकूल रूप, सौन्दर्य, आयु, ऐश्वर्य और भोग नहीं पाता है; इसलिए अन्य लोकों में उनकी प्राप्ति की कल्पना करता है। वस्तुत: अपूर्ण कामनाओं की उपज स्वर्ग की कल्पना है। संसार के कुछ महान लोगों ने भी भोले और उद्दण्ड लोगों को पाप मार्ग से हटाकर पुण्य मार्ग में लगाने के लिए वीभत्स नरक तथा स्वर्णिम स्वर्ग का वर्णन किया है जो सर्वथा कल्पना है। हां, किये हुए पाप तथा पुण्य कर्मों के परिणाम जीव को मिलते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। सांसारिक सुख ही स्वर्ग है और दुख ही नरक है। सुख-दुख से परे शांति पद मोक्ष स्थिति है, जो जीव का अपना वास्तविक स्वरूप है।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध हो गया कि स्वर्ग एक कल्पना है, फिर उसमें हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर का सशरीर पहुंचना अपने आप मिथ्या है।

86. प्रश्न—प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों में कौन बड़ा है? क्या बिना पुरुषार्थ के केवल प्रारब्ध के बल पर जीवन में सफलता मिल सकती है? प्रारब्ध में अन्न-जल होंगे तो मिलेंगे यह कहना या मानना क्या उचित है?

उत्तर—प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों में पुरुषार्थ बड़ा है; क्योंकि जो आज प्रारब्ध खड़ा है वह भी किसी दिन के किये हुए पुरुषार्थ का फल है। प्रारब्ध

का अपनी जगह पर महत्त्व है। यह प्रारब्ध ही है कि किसी की बुद्धि बड़ी प्रखर है और कोई एकदम मंद बुद्धि है। किसी को शारीरिक सुगठन, सौन्दर्य, नीरोग्यता प्राप्त है और कोई इन सबों से हीन है। कोई प्रतिभा का धनी है और कोई अत्यन्त निस्तेज है।

केवल प्रारब्ध पर बैठे रहने वाले की कभी उन्नति नहीं हो सकती। पुरुषार्थ व कर्म उन्नति का द्वार है। पीछे दिन का रखा हुआ बासी भोजन प्रारब्ध रूप है, परन्तु बिना पुरुषार्थ के वह भी पेट में नहीं जाता। प्रारब्ध के भरोसे पुरुषार्थ छोड़ बैठना आलस्य व अकर्मण्यता का लक्षण है। जल-भोजन प्रारब्ध में होंगे तो मिलेंगे ऐसा सोचना भी ठीक नहीं, उनके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

भौतिक उन्नति में भी पुरुषार्थ की महान आवश्यकता है और आध्यात्मिक उन्नति के लिए तो पुरुषार्थ मुख्य है। किसी के प्रारब्ध में मोक्ष नहीं रहता, वह पुरुषार्थ से ही प्राप्त होता है।

87. प्रश्न—यदि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है तो उसे किन नियमों का पालन करना होगा?

उत्तर—मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष का अर्थ है समस्त आसक्तियों, वासनाओं का अन्त होकर जीव का अपने आप में शान्त हो जाना। इसके लिए यथार्थ ज्ञान एवं जड़-चेतन का भिन्न विवेक और विषयासक्ति की सर्वथा निवृत्ति आवश्यक है। इन सबके लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त आदर्शों को जो प्राप्त हैं उनके प्रति श्रद्धा, उनकी उपासना, संगत एवं उनसे वार्तालाप किया जाये और उनकी सेवा करके उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विषयों के ज्ञान और प्रभाव ग्रहण किये जायें। अन्ततः जीवनपर्यन्त ऐसी रहनी में रहा जाये जिससे अपने आपको विषयासक्ति से सर्वथा बचाकर स्वरूपस्थिति में निमग्न रहा जा सके।

88. प्रश्न—मनुष्य धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य एवं अच्छे-बुरे कर्म जानता है, फिर भी वह अधर्म, पाप और बुरे कर्म क्यों करता है?

उत्तर—क्योंकि वह विषयासक्तिवश प्रलोभन में भूल जाता है। व्यक्ति आसक्ति और प्रलोभनों को जीतकर ही ज्ञान के अनुसार आचरण अपना सकता है। आसक्ति और प्रलोभनों को जीतने के लिए आवश्यक है कुसंग का त्याग, सत्संग का ग्रहण, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय, अपनी त्रुटियों पर ग्लानि, उन्हें सर्वथा दूर करने के लिए दृढ़ निश्चय।

89. प्रश्न—क्या हनुमानजी सचमुच सूर्य को निगल गये थे?

उत्तर—विज्ञान के मतानुसार सूर्य पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा दहकता

आग का पिण्ड है। उसे हनुमान जी निगल कैसे सकते हैं? यह कवि कल्पना है।

90. प्रश्न—जब एक दीपक से लाखों दीपक जल जाते हैं तब एक भक्त से लाखों भक्त क्यों नहीं बन जाते?

उत्तर—बन तो जाते हैं, आखिर प्रचार कैसे होता है? हां, सबसे लाखों भले न बनें, परन्तु कुछ तो बनते ही हैं और जो प्रतिभाशाली भक्त या सन्त होता है उससे लाखों लोग चेत जाते हैं।

91. प्रश्न—शरीर छूटते ही स्मरणशक्ति समाप्त हो जाती है, और जीव अचेत हो जाता है, तो वह खानियों में कैसे जाता है?

उत्तर—जीव मानव शरीर की जागृति-अवस्था में अनेक कर्मसंस्कारों का संग्रह कर रखता है। शरीर छूटने पर उन्हीं संस्कारों के अधीन पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। पशु आदि खानियों के भी शरीर छूट जाने पर अन्त:करण के पूर्व बीज-वासनानुसार जीव को पुन: शरीर मिल जाता है। व्यक्ति जब सोने चलता है तब यह सोचकर नहीं सोता कि मैं अमुक स्वप्न देखूंगा परन्तु सो जाने पर स्वप्न आते हैं और वे ही आते हैं जिनके संस्कार व वासनाएं मन में बनी हैं। मृत्यु होने पर जीव का स्थूल शरीर तो छूट जाता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर उसके साथ रह जाता है। उसी सूक्ष्म शरीर में सारे कर्मसंस्कारों की सामग्री रहती है जिससे जीव पुनर्जन्म को प्राप्त होता है।

92. प्रश्न—वासना, संस्कार तथा स्मरण में क्या अन्तर है?

उत्तर—जड़ासक्ति के जमे हुए बीज वासना या संस्कार हैं तथा वृत्ति का ख्याल होना स्मरण है। कर्मी जीवों के अन्त:करण में वासनाबीज हर समय रहते हैं, परन्तु स्मरण हर समय नहीं रहते।

93. प्रश्न—आत्महत्या क्या है तथा उसका फल क्या होता है?

उत्तर—वैसे तो अपने आप का कल्याण न करना आत्महत्या है, और उसका परिणाम है जन्मादि संकटों में भटकते रहना। परन्तु स्थूल दृष्टि से अपने शरीर का नाश कर देना आत्महत्या है; और इसका परिणाम दुख है। यदि धर्म की रक्षा के लिए कोई आत्महत्या करता है तो उसका परिणाम उज्ज्वल ही होगा।

94. प्रश्न—स्वस्वरूप क्या है?

उत्तर—'स्व' कहते हैं स्वत: या खुद को, रूप कहते हैं पदार्थ को; इस प्रकार अपना चेतन पदार्थ ही स्वस्वरूप है। उसे नेत्रों से तथा कल्पना में देखने

की चेष्टा निरर्थक है। जो कुछ नेत्रों से दिखाई देगा वह रूप विषय एवं जड़ होगा और जो कुछ कल्पना में दिखेगा वह मन:प्रसूत रहेगा। वस्तुत: पंच ज्ञानेन्द्रियों से एवं मन:कल्पना में जो देखता है वह द्रष्टा ही चेतन है, वही अपना स्वरूप है जो सबको देखता है। उसे कौन देख सकता है? सूर्य अन्य को प्रकाश देता है और स्वयं प्रकाशस्वरूप रहता है। सूर्य को दूसरा प्रकाश नहीं दे सकता। इसी प्रकार जीव सबको जानता है और स्वयं ज्ञान स्वरूप रहता है।

95. प्रश्न—प्रात: तथा सायं किसके संध्या, वंदन एवं ध्यान किये जायें?

उत्तर—प्रात: और सायं कुछ समय निकालकर मन को एकाग्र करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इसमें शैली अपने श्रद्धा-विश्वास के अनुसार रखना ठीक है। जिस प्रकार मन एकाग्र हो सके वही साधन उचित है। पहले किसी सन्त पुरुष का ध्यान अच्छा साधन है। फिर तो सब साधनों का अंत करके अपने आप शांत रह जाना ही परम लक्ष्य है। यह अभ्यास और वैराग्य पर निर्भर करता है। सद्ग्रंथों का स्वाध्याय अधिक फलप्रद है।

96. प्रश्न—मैं कौन हूं? जगत क्या है? मेरे बंधन क्या हैं? ये कैसे छूटेंगे?

उत्तर—मैं अविनाशी चेतन हूं। जगत परिवर्तनशील जड़ है। विषयासक्ति मेरा बंधन है; और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से वह छूट सकता है।

97. प्रश्न—सृष्टि रचयिता विष्णु हैं या जीव?

उत्तर—सृष्टि अनादि है। जीव वासनावश इस सृष्टि में अनादिकाल से घूम रहे हैं। विष्णु भी एक जीव है, उनकी भी वही दशा है।

98. प्रश्न—गृहस्थाश्रम में रहकर मोक्ष-साधना का क्या उपाय है?

उत्तर—जल में कमल के समान गृहस्थी से अनासक्त होकर रहना और सन्त-गुरुजनों की सेवा तथा सत्संग करते हुए साधनापरायण रहना।

99. प्रश्न—अपनी पत्नी के प्रति पति का क्या कर्तव्य है?

उत्तर—पत्नी के साथ मधुर व्यवहार रखते हुए उसे और अपने को मोक्षपथ में ले चलना।

100. प्रश्न—क्रोध का नाश कैसे करें तथा क्रोधी मनुष्य को कैसे समझावें?

उत्तर—अपने क्रोध का नाश तभी किया जा सकता है जब अपनी त्रुटियों को देखा जाये, अपने अहंकार को दूर किया जाये तथा अपने मन की कामनाओं पर विजय प्राप्त की जाये। क्रोध के भयंकर कुपरिणाम को नजर में रखकर

क्रोध का त्याग किया जा सकता है। क्रोध के बाद पश्चाताप, ग्लानि, दुख, हानि, रोग, मानसिक उलझनें बढ़ती हैं—ऐसा समझ लेने पर क्रोध अवश्य दूर होगा। क्षमाशील तथा शीतल महापुरुषों का स्मरण कर लेने पर क्रोध दूर हो सकता है।

प्रात: सोकर उठो और बिस्तर पर ही दृढ़ निश्चय करो कि आज तुम क्रोध नहीं करोगे, क्रोध को बिलकुल नहीं आने दोगे। इस निश्चय को लेकर अपने दिनभर के कामकाज में रहो, देखोगे तुम्हें जब क्रोध आने को होगा मन में रोक लगेगी। यदि क्रोध आ गया तो पीछे ग्लानि होगी। रात में सोते समय दिन भर पर सिंहावलोकन करो तुम्हें कब-कब और कितनी बार क्रोध आया है। तुम देखोगे क्रोध का कारण छोटा रहा है और क्रोध का परिणाम भयंकर। अब पुन: हुए क्रोध पर ग्लानि करो और आगे क्रोध का सर्वथा दमन करने का दृढ़ निश्चय करो। इस प्रकार नित्य क्रोध को जीतने का निश्चय और पुरुषार्थ करते जाओ तो निश्चित तुम उस पर विजयी हो जाओगे।

रहा, क्रोधी मनुष्य को समझाने की बात, सो क्रोध के समय वह समझ नहीं सकता है। क्रोध उतर जाने पर उपर्युक्त बातें समझायी जा सकती हैं। कोई क्रोध में भर आया है यदि तुम उस समय हंस दो, विनम्र हो जाओ, उसकी बात यदि सम्भव हो तो मान लो तो उसका क्रोध अवश्य शान्त हो सकता है।

101. प्रश्न—स्वार्थ में फंसे हुए जीव को परमार्थ की कमाई करने का क्या उपाय है?

उत्तर—सन्तों के सत्संग, सद्ग्रंथों के अध्ययन तथा बारम्बार अच्छे विचार लाने से मनुष्य स्वार्थ की आसक्ति को जीतने की क्षमता प्राप्त करता है। वैसे सब जीव को स्वार्थ की आवश्यकता है। भोजन, वस्त्र, निवासस्थान तथा जीवनधारणोपयोगी अन्य वस्तुओं का उपार्जन, संग्रह, रक्षा, उपभोग आदि ही स्वार्थ है और इसकी सबको आवश्यकता है। हां, मनुष्य के स्वार्थ और कुत्ते के स्वार्थ में अन्तर है। चार मनुष्यों के बीच में रोटी रख दी जाये तो वे बांटकर खायेंगे और चार कुत्तों के बीच में रोटी रख दें तो वे लड़कर खायेंगे और हो सकता है कि परस्पर की लड़ाई में रोटी धूल-कीचड़ में सनकर खराब हो जाये या कौआ उठा ले जाये। मनुष्यों में भी बहुत-से ऐसे लोग होते हैं जिनका स्वार्थ कुत्तों का होता है। ऐसा स्वार्थ अत्यन्त घृणित होने से निन्दनीय और त्याज्य है। जैसा कि पहले बताया गया कि स्वार्थ के बिना किसी का चल नहीं सकता। हां, स्वार्थ मानवतापूर्ण होना चाहिए। बांटकर खाना चाहिए। भौतिक वस्तुओं के लिए संघर्ष नहीं होना चाहिए।

स्वार्थ = स्व + अर्थ = अपना प्रयोजन। स्वार्थ का तात्पर्य है अपना

प्रयोजन। आपका मुख्य प्रयोजन क्या है? शांति की प्राप्ति। अतएव सच्चा स्वार्थ शांति एवं कल्याण की प्राप्ति ही है। लोग स्वार्थ-स्वार्थ कहते हैं; परन्तु सच्चा स्वार्थ नहीं जानते। सच्चा स्वार्थ तो जीव का कल्याण ही है और यही परमार्थ भी है। परम + अर्थ = परम प्रयोजन शांति की प्राप्ति है। शांति की प्राप्ति तभी होगी जब मनुष्य विकारों को छोड़ते हुए जीवन को निर्मल करता जायेगा।

* * *

102. प्रश्न—कबीर किसे कहते हैं?

उत्तर—कबीर भारत में एक महान सन्त हो गये हैं। वे महामानव, महात्मा और सत्य के जिज्ञासुओं के सद्गुरु हैं। क = काया, बीर = जीतनेवाला। इस प्रकार काया को जीतने वाले इन्द्रियजित को भी कबीर कहते हैं। काया के निवासी काया में श्रेष्ठ जीव को भी कबीर कहते हैं।

श्री गुरुदयाल साहेब ने कबीर परिचय में कहा है—

पन्द्रह तत्त्व स्थूल तन, नौ तत्त्व लिंग शरीर।
चौबिस मृतुक जेहि से जिये, सो जिन्दा जीव कबीर॥

103. प्रश्न—बन्दगी का अर्थ क्या है?

उत्तर—बन्दगी का अर्थ है वन्दना। विद्वन्मूर्ति श्री विचार साहेब 'बन्दगी विचार' में कहते हैं—परस्पर विरोधी हिन्दू और मुसलमानों को एक रास्ते पर लाने के लिए सद्गुरु कबीर ने एक बीच का रास्ता निकाला है, जो कि दोनों को अनुकूल हो। यही कारण है कि इनकी वाणी में संस्कृत और फारसी दोनों का मेल रहता है। 'बन्दगी साहेब' भी एक ऐसा वाक्य है कि इसमें संस्कृत और फारसी दोनों शब्द हैं। इनमें से 'बन्दगी' शब्द तो शुद्ध संस्कृत है, क्योंकि "वदि अभिवादन-स्तुत्या:" अभिवादन और स्तुति अर्थ वाले 'वदि' धातु से भावार्थक 'धञ' प्रत्यय करने से 'वन्द' शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ 'वन्दन वन्द:' इसके अनुसार वन्दना करना होता है। 'वन्दनस्य वन्दनाया: गीर्वाणी वन्दगी'। इस निरुक्ति से बन्दगी शब्द का अर्थ वन्दना वचन होता है।

104. प्रश्न—मुझे उपन्यास पढ़ने की आदत है। मैं उसे छोड़ना चाहता हूं, परन्तु छूट नहीं रही है। मैं सद्ग्रंथ पढ़ना चाहता हूं, परन्तु उसमें मेरा मन नहीं लगता। मैं कैसे सुधार करूं?

उत्तर—किसी वस्तु का हानिप्रद जानकर त्याग तथा लाभप्रद जानकर ग्रहण होता है। पहले उपन्यास पढ़ना हानिप्रद तथा सद्ग्रंथ पढ़ना लाभप्रद समझें।

तत्पश्चात उपन्यास की जगह सद्ग्रंथ पढ़ना आरम्भ करें। पहले सद्ग्रंथ पढ़ने में मन कम लगेगा, परन्तु थोड़ा-थोड़ा नित्य पढ़ते जाने से उसमें रुचि बढ़ जायेगी।

उपन्यास सर्वथा काल्पनिक होते हैं। कल्पना द्वारा भी उज्ज्वल मानवीय चरित्र का चित्रण हो तो उत्तम है; परन्तु ऐसे उपन्यास बहुत कम होते हैं। जो होते भी हैं—उनमें लोग रुचि नहीं लेते। उपन्यास के नाम पर जो बाजारों में पुस्तकें बिकती हैं और जिन्हें लोग पढ़ते हैं, केवल बकवास और अनर्थकारी हैं। उनके द्वारा चरित्र पर दूषित प्रभाव पड़ता है। अत: उपन्यास छोड़कर सद्ग्रंथ पढ़ो जिससे चरित्र का निर्माण हो।

105. प्रश्न—सुधा वृष्टि भइ दुइ दल माहीं। जिये भालु कपि निश्चर नाहीं॥ जब दोनों दल में अमृत की वर्षा हुई तब केवल भालु-कपि ही क्यों जिये, निश्चर क्यों नहीं जिये?

उत्तर—मनुष्य का अपना चेतन स्वरूप ही अमर होने से अमृत है। अन्यथा अमृत नाम की कोई अन्य वस्तु कहीं है ही नहीं। अमृत वर्षा का कथन ही काल्पनिक है। हां, इसका यह अर्थ किया जा सकता है कि संसार में सन्त-महात्मा ज्ञानोपदेश रूप अमृत की वर्षा करते हैं, उसको श्रवण, मनन और धारण करके सतोगुणी लोग तो अपना कल्याण कर लेते हैं और तामसी लोग उन उपदेशों से कोई लाभ नहीं उठा पाते।

106. प्रश्न—क्या मोक्ष और अमरता में अन्तर है?

उत्तर—बन्धनों से छूट जाना मोक्ष है और नित्य स्थिर रहना अमरता है। जन्म-मरण से छूट जाने को अमरता की प्राप्ति कहते हैं। इस दृष्टि से मोक्ष और अमरता एक ही है।

107. प्रश्न—अमरता कब मिलती है, शरीर रहते-रहते या उसके बाद?

उत्तर—शरीर रहते-रहते जो व्यक्ति छूटने वाली चीजों का मोह छोड़ देता है और अपने अमर स्वरूप चेतन में स्थित हो जाता है वही अमरता प्राप्त है। उसका शरीर छूट जाने पर उसे पुन: शरीर नहीं धारण करना पड़ता।

108. प्रश्न—किस प्रकार इन्द्रियों पर विजय पायी जाये?

उत्तर—सन्तों के सत्संग, सद्ग्रंथों के अध्ययन तथा तत्त्वविवेक से जब विषयों की असारता, दुखरूपता तथा क्षणभंगुरता मन में जम जायेगी तब इन्द्रिय-मन पर अपने आप विजय हो जायेगी।

109. प्रश्न—पशु और पक्षी हमेशा नग्न रहते हैं; फिर भी उनको कामभाव समयानुसार होता है; परन्तु श्रेष्ठ मानव हर प्रकार से परदा में रहते हुए भी

प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कार्य करता है, क्यों?

उत्तर—पशु में अधिक मानसिक विकास नहीं होता। उसका जीवन स्वाभाविक होता है। इसलिए कामादिक भाव भी उसको स्वभावानुसार ही उठते हैं। मानव मानसिक क्षेत्र में सर्वोच्च विकासशील है। उसमें सोचने-समझने की महत्तम शक्ति है। वह भाषा, व्याकरण, कला, विज्ञान, कामाचार, ब्रह्मचर्य, चौरत्व, हिंसा, क्षमा, असाधुता तथा साधुता—जिस ओर पूरे बल से सोचेगा उधर गहराई में उतर जायेगा।

जिसके पास पैसे नहीं हैं वह न कसाईखाना खुलवा सकता है और न धर्मशाला। जिसके पास पैसे हैं वह कुछ भी खुलवा सकता है। पशु का मन विकासशील न होने से वे स्वाभाविक दशा में रहते हैं और मनुष्य का मन विकासशील होने से वह जिस ओर लक्ष्य करता है उसी ओर हद कर देता है।

शरीर निर्माण में मूल विषयासक्ति है। पांचों इन्द्रियों के सामने पांचों विषय विद्यमान हैं; अतएव अन्तर-बाहर विषय का भाव एवं वातावरण पाकर प्राय: हर प्राणी विषयासक्त है। अतएव मनुष्य के लक्ष्य में विषयासक्ति होने से वह उसके विषय में अपने विकासशील मन से सोचता है और उसकी ही गहराई में उतर जाता है। इसलिए परदा, मर्यादा, नीति, दण्डविधान आदि होते हुए भी मनुष्य अधिक विषय-पतित है।

हां, जिसका लक्ष्य अन्तर्मुख हो जाता है वह विषयों से सर्वथा विरक्त हो जाता है। विकसित मन वाला मानव जब विषय-निवृत्ति की दिशा में सोचता है तब उसका हृदय विषय-वासना से सर्वथा शून्य हो जाता है जो पशु नहीं कर सकता।

मनोविज्ञान के श्रेष्ठ पण्डित सिगमण्ड फ्रायड तथा कुछ भारतीय आधुनिक फ्रायड जो यह कहते हैं कि "यदि मनुष्य नंगे रहेंगे और नर-नारी अभेद व्यवहार बरतेंगे तो वे कामातुर नहीं होंगे"—एक भ्रमधारणा है। इस भ्रमधारणा का परिणाम पश्चिमी देश भुगत रहा है जहां 45 प्रतिशत अवैधानिक गर्भ रहते हैं तथा किशोरों और किशोरियों में प्रमेह आदि नाना यौन रोग व्याप्त हैं। समलैंगिक विवाह उसका अति है। अतएव नीति, मर्यादा, परदा सब आवश्यक हैं।

110. प्रश्न—वैयक्तिक भोगवाद किसे कहते हैं?

उत्तर—वह मान्यता जो समाज के लिए न होकर व्यक्ति विशेष के लिए हो, वैयक्तिक भोगवाद है। अर्थात जिस भोग में व्यक्ति को महत्त्व दिया जाये, समाज को नहीं।

111. प्रश्न—गुरु और लघु में क्या भेद है?

उत्तर—मर्यादा की जगह से भाव का भेद है; जैसे कोई व्यक्ति अपने शिष्य के समक्ष गुरु है, परन्तु अपने गुरु के समक्ष लघु है। यह गुरु-शिष्य की मर्यादा है और इसमें भाव एवं मान्यता का भेद है।

वास्तविकता के धरातल पर वस्तुस्थिति का भेद है; जैसे चित्रकला के सम्बन्ध में, जो चित्रकला में निपुण है वह गुरु है और जो चित्रकला नहीं जानता वह लघु है। जो अनासक्त है वह गुरु है, श्रेष्ठ है और जो आसक्त हो वह लघु एवं छोटा है।

112. प्रश्न—'साहेब' का शब्दार्थ क्या है, कहां से और कब हुआ?

उत्तर—'साहेब' या 'साहब' कुछ विद्वानों की दृष्टि से फारसी और कुछ की दृष्टि से अरबी शब्द है। इसका अर्थ स्वामी है। यह विदेशी है। यह कहां से और कब हुआ, कहना कठिन है। यह खोज का विषय है, जिसमें कोई लाभ नहीं। हां, हिन्दी साहित्य के दो भारतीय दिग्गज श्री कबीर साहेब और गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी वाणियों में 'साहेब' शब्द का प्रयोग स्वामी के लिए किया है। जिसका अर्थ मालिक, गुरु, भगवान आदि यथास्थान लगाया जा सकता है। प्रमाणस्वरूप श्री कबीर साहेब बीजक में कहते हैं—

पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे से नेह लगाय के, मूलहु आवै खोय॥ साखी 309॥

साहेब साहेब सब कहैं, मोहिं अँदेशा और।
साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर॥ साखी 181॥

तेहि साहेब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा॥ रमैनी 75॥

गोस्वामीजी कहते हैं—

सेवक कर पद नयन सो, मुख से साहिब होय।
तुलसी प्रीति की रीति लखि, सुकवि सराहैं सोय॥
गुरु गोसाइं साहिब सियरामू। लागत मोहिं नीक परिणामू॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम सम, साहिब शील निधान॥ (मानस)

113. प्रश्न—एक व्यभिचारी किस विधि से ब्रह्मचारी बन सकता है?

उत्तर—व्यभिचार और विषयासक्ति में दोष तथा दुख समझ लेने पर, प्रत्युत उसे ही दुखों का केन्द्र जान लेने पर और ब्रह्मचर्य में अनन्त सुख-शान्ति का ज्ञान हो जाने पर व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन सकता है। हिंसक एवं क्रूर

रत्नाकर जैसे दयालु बाल्मीकि बन गये, वैसे व्यभिचारी ब्रह्मचारी बन सकता है। जो व्यभिचारी तथा अधिक विषयासक्त है निश्चित ही उसके पास मनोबल है। परन्तु वह विपरीत दिशा में लगा हुआ है। जब उसे अपने हानि-लाभ का वास्तविक ज्ञान हो जायेगा, तब उसका मनोबल विषयासक्त त्यागने और ब्रह्मचर्य धारण करने में लग जायेगा।

जिस रात गांधीजी के पिता की मृत्यु होने वाली थी गांधी समझते थे कि आज पिताजी मौत से बचेंगे नहीं। ऐसे उनके लक्षण ही थे। परन्तु वे इस अन्तिम समय में अपने पिता के पास नहीं रह सके। जिस समय उनके पिता का शरीर छूटा, गांधीजी अपनी पत्नी के कमरे में थे।

अपनी इस विषयासक्ति से गांधीजी को बड़ी घृणा हुई और वे आदर्श ब्रह्मचारी बने।

जिसमें मनोबल नहीं होता वह न दुर्गुणी होता है और न सद्गुणी। वह पशुवत कमा-खाकर मर जाता है। जिसके पास मनोबल है वही दुर्गुणी अथवा सद्गुणी हो सकता है। अत्यन्त विषयासक्त भर्तृहरि अत्यन्त वैराग्यवान हुए। जिसके पास तेज गाड़ी है वह विपरीत दिशा में जैसे तेज जा सकता है वैसे अनुकूल दिशा में भी। हां, दिशा निर्धारित कर लिया जाये और वैसा संग, साहित्य, रुचि का आधार पकड़ लिया जाये, बस काम बना-बनाया है।

114. प्रश्न—प्रकृति की हर वस्तु मानव के लिए है तो मानव किसके लिए है और किस प्रकार है?

उत्तर—मानव अपने और दूसरे के कल्याण के लिए है। दूसरे का कल्याण वही कर सकता है जो अपना कल्याण पहले कर ले। अपना कल्याण तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी बुराइयों को देखकर निकाले।

115. प्रश्न—जब जीव कर्म करने में स्वतंत्र है तब फल भोगने में परतन्त्र क्यों है?

उत्तर—क्योंकि वह कर्म कर चुका है। हम अपने पैर में कुल्हाड़ी मारें या न मारें, स्वतन्त्र हैं; परन्तु जब मार लिए तब उसका फल भोगने में उसी के अधीन हैं। हम आम या प्याज खायें या न खायें स्वतन्त्र हैं; परन्तु खाकर उनकी सुगन्धी-दुर्गन्धी का अनुभव करना ही पड़ेगा।

116. प्रश्न—'नारी नरकस्य द्वारं' साधना के क्षेत्र में कहां तक उचित है

उत्तर—'नारी नरक का द्वार या दुखों का घर है' यह कहना मुमुक्षु पुरुषों के मन को स्त्री की आसक्ति से छुड़ाने का एक प्रयास है। इस दृष्टि से यदि

मुमुक्ष्वी नारी का मन पुरुषों की आसक्ति से विरक्त करना पड़े तो पुरुषों को नरक का द्वार तथा दुखों का केन्द्र कहना पड़ेगा।

वस्तुतः स्त्री और पुरुष—दोनों के शरीर नरक हैं। दोनों के शरीर से आसक्ति दुखों का कारण है।

चाहे नर हो या नारी, उनके अपने मन की विषयासक्ति ही नरक है। पुरुष अपने मन की विषयासक्ति जब नहीं दूर कर पाता तब वह स्त्रियों को गाली देता है। है उसकी अपनी दुर्बलता, परंतु वह अपने अज्ञानवश स्त्रियों को कोसता है। कुछ ऐसे साधक हैं जो स्वयं तो विषयासक्ति से सर्वथा मुक्त हैं, परन्तु वे पूर्वग्रहवश दूसरे मुमुक्षुओं के हित के लिए स्त्रियों के दोषों का वर्णन कर जाते हैं। कितने साधक-कवि तो रस्म पूरी करते हैं। उनके विचार से स्त्रियों को जब तक कुछ भला-बुरा न कह लिया जाये तब तक मानो सच्चा वैराग्य ही नहीं हुआ।

स्त्री कोई निर्जीव पदार्थ नहीं है कि वह केवल जीव का बन्धन है। स्त्री और पुरुष दोनों के शरीरों में एक समान चेतन जीव हैं और दोनों का बन्धन विषयासक्ति है जो दोनों के अपने-अपने मन में है। वास्तविकता का विवेक होने पर वह मिटेगी, किसी को भला-बुरा कहने से नहीं।

117. प्रश्न—यदि कोई हमें फिजूल तंग करे तो हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर—सहन और क्षमा महान अस्त्र हैं जिनसे दुष्ट भी सज्जन बन जाता है। जीवन में पदे-पदे सहन और क्षमा की आवश्यकता है। सहन और क्षमा में हानि दिखे तो भी उन्हें न छोड़ना चाहिए; क्योंकि उनमें सच्चा लाभ है। न सहने और बदला लेने से दुख और हानि बढ़ते हैं, यह गम्भीरता से सोचने पर पता चलेगा।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि आदमी डरपोक बन जाये और हर अत्याचार को होने दे। डरपोक होना बहुत बड़ा अपराध है। किन्तु अत्याचार का निरोध भी सहन, क्षमा और गम्भीरतापूर्वक होना चाहिए।

* * *

118. प्रश्न—जीव अविनाशी हैं तो प्राणिजगत में जन्तुओं की वृद्धि हर 25 वर्ष में दुगुनी कैसे हो जाती है?

उत्तर—जीव अविनाशी हैं और जड़ भी नित्य है। इस संसार में जीव और जड़कण जितने हैं उतने ही सदा से हैं और आगे सदैव रहेंगे। उनमें न कम होंगे न अधिक।

जीव का चेतन धर्म है और जड़ जड़ है। चेतन जीव जड़ तत्त्वों से नहीं बन सकते; क्योंकि जड़ तत्त्वों में चेतना नहीं है और चेतन से जड़ नहीं बन सकते; क्योंकि चेतन का लक्षण जड़ में नहीं है। अत: दोनों नित्य और सर्वथा भिन्न एवं असंख्य हैं।

हर पचीस वर्ष में जन्तुओं की संख्या दुगुनी हो जाती है, यह कहना अयुक्त है। हां, केवल मनुष्य की संख्या कुछ दिनों से उत्तरोत्तर बढ़ रही है। परन्तु इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। कहीं दस आदमी हों और कहीं दस अरब आदमी हों और दस अरब में से दस आदमी दसवाली टोली में मिल जायें तो वह टोली दूनी हो जायेगी और दस अरब वाली टोली में से दस निकल जाने से भी उसमें कुछ अन्तर नहीं दिखेगा। इसी प्रकार संसार में कुल छह अरब के भीतर आदमी हैं और अन्य जन्तु एक ही घर, गांव में अरबों होते हैं। उन जन्तुओं में से कुछ मनुष्यों में आ जाते हैं तो जन्तुओं में तो फरक नहीं दिखता और मनुष्यों में फरक दिख जाता है।

119. प्रश्न—जगत में कितने प्रकार के अज्ञानी हैं?

उत्तर—गिन पाना असम्भव हैं। कुछ अनपढ़ अज्ञानी हैं और कुछ पढ़े-लिखे अज्ञानी हैं। सब प्रकार से अज्ञानी वही है जो अपने आपका भवबन्धनों से उद्धार नहीं करता।

120. प्रश्न—छ: पशुकर्म क्या हैं और उनका सुधार कैसे हो?

उत्तर—भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह—ये छ: पशु कर्म हैं। इनका सुधार इस प्रकार हो सकता है—

भोजन—मांस, मछली, अण्डा, शराब, ताड़ी, गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि अशुद्ध और नशीली वस्तुओं का सर्वथा त्याग करें। सात्विक भोजन ग्रहण करें; परन्तु वह अपनी कमाई का या किसी का सहर्ष अर्पित, शुद्ध और स्वच्छ हो।

छादन—वस्त्र और मकान छादन है। वस्त्रों का उपयोग तन ढकने के लिए हो, फैशन के लिए नहीं। वस्त्र सादा और मध्यवर्तीय हो। घर को धर्मशाला समझकर उससे अनासक्ति हो।

मैथुन—पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन हो या अपने पति-पत्नी में मर्यादानुकूल केवल सन्तान-प्राप्ति के लिए सम्बन्ध रखकर विषयासक्ति से निवृत्ति का प्रयास हो।

भय—भूत-प्रेत, देवी-देवतादि तथा वियोग, रोग, निर्धनता, मरण आदि भयों का त्याग हो। जो संसार में आसक्त है और बुरा कर्म करने वाला होता है

वही भयभीत होता है। आसक्ति और बुराई छोड़ देनेवाला सर्वथा निर्भय होता है और निर्भयता ही सच्ची मानवता है।

निद्रा—चौबीस घण्टे में आठ घण्टे से अधिक और चार घण्टे से कम नहीं सोना चाहिए। वैसे अज्ञान-निद्रा का पूर्ण त्याग ही निद्रा का सुधार है।

मोह—सबको पथिक, स्वतंत्र, मनवश और अपने से पृथक समझकर मोह का त्याग करे। मोह न रखते हुए प्राप्त प्राणियों के साथ अपना उचित कर्तव्य पालन करते रहना चाहिए।

121. प्रश्न—जीव का निवास इस शरीर में कहां है?

उत्तर—हृदय में। वैसे वह शुद्ध चेतन और असंग है, इसलिए स्वरूपत: वह अकेला एवं निराधार है। उसका कोई अन्य स्थान नहीं। उसका अपना चेतन स्वरूप ही उसका स्थान है।

122. प्रश्न—अविद्या किसे कहते हैं?

उत्तर—अविद्या का अर्थ है अज्ञान। वैसे अविद्या का स्वरूप पतंजलिजी ने योग दर्शन में बताया है अनित्य, अशुचि, दुख और अनात्म को नित्य, पवित्र, सुख तथा स्वस्वरूप मानना। जैसे देह अनित्य, अशुचि, दुखपूर्ण एवं जड़ है किंतु इसको नित्य, पवित्र, सुखरूप तथा अपना स्वरूप समझना; यही अविद्या है।

123. प्रश्न—ब्रह्म और जीव में अन्तर क्या है?

उत्तर—'बृहत्वात् ब्रह्म' महान को ब्रह्म कहते हैं। यह जीव ही सबका द्रष्टा और कल्पक होने से सर्वोच्च है, अत: यही ब्रह्म है। जीव से पृथक ब्रह्म की कल्पना एक भ्रम है।

124. प्रश्न—गायत्री का मूल रूप कहां, क्या है और उसका अर्थ क्या है?

उत्तर—गायत्री ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बासठवें सूक्त का दसवां मन्त्र है। यहीं से यजुर्वेद आदि अन्य ग्रन्थों में गया है। उसका मूल स्वरूप इस प्रकार है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न: प्रचोदयात्।

(ऋग्वेद 3/62/10)

इसका अर्थ है—'हम उस सूर्य देवता का ध्यान करते हैं जो वरण करने योग्य तेजोमय है। वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा देता है।'

ऋग्वेद के तद्स्थल पर 'ॐ' भुर्भुव: स्व:' नहीं है।

125. प्रश्न—आप 'सद्‌गुरवे नमः' में श्री क्यों नहीं लगाते?

उत्तर—'सद्‌गुरवे नमः' अपने आप में पूर्ण सरल और सहज है। इसके अतिरिक्त प्राचीन पारखी सन्त से लेकर श्री काशी साहेब, श्री महाराज राघव साहेब तक 'सद्‌गुरवे नमः' ही लिखते और पुस्तकों में प्रायः छापते आये हैं। देखिए, उनकी अपनी छपाई पुस्तकों का संस्करण। फिर भी जो सन्त-भक्त श्री लगाते हैं कोई बुरा नहीं है। हम प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए 'सद्‌गुरवे नमः' ही लिख और छाप रहे हैं। दोनों की मौलिकता में कुछ अन्तर नहीं है।

* * *

126. प्रश्न—कबीरपंथी साधु भोजन करते हैं? यदि हां, तो इसे कैसे और कहां से प्राप्त करते हैं। दूसरों की कमाई खाना 'पाप' खाना है। मेरी समझ से 'राजनीतिक' व सभी प्रकार के 'धार्मिक-मंच' कुछ लोगों के लिए अच्छे-खासे रोजी के साधन हैं। समाज में रहकर समाज की बुराइयों से लड़ा जा सकता है। अच्छे लोगों द्वारा समाज-त्याग करने से बुराइयों का फैलाव व प्रसार तेजी से होता है। हमेशा से जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई कोई न कोई पैगम्बर, साधु, महात्मा, महापुरुष समाज की अनेकानेक बुराइयों से जूझता रहा है, परन्तु यह बुराइयों का पहाड़ टस में मस नहीं हुआ। उसी तरह से आज भी मौजूद है, आगे भी रहेगा। कितने लोग चिल्लाते रहेंगे इसे उखाड़ फेंको पर इसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं; बल्कि इसकी शक्ति में दिन-दिन बढ़ोत्तरी हो रही है। आप मेरी बात से कहां तक सहमत हैं?

उत्तर—कबीरपंथी, गैर-कबीरंपथी—सभी मत के साधु भोजन करते हैं। वे भोजन कहां पाते हैं? या तो वे स्वयं पैदा करते हैं या गृहस्थ लोग उनको देते हैं। भारत में केवल कबीरपंथी साधुओं के छोटे-बड़े ऐसे हजारों मठ हैं जहां खेती होती है। इसी प्रकार अन्य मतों के साधुओं के पास भी मठ और खेत हैं। हजारों साधु अपने श्रम से अन्न कमाते, खाते और खिलाते हैं।

जहां तक मैं जानता हूं कबीरपंथी साधु भिक्षा नहीं मांगते हैं। उन्हें जो कोई श्रद्धा से बुलाकर सेवा करता है उसी के घर जाते हैं। इसी प्रकार किसी भी मत के विचारवान साधु गृहस्थों के श्रद्धानुसार ही भोजन ग्रहण करते हैं। यदि विचारवान साधु क्षुधातृप्ति के लिए भोजन मांग भी लें तो पाप नहीं है; क्योंकि उनके द्वारा समाज का बहुत बड़ा हित है और उसके बदले में वे समाज द्वारा शरीर-निर्वाह की वस्तुओं को पाने के अधिकारी हैं।

जो साधु के वेष में घुसे हुए विषयी, लम्पट, दुराचारी, नशेड़ी और कुकर्मी हैं वे तो साधु हैं ही नहीं। परन्तु किसी भी मत के जो सदाचारी-ब्रह्मचारी साधु

हैं वे भले ही उच्चतम से निम्नतम कोटि के हों उनके द्वारा समाज का हित है। कक्षा एक और सोलहवीं में पढ़ते हुए सभी विद्यार्थी हैं। इसी प्रकार साधना के क, ख से लेकर सिद्धि अवस्था तक पहुंचे हुए सभी सदाचारी साधु वन्दनीय हैं।

साधु साधु सब ही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मौर॥ (पंचग्रन्थी)

कुछ लोगों द्वारा राजनीति और धर्म को अपने स्वार्थ का मंच बना लेने से राजनीति और धर्म दोषी नहीं हैं, दोषी हैं उनका दुरुपयोग करने वाले। बिना राजनीति के किसी देश की व्यवस्था नहीं हो सकती और बिना धर्म के किसी मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती। लोगों को चाहिए कि राजनीति और धर्म को रोजी का साधन न बनाकर उनके द्वारा लोककल्याण करें।

"समाज में रहकर समाज की बुराइयों से लड़ा जा सकता है। अच्छे लोगों द्वारा समाज-त्याग करने से बुराइयों का फैलाव व प्रसार तेजी से होता है।"

उक्त बातें तो ठीक हैं, परन्तु समाज को साधु छोड़ कहां देता है? जब तक कोई गृहस्थी में रहता है तब तक उसका सम्बन्ध प्राय: अपने सीमित परिवार से रहता है; परन्तु वही व्यक्ति जब गृहस्थी छोड़ देता है और साधु हो जाता है, तब उसका सम्बन्ध पूरे देश तथा संसार से हो जाता है। साधु का जीवन ही आत्मकल्याण और समाजकल्याण के लिए है। साधु तो सीमित स्वार्थ और परिवार-कूप से निकलकर समाज-समुद्र में पहुंच जाता है।

सच्चा साधक परिपक्व होकर गृहस्थी छोड़ता है और साधु दशा में आकर साधना द्वारा सदाचार और शांति को प्राप्त करता है। पश्चात उस सदाचार और शांति से जीवनपर्यन्त स्वयं सुखी रहता है और समाज को जहां तक लोग उससे गुण लेते हैं, अपने सम्पर्क मात्र से सुखी करता है।

सरकार के द्वारा संताननियोजन, मत्स्यपालन, मुरगीपालन, सूकरपालन आदि अनेक विभाग खुले हैं; परन्तु क्या उसके द्वारा मानव-धर्मपालन का भी कोई विभाग खुला है? यह विभाग सन्तों का है जो नि:शुल्क है।

कोई भी व्यक्ति जब साधु होने के लिए घर छोड़ता है तब वह अपना व्यक्तिगत धन या तो परिवार वालों के लिए छोड़ आता है या समाज की सेवा में लगा देता है। वह अपने जीवन निर्वाह की वस्तुओं का साधन संक्षिप्त कर देता है। साधुओं का ब्रह्मचर्य व्रत देश की जनसंख्या वृद्धि पर स्वाभाविक रोक लगाता है जो समसामयिक समस्या का एक आदर्श आंशिक समाधान है।

एक गृहस्थ आदमी घर छोड़कर प्राय: बाहर नहीं जा पाता और साधु देश के विभिन्न क्षेत्रों में विचरणकर सदाचार और शांति का प्रचार करता है। पता

नहीं आप यह कैसे मान लिए कि 'साधु समाज को छोड़ देता है।'

सृष्टि तो कभी आरम्भ ही नहीं हुई, यह प्रवाहरूप अनादि और अनन्त है। ''सदा से संत होते आये, परन्तु वे बुराइयों का अन्त नहीं कर सके।'' आप यह विचार करें कि जितने सच्चे संत हैं वे स्वयं तो बुराइयों से परे हैं। यदि वे भी बुराइयों में सने होते तो संसार में बुराइयों की मात्रा आज से कहीं अधिक होती।

बुराई-भलाई सदा से रही है। समष्टि रूप में न तो कभी पतन रहा न उत्थान। बुराई-भलाई व्यक्तिगत चलती है। व्यक्तिगत सुधार-बिगाड़ होते हैं। जो व्यक्ति संत के सम्पर्क में आ जाता है उसका आंशिक या सर्वांश सुधार हो जाता है। सरकार दण्ड दे-दे कर जिसका सुधार नहीं कर पाती उसका सुधार संतों के सम्बन्ध से हो जाता है। मैं यहां उनको संत नहीं कह रहा हूं जो केवल वेषधारी हैं, मैं तो सच्चे संतों को कहता हूं, भले ही उनकी क्षमता कम-वेश हो।

यदि हम सनकादि, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जरथुस्त्र, कनफ्यूशियस, लाओत्ज़े, ईसा, मुहम्मद, कपिल, कणाद, पतंजलि, शंकराचार्य, रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसी, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द, पलटू, दादू, दरिया, घीसा आदि—संत परम्परा को निकाल दें तो संसार के इतिहास में क्या रह जायेगा?

यह ठीक है कि लोग झूठे धर्म के नशा में पड़कर अमानवीय व्यवहार किये और करते हैं, परन्तु इसमें सच्चे धर्म का दोष नहीं है। यह भी विचारणीय विषय है जब धर्म के प्रचार होते हुए लोग इतने बुरे हैं तब धर्म का प्रचार न होता तो क्या होता?

If men are so wicked with religion, what would they be without it! (Franklin)

धर्म के होने पर जब मनुष्य इतने नीच हैं, तो धर्म के न होने पर वे क्या होंगे?

'बुराई आज है, आगे भी रहेगी' तो क्या उसको दूर करने के लिए प्रयत्न या प्रचार न किया जाये? बीमारी संसार में सब समय रहती है, परन्तु उसको दूर करने का प्रयत्न भी सब समय चलता है। व्यक्तिगत दूर भी होती है। वैसे बुराई भी व्यक्तिगत दूर होती है।

हर गांव तथा नगर में जितना धन नित्य दुर्व्यसन में नष्ट होता है वहां उसका शतांश भी संत-सेवा में नहीं लगता है। यह व्यर्थ भ्रम है कि संत

आर्थिक दृष्टि से देश के भार हैं जबकि देख लिया गया है कि कितने ही साधुओं का निर्वाह उनके स्वयं के उपार्जित धन से होता है। गलत वेषधारियों से देश का अहित अवश्य है। उसके विषय में देश को अवश्य सोचना चाहिए।

मनुष्य डाक्टर, वकील, विद्वान, धनी, शुभगुणी जो कुछ बनना चाहे उसके लिए आदर्श की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टर बनने के लिए डाक्टर का तथा वकील बनने के लिए वकील का आदर्श आवश्यक है। शुभगुणी, सदाचारी एवं शान्त बनने के लिए एकमात्र संतों का ही आदर्श है।

मनुष्य वही नहीं है जो भौतिक चश्मे से दिखाई देता है। उसका सच्चा स्वरूप आध्यत्मिक है जो इस भौतिक खोल (शरीर) के भीतर विराजमान है। सारा भौतिक ऐश्वर्य पाकर भी मनुष्य शांत तब तक नहीं होता जब तक वह आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर लेता, और यह संतों के सत्संग के बिना असम्भव है। जहां सब दुखों का सर्वथा अन्त होकर परमशांति की प्राप्ति होती है आध्यात्मिकता के उस उच्चतम शिखर पर स्वयं पहुंचना और दूसरों को उस ओर प्रेरित करना संतों के मुख्य उद्देश्य और कर्तव्य हैं।

127. प्रश्न—जन्म-मृत्यु को जब आप कर्मवश मानते हैं तब चाण्डाल के घर में पैदा हुए जीव पर समाज या व्यक्ति द्वारा होते हुए अत्याचार पर खेद कैसा? वह तो अनिवार्य शर्त है।

उत्तर—मान लो, पुनर्जन्म और कर्मफल भोग कुछ नहीं है, हमें जो कुछ सुख-दुख का भोग होता है एक अचानक घटना या संयोग है; तो इस सिद्धांत से हमें अपने कर्मों को सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें केवल कानून से बचे रहना है, फिर चाहे कितना अत्याचार करें हमें कुछ होने वाला नहीं है। परन्तु क्या यह भौतिकवाद अत्याचार को बढ़ाने वाला नहीं होगा?

यह निश्चित सत्य है कि जीव अपने कर्मों के फलभोग पाता है। उसका जन्म-मृत्यु प्रवाह उसके कर्मानुसार है। रहा, भंगी-ब्राह्मण तो हम लोगों ने बना रखा है। क्या हर व्यक्ति अपना भंगी नहीं है? जिसमें बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास करने की क्षमता न हो वह शूद्र है और ऐसे व्यक्ति आज के तथाकथित ब्राह्मण परिवार में भी भरे पड़े हैं और जिसमें बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास की शक्ति हो वह ब्राह्मण है और ऐसे व्यक्ति तथाकथित शूद्र परिवार में भी हैं। भंगी टट्टी फेंकने के समय में अशुद्ध होने से अछूत है। उसी प्रकार टट्टी करके आया हुआ ब्राह्मण भी जब तक स्नान आदि शुद्धि नहीं कर लेता है, अशुद्ध है। स्नानादि पूर्ण शुद्धि के बाद दोनों एक समान स्पर्शणीय हैं। तथाकथित जाति के आधार पर किसी को नीचा देखने तथा उसके साथ अत्याचार करने का हेतु केवल अज्ञान है।

एक ही माता-पिता के कई पुत्र होते हैं। कोई बुद्धि में तीव्र होता है तथा कोई महा गोगाबसंत। यह किसका पक्षपात है? यह अपने ही कर्मफल भोग हैं। कोई जीवन भर स्वस्थ रहता तथा कोई धन से सम्पन्न होकर भी असाध्य बीमारी से पीड़ित है, ऐसा क्यों? यह सब जीव के पहले या इस जन्म के कर्मफल भोग हैं।

128. प्रश्न—चेतन का स्वरूप क्या है? यह मुक्त होकर कहां स्थिर होता है?

उत्तर—चेतन का स्वरूप ज्ञान मात्र है। वह मैं ही हूं। मैं सबके अस्तित्व पर संदेह भले करूं, परन्तु मेरे अपने आपके अस्तित्व में संदेह असम्भव है। मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं, डेकार्ट ने कहा है—I think therefor I am.

चेतन मुक्त होकर अपने आप रहता है; परन्तु यह बात तब तक नहीं समझ में आयेगी जब तक हम यह नहीं जानते कि मुक्त कैसे हुआ जाता है और जब तक हम इसी जीवन में अपने आपको मुक्त नहीं कर लेते। इसके लिए विवेकी संतों से साक्षात मिलकर सत्संग किये बिना पूरा हल नहीं होगा।

129. प्रश्न—परम चेतन के अस्तित्व में संदेह होने पर क्या 'मुक्त' के विषय में सोचना भ्रम मात्र नहीं है?

उत्तर—अवश्य भ्रम मात्र है। जो यह समझता है कि परम चेतन कोई मुझसे पृथक होगा और इसलिए उसको पाने की कल्पना करता है तो वह निश्चित ही भ्रम में है। जो वस्तु हमसे पृथक होगी, उसका हमारा सम्बन्ध क्षणिक ही होगा। किसी दूसरे से सम्बन्ध करना मोक्ष नहीं है वह तो बन्धन है। मोक्ष का अर्थ है सबसे अलग हो जाना। अलग होने पर मैं 'केवल' हूं। यही परम चेतन है। मैं साक्षी हूं। साक्षी में दूसरे साक्षी की कल्पना करना भ्रम है।

व्याकरण की दृष्टि से भी 'मैं' ही उत्तम पुरुष है। 'मैं' को, 'अपने आप' को छोड़कर परम चेतन की कल्पना करना अल्पज्ञता है।

130. प्रश्न—अनादिकाल से असंख्य चेतन होने पर भी संख्या में संतुलन है। केवल कर्मवश जन्म होता है तब सभी दुष्कर्म करने वाले सांप ही सांप या बाघ ही बाघ क्यों नहीं हो जाते?

उत्तर—असंख्य चेतन की आपने कितनी संख्या करके संतुलन किया है? आप यथा-तथा मनुष्यों को गिन सकते हैं? इन कीड़े-मकोड़ों की गणना असंभव है। और यदि संख्या में सन्तुलन हो तो बुरा क्या? क्या बुरे कर्मों का भीषण फल सांप और बाघ होना ही है? अपने दुष्कर्मों का फल तो जीव को

भोगना ही पड़ेगा। उत्तम मनुष्य शरीर में क्या कोढ़ आदि रोगों से दुख नहीं होता।

131. प्रश्न—मर जाने के बाद यदि शरीर को काटा जाये तो पीड़ा का अनुभव नहीं होता। यदि इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में मिले तो उस फल का क्या महत्त्व?

उत्तर—जिसको सब का ज्ञान होता है, उस चेतन के न रहने पर मुरदा शरीर में पीड़ा का अनुभव कौन करेगा?

जीव जो कर्म करता है उसका फल उसे तत्काल मिलता है, परन्तु उसकी वासनाएं शेष रहती हैं और वे जन्मान्तर में भी सुख-दुख देती हैं। कोई व्यक्ति चोरी करते पकड़ा जाता है और वह तत्काल पीटा जाता है; परन्तु उससे उसका छुटकारा नहीं होता। वह पुनः अपने किये हुए कर्मों के मनस्तापों से पीड़ित रहता है।

132. प्रश्न—आप लिखते हैं कि बुरे कर्म करने पर दुख से कोई उबार नहीं सकता, तो लाखों प्राणी नाना प्रकार के दुष्कर्मों में नित्य रत हैं, सैकड़ों राजपुरुष नरसंहार-बालसंहार का नाटक जगत की थोथी मान्यताओं के लिए करते हैं, फिर भी सुखों के भोग से उनके कर्म उन्हें वंचित नहीं कर सके?

उत्तर—कर्मों का फलभोग निश्चित ही होता है। जिस प्रकार गाड़ी में जुड़े हुए बैल के पीछे गाड़ी के चक्के लगे रहते हैं; उसी प्रकार कर्म कर लेने के बाद वे कर्म जीव के साथ लग जाते हैं। यह ठीक है कि कार्तिक का बोया चैत्र में फल देता है; परन्तु देता है।

संहार करने वाले व्यक्तियों का हृदय सदैव जला करता है। बाहरी वस्तुओं से सच्चा सुख नहीं मिलता। सच्चा सुख तो जीवन की पवित्रता है। कोई संहार द्वारा राज्य-सुख को भले पा ले, परन्तु वह आत्मसुख को नहीं पा सकता जिसके बिना मनुष्य को स्वप्न में भी विश्राम कहां? दुराचारी व्यक्ति इसी जीवन में जलता है; भविष्य में तो उसे भरपेट कर्म फल भोगने ही हैं। यह रहस्य विवेक से समझा जा सकता है।

* * *

133. प्रश्न—गृहस्थी-धर्म पालन के लिए शादी करना जरूरी है क्या?

उत्तर—साधारणतया विवाह सहित जीवन को ही गृहस्थी कहते हैं; परन्तु यदि शाब्दिक अर्थ किया जाये तो गृह में रहनेवाला ही गृहस्थ है—गृह = घर, स्थ = स्थित। घर में रहने के लिए धन कमाने की तो आवश्यकता है, परन्तु

शादी की कोई जरूरत नहीं है। यदि मन को वश में किया जा सके तो शादी रूपी कारावास में बन्द होने की कौन विवेकी राय देगा?

134. प्रश्न—सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए गृहस्थी में रहना जरूरी है?

उत्तर—व्यक्ति न घर में रहकर सुखी होता है न घर को छोड़कर। वह तब सुखी होता है जब भोगों को छोड़कर अपने मन-इन्द्रियों पर विजयी और आत्मतुष्ट हो जाता है।

135. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर भी ब्रह्मचारी रहा जा सकता है क्या?

उत्तर—गृहस्थी में रहने का मतलब घर बनाकर रहना। घर बनाकर रहो, परन्तु ब्रह्मचारी बनकर रहो। वस्तुतः वही गृहस्थ (घर में रहने वाला) सुखी होता है जो सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी है।

136. प्रश्न—क्या शादीशुदा व्यक्ति का जीवन सार्थक माना जायेगा?

उत्तर—जीवन की सार्थकता निर्विषय, एकाग्र और शांत होने में है। इसके लिए शुद्ध ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। जिसका स्वाभाविक प्रवेश ब्रह्मचर्य में न हो वह शादी करे और एक मर्यादा में रहकर धीरे-धीरे संयम और ब्रह्मचर्य अपनावे। साधारण कोटि के व्यक्ति को शादी अमर्यादित जीवन से हटाकर संयम की ओर ले जाती है; किन्तु पतित मानव ने शादी को वासनात्मक बना लिया है।

137. प्रश्न—अगर घर वाले जबरदस्ती शादी कर दें तो...?

उत्तर—यदि लड़का निश्चयपूर्वक शादी नहीं चाहेगा तो घर वाले जबरदस्ती शादी नहीं कर सकते; लड़के को अपने निश्चय के अनुसार कर्तव्य करना पड़ेगा। फिर पढ़े-लिखे और युवक लड़के की शादी कोई जबरदस्ती कैसे कर सकता है? और जबरदस्ती की गयी शादी की जिम्मेदारी लड़के पर है भी नहीं। यही बात लड़की की भी है।

138. प्रश्न—क्या कबीर साहेब के भी कोई गुरु थे? अगर थे तो उनका नाम बताइये?

उत्तर—साधारणतया स्वामी रामानन्दजी महाराज को उनका गुरु बताते हैं। कुछ विद्वान दोनों का समय भिन्न बताकर इसका खण्डन करते हैं। यदि दोनों सन्त समसामयिक रहे हों तो भी लोग यही कहते हैं कि कबीर साहेब स्वयं पूर्णज्ञानी थे, केवल लोकमर्यादा के लिए उन्होंने स्वामी जी को गुरु माना था। स्वामी रामानन्दजी की स्वस्वरूप से भिन्न राम की कल्पना देखकर कबीर

साहेब ने कहा है—

रामानन्द रामरस माते, कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके।

(बीजक, शब्द 77)

अतः सद्‌गुरु कबीर स्वतः पारख प्रकाशक एवं ज्ञानी थे। उनके खरे पारखबोध एवं ज्ञान को देखते हुए कहना पड़ता है कि उनके बोध का गुरु कोई न था, वे स्वयं गुरु थे। जैसा कि कहा है—

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्॥

(श्रीमद्‌भागवत 11/7/19)

अर्थात—संसार में जो मनुष्य 'यह जगत क्या है? इसमें क्या हो रहा है?' इत्यादि बातों का विचार करने में निपुण हैं वे चित्त में भरी हुई अशुभ वासनाओं से अपने आपको स्वयं अपनी विवेक-शक्ति से ही प्रायः बचा लेते हैं।

139. प्रश्न—माया को नाशवान जानकर भी मनुष्य चेत में क्यों नहीं आता?

उत्तर—क्योंकि वह अविद्याग्रसित है। सत्संग, स्वाध्याय तथा विवेक द्वारा अविद्या के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्य यथार्थ स्थिति में आ सकता है।

140. प्रश्न—लव-कुश के बाद क्या रघुवंशियों का वंश नहीं चला? यदि चला तो कहां तक?

उत्तर—अतीत के गर्त में समाया है।

141. प्रश्न—जब आत्मा अमर है तब गीता में उसे मारने को क्यों कहा?

उत्तर—क्योंकि आत्मा तो मरेगी नहीं और विरोधियों के शरीर मिट जायेंगे। परन्तु यह अमरता के सिद्धांत का दुरुपयोग है।

142. प्रश्न—मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है और उसकी प्राप्ति का साधन क्या है?

उत्तर—मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है स्वरूपस्थिति एवं परमशांति की प्राप्ति। यह तब प्राप्त होगी जब बोधनिष्ठ सद्‌गुरु की चरण सेवा करके स्वरूपबोध प्राप्त किया जायेगा और विषयों से सर्वथा विरक्त होकर अपने आप में एकाग्रता होगी। ऐसे पुरुषों के द्वारा ही जनकल्याण होता है।

143. प्रश्न—सत्य की विजय होती है ऐसा लोग कहते हैं, फिर भी मानव झूठ क्यों बोलता है? जब वह मृत्यु से डरता है, तब पाप क्यों करता है?

उत्तर—इन सबका कारण है मोह, अविवेक एवं अज्ञान।

*　　　　*　　　　*

144. प्रश्न—जनक को विदेह क्यों कहा जाता है जबकि वे राजकाज तक करते थे और श्रीकृष्ण को योगेश्वर क्यों कहा जाता है जबकि उनके 16108 रानियां थीं तथा अन्य बहुत-सी गोपियों से सम्बन्ध था, और रासक्रीड़ा करते थे?

उत्तर—जनक राजकाज करते हुए भी उससे बहुत कुछ अनासक्त थे इसलिए भावुकता में उनको विदेह कह दिया गया होगा। यह नहीं कि उनको देह का भान नहीं था; अपितु देह से अनासक्त रहे होंगे।

श्रीकृष्ण महाराज का चित्र श्रीमद्‌भागवत आदि पुराणों में भद्दा कर दिया गया है। गोपियों के साथ रास तथा हजारों रानियों से विवाह—यह सब लेखकों के अपने भोलापन में उनकी महिमा के नशा में कह डाला गया है। भागवत से पहले बने ग्रंथ महाभारत में यह वर्णन है कि श्रीकृष्ण की केवल एक शादी रुक्मिणी[1] से हुई थी और शादी के बाद भी वे हिमालय में बारह वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक तप किये और उनकी पत्नी रुक्मिणी ने भी ब्रह्मचर्य का पालन करके बारह वर्ष व्यतीत किये, तत्पश्चात उनको प्रद्युम्न नामक लड़का पैदा हुआ। यथा—

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

(महाभारत, सोप्तिकपर्व, 12/30, 31)

अर्थ—(श्रीकृष्णजी कहते हैं—) मैंने बारह वर्षों तक महान घोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए हिमालय की घाटी में तप किया तथा मेरे समान रुक्मिणी ने भी व्रत पाला और उसके गर्भ से सनत्कुमार जैसा प्रद्युम्न नाम से तेजस्वी लड़का पैदा हुआ जो मेरा पुत्र है।

इस प्रकार जो गृहस्थी में रहकर भी विवाह के बाद बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक तप करे वह योगेश्वर कहा जाये तो ठीक ही है।

श्रीकृष्णजी अपने जीवन के प्रभात से मृत्यु बेला तक युद्ध ही करते रहे। अनेक आततायी रजवाड़ों को उन्होंने परास्त किया। अन्ततः उनका परिवार

---

1. **हरिवंशपुराण विष्णुपर्व 60/40-44 के अनुसार श्रीकृष्ण की शादी सत्यभामा आदि से भी हुई थी, परन्तु इसमें सत्य-सार कितना है कहा नहीं जा सकता।**

गृहकलह से आपस में कटकर मर गया। इस प्रकार वे जीवन भर घोर उथल-पुथल एवं झंझावातों में रहकर भी घबराते नहीं थे। इसलिए योगेश्वर कहे जाने योग्य ही थे।

यह बात सच है कि श्रीकृष्णजी का योगेश्वरपन राजनीतिक था। वे कोई विरक्त संत नहीं थे कि उनके योग को पतंजलि कथित योग से तौला जाये।

गीता-लेखक ने जो गीता में कृष्ण का स्वरूप दिया है, काल्पनिक है। यह नहीं कि श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं; अपितु उनका सम्पूर्ण रूप काल्पनिक है। गांधीजी ने अपनी गीता अनासक्तियोग पृष्ठ 97 में लिखा है—'केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं। सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है।'

सारांश यह है कि विविध उलझन वाली बातों में रहकर भी वे दृढ़, धैर्यवान और निर्भीक थे; अत: राजनीतिक क्षेत्र के योगेश्वर ही थे।

145. प्रश्न—आत्मा के मोक्ष की स्थिति से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—जीव का जीवन भर सबसे अनासक्त होकर शान्त रहना और शरीर छूट जाने पर पुन: दुखालय देह में न आकर असंग रहना—मोक्ष है। विदेहमुक्ति की चिन्ता मत करो। जीवन्मुक्त बनो, विदेहमुक्ति अपने आप होगी।

प्रश्न—क्या वैराग्य धारण से ही मोक्ष मिलता है?

उत्तर—क्या इसमें भी दो राय हो सकती है?

मुक्ति विषय वैराग्य है, बन्धन विषय स्नेह।
यह सद्ग्रन्थन को मतो, मन माने सो करेह॥

146. प्रश्न—जीवन के लिए वास्तविक शिक्षा क्या है?

उत्तर—कर्म करो जिससे अपने और पराये का भौतिक हित हो तथा विषयों से विरत होओ जिससे आत्मकल्याण हो। जो आत्मकल्याण कर लेता है उसके द्वारा दूसरे का भी कल्याण होता है।

147. प्रश्न—अंताराष्ट्रिय द्वेष बढ़ गया है, अत: पृथ्वी के नाश के लिए अणुबम डालना स्वाभाविक है जिसमें सभी जीवधारी नष्ट हो जायेंगे, तब जीवों की स्थिति क्या होगी?

उत्तर—होने दीजिए, फिर विचार किया जायेगा। सत की सत्ता नित्य रहती है—घबराने की आवश्यकता नहीं है।

148. प्रश्न—यदि जीव का शरीर में निवास हृदय है तो कृत्रिम हृदय लगाने पर जीवधारी की अन्य क्रियाओं तथा स्वभाव में परिवर्तन क्यों नहीं होता?

उत्तर—जीव हृदय के किसी मांस के लोथड़े में नहीं लिपटा रहता कि उस लोथड़े के बदलने से वह भी बदल जाये। वह हृदय के शून्याकाश में स्थित है। हृदय निकालकर कृत्रिम हृदय लगाने से यदि क्रिया, स्वभाव, पूर्वस्मृति नहीं बदले तो स्वत: सिद्ध हो गया कि जीव नहीं बदला है।

सीधी बात है, प्राणी में चेतना एक सर्वोच्च गुण है जो जड़द्रव्य का नहीं हो सकता। चेतन जीव ही वह द्रव्य है जिसमें चेतना गुण है। वैज्ञानिक भी जड़तत्त्वों में चेतना गुण नहीं पाये। इसलिए चेतन जड़ से सर्वथा पृथक द्रव्य है जिसके न रहने पर शरीर निरर्थक है।

149. प्रश्न—जब जीव ज्ञाता है तब भूल क्यों करता है?

उत्तर—विषयासक्तिवश भूल करता है। उसे छोड़ना चाहिए। ज्ञाता ही भूल और चेत दोनों कर सकता है। मिट्टी, पानी, अग्नि आदि जड़तत्त्व न भूल कर सकते हैं न चेत। यह द्रष्टा जीव आसक्तिवश भूल करता है तथा अनासक्त होने पर भूल नहीं करता।

150. प्रश्न—राग-द्वेष किसे कहते हैं?

उत्तर—राग कहते हैं आसक्ति को तथा द्वेष कहते हैं घृणा को।

151. प्रश्न—रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण के कर्मों की पहचान क्या है?

उत्तर—काम, राग, ठाट तथा अधिक कर्मों में प्रवृत्ति रजोगुण कर्म हैं; मूढ़ता, आलस्य, हिंसाभाव आदि तमोगुण कर्म हैं तथा ज्ञान, प्रसन्नता, एकाग्रतादि सतोगुण कर्म हैं।

152. प्रश्न—मनु का अंश मानव तथा दनु का अंश दानव मानते हैं, क्या यह सच है?

उत्तर—पुराणानुसार प्रजापति मनु की पत्नी का नाम भी मनु है जिनसे मनुष्य होना मानते हैं और दनु कश्यप की स्त्री का नाम है जिससे दानवों का होना बताते हैं। इसी प्रकार कश्यप की स्त्री दिति से दैत्य तथा अदिति से (आदित्य) देवताओं का उत्पन्न होना मानते हैं। इतना ही क्या, कश्यप की विभिन्न पत्नियों से पशु, पक्षी, कृमि आदि की भी उत्पत्ति होना माना है। यह सब मनगढ़न्त कल्पना है। वस्तुत: सृष्टि और जगत अनादि है। मनुष्य में ही देवता-दैत्य कहलाते हैं।

*　　*　　*

153. प्रश्न—यदि जीव का स्थान हृदय है, तो उसका आकार क्या है? हृदय के अतिरिक्त शरीर क्या शून्य है? यदि शून्य है तो उसका अनुभव क्यों होता है?

उत्तर—ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस: परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ गीता 13/17॥

अर्थ—वह ज्योतियों की भी ज्योति तथा अन्धकार से परे कहा जाता है। वह ज्ञान है, जानने योग्य है, जाना जा सकता है, वह सबके हृदय में स्थित है ।

उसका आकार नापा नहीं जा सकता। वह सूक्ष्मतम है।

स्टेशनमास्टर फोन द्वारा दूर की बातें अपने कमरे में से ही जान लेता है न कि हर स्टेशन पर जाता है। इसी प्रकार चेतन एक जगह रहकर शरीर भर की स्थिति को जानता है। यदि शरीर भर में व्यापक है तो बच्चे के शरीर का चेतन उसके जवान होने पर क्या शरीर परिमाण बढ़ता जाता है? यदि ऐसा है तो चेतन विकारी है और विकारी वस्तु अविनाशी नहीं होती। यदि चेतन सर्वत्र व्याप्त है तो शरीर मुरदा क्यों हो जाता है? अन्त:करणोपाधि कहना व्यर्थ है, अन्त:करण तो जड़ है। चेतन सर्वत्र व्याप्त होगा तो अनेक न होकर एक होगा। यदि एक है तो कौन, किससे, क्यों और क्या पूछ रहा है? धर्म का प्रचार भी किसमें कौन कर रहा है?

154. प्रश्न—क्या गन्दी नाली में तड़पने वाले जीव को भी सबका द्रष्टा तथा सर्वोच्च कहा जा सकता है?

उत्तर—चाहे गन्दी नाली में तड़पता कीड़ा हो और चाहे गद्दी पर बैठा राजा हो, दोनों का मूलत: स्वरूप सर्वोच्च चेतन है। मनुष्य के अतिरिक्त खानि के जीव तो स्वस्वरूप को समझ नहीं सकते। मनुष्य खानि में रहे हुए जीव भी सब अपने स्वरूप को नहीं समझते। धन, विद्या तथा ऐश्वर्य में महान मानव भी स्वरूपज्ञान बिना नाली के कीड़े से अधिक नहीं है। क्या नाली के कीड़े का चेतन तथा मानव तन का चेतन मूलत: भिन्न प्रकार का है? जहां तक अपने सर्वोच्च द्रष्टा स्वरूप को ठीक से समझकर उसमें स्थित होना विवेकी मानव ही कर सकता है।

मनुष्य की आत्मा को छोड़कर सर्वोच्च क्या हो सकता है? जो अपनी आत्मा से पृथक होगा उसका ज्ञान पांच इन्द्रियों से ही होगा और जो इन्द्रियों से जानने में आयें वे पांच विषय हैं। जो इन्द्रियों से जाना जाता है उसी का मनन, चिन्तन तथा निश्चय होता है। अत: अपनी आत्मा से पृथक वस्तु पंच विषय होगी। जो पंच विषय से परे होगा उसको मनुष्य जान नहीं सकेगा; क्योंकि पांच ज्ञानेन्द्रियों को छोड़कर छठां कोई जानने का साधन नहीं है।

हां, जो पांचों विषयों से पृथक है वह अपना चेतन स्वरूप है जो इन्द्रियों से नहीं जाना जाता, अपितु वह इन्द्रियों द्वारा विषयों को जानता है। जब वह विषयों से अपने को घुमा लेता है तब अपने द्रष्टा स्वरूप में स्थित हो जाता है।

155. प्रश्न—बुद्ध का मध्यम मार्ग क्या है?

उत्तर—बीच का रास्ता 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। इसमें घोर तपस्या तथा अधिक काया-कष्ट का विरोध है और इसकी दूसरी छोर की विलासिता का भी विरोध है। बौद्ध दर्शन में दुखनिरोध एवं मोक्ष के आठ अंग या मार्ग बताये गये हैं—(1) सम्यक दृष्टि (ज्ञान), (2) सम्यक संकल्प, (3) सम्यक वचन, (4) सम्यक कर्मांत, (5) सम्यक आजीव (निर्वाह), (6) सम्यक व्यायाम, (7) सम्यक स्मृति तथा (8) सम्यक समाधि। ये अष्टांगिक मार्ग कहलाते हैं जो सार्वजनीन हैं। बस, यही है मध्यम-मार्ग। यह विलासिता तथा घोर तप—दोनों से परे है। इसी को अद्वय भी कहते हैं, दोनों अतियों से परे।

156. प्रश्न—स्वामी शंकराचार्य अद्वैतवादी थे, लेकिन उन्होंने भजगोविन्दम् का नारा क्यों लगाया?

उत्तर—स्वामीजी ने अद्वैतवादी होकर भी गोविन्द क्या गंगा-यमुनादि नदियों तक की वन्दना की है। वे यह मानते हैं कि तत्त्वदृष्टि से सब एक ब्रह्म होते हुए भी व्यवहार में अनेक हैं।

वस्तुत: हम समाधि में अकेले हो सकते हैं। संसार की अनेकता का अपलाप असम्भव है।

157. प्रश्न—अपना बोध कैसे हो, उसमें हमें क्या करना है?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रन्थ अध्ययन तथा चिन्तन करने से अपने आपका बोध एवं ज्ञान होता है और तत्पश्चात विषयों से वैराग्य होने पर अपने आप में सन्तुष्टि होती है। इसके लिए धर्माचरण, स्वच्छता, सत्संग, सदाचार के पथ पर चलना चाहिए और ध्यानाभ्यास करना चाहिए।

158. प्रश्न—अविचल पारख में वासा हो, इसका अभिप्राय क्या है?

उत्तर—जब मन का विषयों में भटकना छूटकर वह शान्त हो जाता है, तब विवेकी पुरुष अपने चेतनस्वरूप की स्थिति में ही निरन्तर विराजता है; अर्थात वह सदैव अपने आप में ही तृप्त रहता है—यही अविचल पारख में वासा है।

159. प्रश्न—निज स्वरूप कैसे जाना जाये?

उत्तर—चेतन ही अपना निज स्वरूप है। वही सबको जानता है। उसे

जानना क्या है? हां, सत्संग द्वारा यह समझना है कि मैं ही सबका ज्ञाता ज्ञानस्वरूप चेतन हूं।

160. प्रश्न—हमारा मूल तत्त्व क्या है?

उत्तर—हमारा चेतन स्वरूप, अर्थात हम स्वयं, जो ज्ञानमय है।

161. प्रश्न—हम गृहस्थी में रहकर उस पद को कैसे प्राप्त कर सकते हैं जो कि एक वैराग्यवान को प्राप्त है और हम वैरागी कैसे बन सकते हैं?

उत्तर—जो विषयासक्ति त्यागकर शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पालन करता है और प्रपंच-प्रवृत्ति को कम करके निर्वाह-मात्र का धन्धा करते हुए सत्संग, भक्ति, विवेक, वैराग्यादि साधना से चलता है, वह गृहस्थी में रहकर भी जीवन्मुक्त हो सकता है। जिसे विषयों में दोष तथा दुखों के निरन्तर दर्शन होते हैं, वह विरक्त हो जाता है। गृहस्थ ही तो विरक्त होता है।

162. प्रश्न—कबीर साहेब गुरुभक्त थे तो उन्होंने बीजक में गुरुवंदना क्यों नहीं की?

उत्तर—कबीर साहेब यह जानते थे कि साधारणतया मनुष्य का कल्याण बिना सद्गुरु के नहीं हो सकता; इसलिए उन्होंने बीजक में सद्गुरु तथा संतों की महत्ता का वर्णन किया है। परन्तु वे स्वयं एक महान दिव्य दृष्टि वाले पुरुष थे और अपने सत्य स्वरूप को स्वयं शोध लिए थे। यह ठीक है कि प्राप्त समसामयिक पुस्तकें, महापुरुष, मान्यताएं, प्रकृति की घटनाएं उनके स्वरूपबोध में सहायक रहे होंगे; परन्तु विशेषतर उनके पूर्वजन्मों के शुभ संस्कार तथा परखने की स्वतः पैनी दृष्टि ही मुख्य रहे। अतः उनका कोई सीधा गुरु नहीं था। स्वामी रामानन्द जी को भी उनका तत्त्वतः गुरु नहीं कह सकते; क्योंकि इनके विषय में बीजक में उन्होंने स्वयं कहा है—

रामानन्द रामरस माते। कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके॥

(बीजक, शब्द 77)

अतः जब उनका कोई गुरु नहीं था, तब वे किसकी वंदना करें! इसीलिए बीजक में वंदना नहीं है। वे स्वयं बोधवान थे।

163. प्रश्न—सत्युग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में यदि कबीर सत्सुकृत, मुनींद्र, करुणामय और कबीर नाम से आये तो साहेब भी मुक्त नहीं हुए?

उत्तर—जो लोग कबीर साहेब को चारों युगों में आना मानते हैं वे सद्गुरु कबीर को नित्य मुक्त सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ मानते हैं। हां, यह कहो कि यह

राम, कृष्ण, ईसा आदि के मानने वालों की तरह श्रद्धातिरेकवादियों की कल्पना है। मुक्त पुरुष पुनः नहीं आता।

*   *   *

164. प्रश्न—जब वृक्षों में जीव नहीं मानते तो चौरासी लाख योनि कैसे सिद्ध होगी?

उत्तर—न सिद्ध हो, क्या नुकसान? वैसे पारखी संत मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज—इन चारों की राशियों (ढेरियों) को चौरासी कहते हैं। योनियां चौरासी लाख हैं—यह भी कैसे माना जाये? कम-बेसी भी हो सकती हैं।

165. प्रश्न—कर्म जड़ है तो जीव को सजा कौन देता है?

उत्तर—स्थूल रूप में एक मनुष्य दूसरे को सजा देता है; परन्तु मुख्यतः तो अपने कर्म संस्कार ही अपने को सुख-दुख देते हैं। लहसुन-प्याज खाने के बाद दुर्गन्ध अपने आप आती है। टेपरिकार्डर में जो शब्द भर लिया जाता है यद्यपि वह जड़ है, किन्तु आवाज उसी की आती है। कोई सर्वसमर्थ कर्मफल देता है यह कोरी कल्पना है। वह जब संसार का सुधार नहीं कर सकता तब कर्मफल देने का उसे क्या अधिकार है? लोकधारणानुसार वह सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ पुरुष हत्यारों, जेबकटों, व्यभिचारियों, डाकुओं, गाय काटनेवालों में भी व्याप्त होकर उनका आज तक कुछ सुधार नहीं कर सका, फिर उसकी कल्पना आशा मात्र नहीं तो क्या है?

अतः अपने कर्म स्वयं सुधारो।

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बीजक, साखी 277)

166. प्रश्न—रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥ मोहै न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा॥

यह विरोध क्यों?

उत्तर—पहली चौपाई में मोहने का अर्थ हलके रूप में लिया गया है। सीता और राम को देखकर सब नर-नारी मोह गये, प्रसन्न हो गये। दोनों की जोड़ी देखकर विकार-ग्रस्त नहीं हो गये। परन्तु निचली चौपाई के मोह का अर्थ गहरे से लिया गया है। नारी के रूप को देखकर दूसरी नारी मोहग्रस्त, विकारी व कामातुर नहीं होती।

167. प्रश्न—एक जन्म में मनुष्य 'पुरुष' योनि में है तो दूसरे जन्म में किस योनि में उत्पन्न होगा?

उत्तर—जैसा उसका कर्मसंस्कार होगा।

168. प्रश्न—समस्त योनियों में भ्रमण करने के पश्चात जीव का क्या होता है?

उत्तर—यदि सब वासनाएं मिटाकर व्यक्ति स्वरूपस्थिति को पा गया तो वह मुक्त हो जायेगा; अन्यथा वासना-वश उन्हीं योनियों में भटकता रहेगा।

169. प्रश्न—जीवन-मरण से छुटकारा मिलता है, इसका प्रमाण क्या?

उत्तर—हर क्रिया का मूल वासना है। जब देह की वासना ही नहीं, तब देह में क्यों आयेगा?

170. प्रश्न—मनुष्य क्या है?

उत्तर—जड़तत्त्व निर्मित शरीरधारी विवेक-सम्पन्न चेतन जीव।

171. प्रश्न—मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—दृश्यमान प्रकृति से लौटकर अपने आप में स्थित हो जाना, समस्त अभावों का अभाव, इच्छाओं का अन्त तथा स्वरूपस्थिति।

172. प्रश्न—वह मार्ग कौन-सा है जिस पर चलकर मनुष्य अपने और अपनों का जीवन सफल बना सकता है?

उत्तर—पवित्र चरित्र का निर्माण। इसके लिए सत्संग तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है, फिर निरन्तर विचार।

173. प्रश्न—वे शुभ कर्म कौन-से हैं जिनके बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती?

उत्तर—दया, क्षमा, सत्य, शील, अहिंसा और विचार।

174. प्रश्न—बालक-बालिकाओं का चरित्र निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है?

उत्तर—स्वयं सच्चरित्र होकर।

175. प्रश्न—क्या विदेहमुक्त पुरुष संसार का कोई उपकार कर सकते हैं?

उत्तर—वे अपनी रहनी और वचन से सदेह काल जीवन्मुक्ति दशा में लोगों को प्रेरणा देते हैं, विदेहमुक्ति काल में उनका संसार से सम्बन्ध नहीं। हां, उनके

सदेहकाल जीवन्मुक्ति दशा का स्मरण कर पीछे से बहुत काल तक लोग प्रेरणा लेते रहते हैं।

176. प्रश्न—अभिमान और क्रोध कैसे दूर हों?

उत्तर—शरीर, जवानी, रूप, बल, परिवार, कीर्ति, अधिकार, धन—सब कुछ नाशवान है। 'यह सब मेरा नहीं है' यह जानकर अभिमान दूर हो जाता है। अभिमान, स्वार्थकामना, स्वभाववश तथा अपनी त्रुटियों पर न ध्यान देने से क्रोध आता है। जितने-जितने अभिमान और स्वार्थकामना कम होंगे, अपने स्वभाव पर सावधानी रखी जायेगी तथा अपनी त्रुटि देखने में आयेगी, उतना-उतना क्रोध कम होता जायेगा। उक्त कारणों के सर्वथा अन्त होने पर क्रोध की सर्वथा समाप्ति हो जायेगी; परन्तु जीवनपर्यन्त सावधान रहना पड़ेगा; क्योंकि जब तक शरीर है, तब तक भूलने का साधन है।

177. प्रश्न—साधन के अभाव में सेवा कैसे की जाये?

उत्तर—साधन का सर्वथा अभाव किसी के पास नहीं है। मनुष्य की यह भयंकर भूल है कि जो साधन उसके पास नहीं है उसकी कल्पना करता है और जो है उसका दुरुपयोग करता है। जिसके पास धन नहीं है या कम है वह सोचता है कि हमारे पास यदि धन होता तो मैं उसे खूब धर्म-परोपकार में लगाता; परन्तु उसके पास स्वस्थ शरीर है और वह उससे किसी की सेवा नहीं करता। ऐसे हर साधन के लिए समझ लीजिए। फिर वह व्यक्ति कुछ-न-कुछ खाता-पहनता है। उसे चाहिए उसी में से कुछ परोपकार या सेवा में लगाये। गरीब की कौड़ी धनी के करोड़ों से कम नहीं है। फिर मन तो सबके पास है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन से सबकी हितकामना करे।

178. प्रश्न—जब मनुष्य का मन सांसारिकता से ऊब जाये तब क्या करे?

उत्तर—विषयों से विरक्त होकर सत्संग में निवास करते हुए शांति प्राप्त करे।

* * *

179. प्रश्न—क्या विज्ञान और धर्म में सामंजस्य हो सकता है?

उत्तर—हो सकता है। विज्ञान भौतिक क्षेत्र का उन्नायक है और धर्म आध्यात्मिक क्षेत्र का। कितने लोग विज्ञान का नाम सुनकर जल जाते हैं और कितने धर्म का। ये दोनों एकांगी हैं। कितने तथाकथित धर्मावलम्बी विज्ञान की निन्दा करते नहीं थकते; परन्तु वे विज्ञानप्रदत्त टार्च, माचिस, घड़ी, बिजली, प्रेस, मोटर, रेल, वायुयान, ट्रांजिस्टर, रेडियो, टेपरिकार्डर आदि अगणित

वस्तुओं का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार कितने ही भौतिकवाद और विज्ञान के प्रमादी धर्म की शतसहस्र मुख से निन्दा करते हैं। परन्तु धर्म वह वस्तु है जिसके बिना मानव मानव न रहकर दानव हो जायेगा। जीवन में हर दिशा के सत्कर्तव्य ही धर्म है। दया, शील, क्षमा, शम, दम, अस्तेय, पवित्रता, सत्यता, क्रोधहीनता, निर्भयता आदि सद्‌गुण धर्म कहे जाते हैं। धर्म वह वस्तु है जिससे मन, वाणी तथा कर्म निर्मल होकर मन वासनाहीन होता है जिससे जीवन का चरम लक्ष्य शांति की प्राप्ति होती है। भौतिकवादी नींद की गोली खाने की अपेक्षा यदि धर्म के स्थूल साम्प्रदायिक अंगों—पूजा, नमाज, कथा, कीर्तन को ही अपना लें, तो रात में सुख से सो सकेंगे और यदि धर्म का वास्तविक स्वरूप धारण कर लिया जाये तो जो गाढ़ी निद्रा में शांति रहती है वह जाग्रतकाल के व्यवहार में ही आ जाये और मनुष्य महाशांति का भण्डार हो जाये।

मनुष्य का बाहरी खोल भौतिक है। उसका असली स्वरूप शुद्ध चेतन है जो 'मैं' के रूप में शरीर में विराजमान है। चेतन की चेतनावृत्ति ही विज्ञान है जो जड़ पदार्थों के वर्गीकरण और उनके गुण-धर्मों की खोज में तथा उनके द्वारा अनेक वस्तुओं के निर्माण में व्यस्त है; और इसकी जीवन निर्वाह में आवश्यकता है। धर्म कहते हैं स्वभाव को। चेतन का स्वभाव ज्ञान है; अत: ज्ञान ही मुख्य धर्म है। ज्ञान द्वारा 'पर' को 'पर' समझ, उससे विरक्त होकर 'स्व' में अखण्ड तृप्त हो जाना, धर्म का फल है। इस प्रकार धर्म और विज्ञान एक सिक्के के दो पहलू हैं। चेतन की वही चेतनावृत्ति जब जड़ पदार्थों, उनके गुण-धर्मों की खोज तथा निर्माण में लगती है तब विज्ञान कहलाती है और वही चेतनावृत्ति जब चेतन स्वरूप को जड़ से पृथक सिद्ध करके और जड़वर्ग से विरक्ति कराकर चेतन को अपने स्वरूप में अवस्थित कराती है तब 'धर्म' कहलाती है। अतएव भौतिक क्षेत्र के मंगल के लिए विज्ञान की आवश्यकता है और आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर—स्वरूपस्थिति पर पहुंचने के लिए धर्म की आवश्यकता है।

वास्तविक धर्म की अवहेलना करके धर्म के नाम पर झूठे आडम्बर बढ़ाकर स्वार्थियों ने सदैव से ईर्ष्या, घृणा, गालीगलौज और रक्तपात किया है। इसी प्रकार विज्ञान के मंगलकारी उपयोगों को भुलाकर स्वार्थियों, क्रूरों एवं विज्ञान के बौखलाये पक्षधरों तथा महंतों ने विलास और संहार के अतुल साधन बनाकर मानवता को ज्वालामुखी पर ला बैठाया है। इनमें दोष सच्चे धर्म और विज्ञान का नहीं है, उनके दुरुपयोग करने वाले स्वार्थियों का है।

विज्ञान का तात्पर्य केवल वायुयान तथा रेडियो आदि बनाना ही नहीं है। हम जमीन से एक डेढ़ हाथ ऊपर सोना चाहते हैं; तो आठ लकड़ियों को ऐसा

संयुक्त करते हैं जिसमें रस्सी लपेटकर सो सकें। कहा जाता है कि ऐसा भी युग था जब लोग भोजन पकाना नहीं जानते थे और सब चीज कच्ची खाते थे; परन्तु पीछे से विज्ञान द्वारा ऐसा विधान बनाया गया कि हर खाद्य वस्तु ठीक से पकायी जाये। विज्ञान और धर्म अनादि हैं। उनका आविर्भाव और तिरोभाव तथा न्यूनाधिक्य होता रहता है। अतएव विज्ञान जीवन निर्वाह के हर क्षेत्र में समाया हुआ है, उसको हम जीवन से हटा नहीं सकते और धर्म के बिना न मानव मानव रह सकता है और न उसे जीवन का चरम लक्ष्य (शांति) मिल सकता है। विज्ञान शरीर है, धर्म जीव है। एक के बिना दूसरा कोई मंगलकार्य सम्पादित नहीं कर सकता। अतएव स्वयं समझा जा सकता है कि धर्म और विज्ञान का कितना सामंजस्य है।

180. प्रश्न—हंसदेह में शुद्ध त्रिगुण क्या है? क्या इन पर चलने से मोक्ष हो सकता है?

उत्तर—मानवदेह में चेतना संयुक्त सद्गुणों का समुच्चय ही 'हंसदेह' है। उसके त्रिगुण हैं—विवेक, वैराग्य और भक्ति। सत और असत एवं चेतन तथा जड़ को ज्ञान द्वारा पृथक समझना विवेक है। असत एवं जड़ से उपरत तथा अनासक्त होना वैराग्य है। सत एवं चेतन स्वरूप की ओर झुकाव होना भक्ति है। 'स्व' और 'पर' को जानकर 'पर' से विरत हो 'स्व' में स्थित हो जाना ही मोक्ष है। तो ये त्रिगुण मोक्ष के साधन हैं ही।

181. प्रश्न—पहले सेवा करें कि प्रेम?

उत्तर—प्रेम। बिना प्रेम के सेवा नहीं होगी।

182. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर पहले माता-पिता की सेवा करे कि गुरु की?

उत्तर—जब जिनकी सेवा का अवसर पड़े।

183. प्रश्न—जीवन क्या है और उसका उद्देश्य क्या है?

उत्तर—स्थूल जीवन जड़-चेतन का संगमकाल है। इसका उद्देश्य है जड़प्रकृति से अनासक्त होकर अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाना।

वस्तुत: व्यक्ति का आत्मिक जीवन शुद्ध चेतन है, जो अनादि और अनन्त है। जो अपने अनादि-अनन्त आत्मिक जीवन को समझ लेता है उसकी दृष्टि में शरीर बादल की छाया के समान अपने से दूर, क्षणिक और स्वप्नवत दिखता है। वह सदैव शोकमुक्त अमृतमय है। विशेष समझने के लिए 'जीवन क्या है?' पढ़िए।

184. प्रश्न—कहते हैं कर्म करो, फल की आशा छोड़ दो। अगर कर्म करते-करते शरीर छूट गया तो फल कब मिलेगा?

उत्तर—जब फल की आशा व्यक्ति छोड़ देगा तब फल कब मिलेगा, यह पूछना निरर्थक है। यदि आशा है तो भी शरीर छूट जाने से कोई अड़चन नहीं। पाठ याद करते-करते विद्यार्थी सो जाये तो कोई हानि नहीं। सो करके उठेगा और उसे पाठ याद मिलेगा। मर जाना थोड़े काल के सोने के समान है। कर्मों का फल जन्मान्तर में चलता रहता है। अत: शुभ कर्म करते चलो।

185. प्रश्न—वह कौन-सा कर्म है जो सबसे श्रेष्ठ है?

उत्तर—अनासक्तिपूर्वक परोपकार।

186. प्रश्न—अध्यारोप और अपवाद किसे कहते हैं?

उत्तर—एक वस्तु के गुण-धर्म का भ्रमवश अन्य वस्तु में आरोप करना—अध्यारोप कहलाता है, जिसे अध्यास और मिथ्याज्ञान भी कहते हैं; जैसे रस्सी में सर्प का अध्यारोप एवं मिथ्याज्ञान। अपवाद कहते हैं खंडन को। जैसे यह कहना कि रस्सी में सर्प नहीं है। ये दोनों शब्द वेदांत में अधिक चलते हैं। ब्रह्म में जगत का अध्यारोप और अपवाद होता है।

187. प्रश्न—सत्य का श्रवण करने के बाद भी व्यक्ति को संतोष क्यों नहीं होता?

उत्तर—क्योंकि उसने जो सुना है उसे अपने जीवन में उतारा नहीं।

188. प्रश्न—पतित मनुष्य सरलता से कैसे उठे?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रन्थ तथा साधना का आधार पकड़कर।

189. प्रश्न—सद्गुरु कबीर साहेब को धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारक कहते हैं। धार्मिक एवं सामाजिक कहना तो ठीक है; लेकिन राजनीति में कौन-कौन-सा काम किये हैं यह समझ में नहीं आता जैसा कि चाणक्य जी ने किया था?

उत्तर—सद्गुरु कबीर के स्तर के जो महापुरुष होते हैं उनका कार्य भले ही धार्मिक तथा सामाजिक हो, किन्तु वह इतना व्यापक रूप ले लेता है जिसका प्रभाव राजनीति पर पड़े बिना नहीं रहता। बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, तुलसी, दयानन्द, विवेकानन्द आदि शीर्ष संतों का प्रभाव राजनीति पर पड़े बिना नहीं रहा। यहां कबीर साहेब पर प्रश्न है। उनके विषय में प्रसिद्ध इतिहासकार पं० सुन्दरलाल लिखते हैं—

''कबीर पहले भारतवासी हैं जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के लिए; बल्कि सारी मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ उपदेश दिया।''

''मुगल साम्राज्य के दिनों में कबीर के विचार बराबर फैलते गये। यहां तक दूरदर्शी सम्राट अकबर ने 'दीने-इलाही' के रूप में उन्हें सर्वस्वीकृत कराने की कोशिश की। वास्तव में कबीर ही अकबर के मानसिक पिता थे। विधि ने देश के भीतर तथा भारत की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल न होने दिया; परन्तु भारत की आत्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही है और यदि भविष्य के लिए मार्ग है तो केवल यही है।''

''कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के समय से फिर एक बार उत्तर भारत ने धार्मिक विचारों के मैदान में सारे भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और कबीर ही के विचार अनेक संतों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत में फैलने लगे।''

(भारत में अंग्रेजी राज्य : मानवधर्म)

चाणक्य मुख्य राजनीतिक थे, इसलिए उन्होंने राष्ट्र के लिए कूटनीति, युद्ध, हत्या, आदि सब कुछ का प्रयोग किया जैसा कि राजनीतिक लोग करते हैं। वे अपने युग में भारत की राजनीति, स्वराज्य और शासन दुनिया में चमका दिये थे। कबीर साहेब संत थे। उनके एकतापरक उपदेश का प्रभाव राजनीति और सभी क्षेत्रों में पड़ा।

190. प्रश्न—अलख निरंजन क्या है?

उत्तर—अलख कहते हैं जो देखने में न आये और निरंजन का अर्थ निर्दोष या मायारहित है। इस प्रकार 'अलख निरंजन' शुद्ध चेतन के लिए प्रयुक्त हो सकता है। परन्तु सद्गुरु कबीर ने बीजक में अलख निरंजन को मन:कल्पित वस्तु कहा है और उसका खण्डन किया है; यथा ''अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बंधे बंधा सब लोई।'' (रमैनी 22)

191. प्रश्न—तीन लोक किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक को। मृत्युलोक तो यही है; स्वर्ग और पाताल कल्पित हैं। वस्तुत: जहां हम हैं वह और इसके ऊपर तथा नीचे तीनों लोक हैं। इसका लाक्षणिक अर्थ है विश्व की समग्रता। दूसरे अर्थ में सत, रज, तम को ही तीन लोक कहना चाहिए।

192. प्रश्न—आत्मा और परमात्मा में क्या भेद है?

उत्तर—अज्ञान का। आत्मा ही विषयनिवृत्त होने पर परमात्मा है।

193. प्रश्न—मोक्ष का अधिकारी कौन है?

उत्तर—जिसे स्वरूप का ठीक ज्ञान तथा विषय वासनाओं का सम्यक त्याग है।

194. प्रश्न—यदि मैं शरीर नहीं हूं, तो निज स्वरूप की झलक क्यों नहीं होती?

उत्तर—क्योंकि मन बहिर्मुखी है। अत: उसे अन्तर्मुखी करो।

195. प्रश्न—"पूजिय विप्र शील गुणहीना। शूद्र न गुण गन ज्ञान प्रवीना॥" क्या सद्गुण रहित ब्राह्मण को पूजना चाहिए और क्या परम विवेकी शूद्र को नहीं पूजना चाहिए?

उत्तर—न कोई जन्म से ब्राह्मण है न जन्म से शूद्र। विवेकी ही ब्राह्मण है और वही पूज्य है। अविवेकी ही शूद्र है, वह पूज्य नहीं, दया का पात्र है।

196. प्रश्न—मानव आधुनिकता के परिवेश में किस तरफ जा रहा है?

उत्तर—हृदय से हटकर मस्तिष्क की तरफ। इसके चिंतन में एक ग्रंथ बन सकता है, कम से कम एक लेख तो सहज ही बन सकता है।

197. प्रश्न—समाज और सभा में क्या अन्तर है?

उत्तर—जिसमें सब मनुष्य साथ-साथ एक-दूसरे की सहायता करते हुए चलते हैं, वह समाज है। समाज में उत्तम-मध्यम सब हैं।

'स' कहते हैं सहित को और 'भ' कहते कांति एवं तेज को। इस प्रकार जो कांति एवं तेज के सहित हो वह सभा है। वस्तुत: तेजवानों की समष्टि ही सभा है।

वैसे सभा और समाज का एक अर्थ भी किया जा सकता है। परिभाषाएं अनेक हैं, इसके लिए विवाद नहीं करना चाहिए। मुझे पहली वाली परिभाषा अधिक जंचती है।

198. प्रश्न—प्रेम, भक्ति और सेवा में श्रेष्ठ कौन? शुरुआत किसकी होती है?

उत्तर—एक दृष्टि से प्रेम भौतिक है, भक्ति आध्यात्मिक है। प्रेम की शुरुआत प्रेमी और प्रिय के आमने-सामने होने पर होती है, भक्ति की शुरुआत श्रद्धेय के सद्गुणों को सुनकर या उसका कृत्य देखकर दूर से भी हो जाती है। प्रेम अधिक आकर्षक है, परन्तु संकुचित तथा क्षणिक है। भक्ति अपेक्षया कम आकर्षक है, परन्तु उदार और स्थायी है। प्रेमी अपने प्रेमपात्र को अपने में ही

समेट रखना चाहता है, परन्तु भक्त अपने श्रद्धेय को संसार भर में उघाड़ देना चाहता है। प्रेम स्वार्थपरक है, भक्ति परमार्थपरक।

वैसे प्रेम और भक्ति का अर्थ एक भी किया जा सकता है; सद्‌गुरु कबीर कथित ढाई अक्षर का प्रेम सार्वभौमिक है। जितना स्वार्थ घटता है उतना प्रेम बढ़ता है। विश्व प्रेम सार्वभौमिक और उदार है। पहले प्रेम या भक्ति होती है तब हम अपने प्रेमपात्र या भक्तिपात्र की सेवा करते हैं।

199. प्रश्न—मनुष्य क्यों मरता है, क्या कोई उसे मारता है?

उत्तर—प्रारब्ध भोग पूरा होने पर मनुष्य स्वयं मरता है।

200. प्रश्न—जीव का आवागमन कैसे मिट सकता है?

उत्तर—अपने स्वरूप को समस्त दृश्यों से भिन्न, व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशी तथा कारण-कार्य से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन समझकर जब समस्त वासनाएं त्याग दी जाती हैं, तब द्रष्टा चेतन अपने आप शांत हो जाता है, यही मोक्ष है।

201. प्रश्न—भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्ग—तीनों में श्रेष्ठ मार्ग कौन है?

उत्तर—ज्ञानमार्ग श्रेष्ठ है; परन्तु कर्म तथा भक्ति के बिना ज्ञान की परिपक्वता नहीं हो सकती। अतएव ज्ञान के लिए कर्म और भक्तिमार्ग की भी आवश्यकता है।

202. प्रश्न—मुक्त पुरुष की आत्मा मृत्यु के समय इस देह को छोड़ती है अथवा देह ही छोड़ती है? क्योंकि आत्मा स्वरूप से निष्क्रिय है और छोड़ना क्रिया।

उत्तर—जीवन्मुक्त के प्रारब्धान्त में सूक्ष्मशरीर तथा प्रारब्धग्रंथि समाप्त हो जाते हैं, मुक्त चेतन अपने आप रह जाता है। उसे न कुछ छोड़ना है और न पकड़ना। वह असंग, निराधार और अकेला है।

203. प्रश्न—विषयों से विरक्त होने का उपाय क्या है?

उत्तर—उनमें दुख एवं दोषों का दर्शन।

दोषदृष्टि जबही भई, तब उपज्यो वैराग।
दृढ़ निर्वेद जाको भयो, सोइ मुमुक्षु बड़ भाग॥

(वैराग्य शतक)

204. प्रश्न—मायावशी सब जीव देह धारण करके जन्म के हिण्डोले में झूल रहे हैं। जो उनके द्रष्टा विवेकी पुरुष हैं वे भी देहधारी होने से उसी झूले पर हैं। फिर उससे वे अलग कहां?

उत्तर—डॉक्टर और रोगी दोनों अस्पताल में रहते हैं; परन्तु रोगी विवश है और डॉक्टर रोग का निवारणकर्ता रोगमुक्त है। दृष्टांत एक अंश पर है; क्योंकि समय से डॉक्टर भी रोगी हो जाता है; परन्तु विवेकी पुरुष भ्रमहिण्डोले से उतरकर एवं वासना त्यागकर शांत हो गये हैं। उनकी समस्त ऐषणाएं बुझ गयी हैं। अब वे पुनः भ्रम में पड़ने वाले नहीं हैं। वे देह में रहते हुए भी वस्तुतः विदेह हैं।

* * *

205. प्रश्न—पामर मन को निर्विषय कैसे किया जाये?

उत्तर—पहले तो विषयों के प्रति दोषदर्शन हो। फिर सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, सत्संग, वैराग्यवान पुरुषों का ध्यान तथा विवेक करते हुए शरीर की सारहीनता पर विचार करें।

कुसंग का त्याग अत्यन्त आवश्यक है; स्त्री-पुरुष साथ-साथ बने रहते हुए अर्थात एकांत में दोनों के मिलते रहने से निर्विषय हो पाना कठिन है । अतः एकान्त में विजाति घट से न मिले ।

ब्रह्मचर्य-हानि में जितनी हानि तथा ब्रह्मचर्य-पालन में जितना लाभ निश्चय होता जायेगा उतना ही व्यक्ति निर्विषय होता जायेगा; विषयवासना महा कीचड़ है, इससे अपने आपको निकालना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। क्योंकि बिना पूर्ण निर्विषय हुए सच्ची स्वतन्त्रता असंभव है।

206. प्रश्न—आपकी दृष्टि में नारियां क्या हैं?

उत्तर—सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी, पुरुष के समान कल्याण-साधना के अधिकारी, निंदनीय नहीं, मां स्थानीय होने से वंदनीय।

207. प्रश्न—सुषुप्ति में जीव की वृत्ति कहां रहती है?

उत्तर—बीज रूप से हृदय में।

208. प्रश्न—जीव का विश्राम स्थान कहां है?

उत्तर—उसका अपना स्वरूप।

209. प्रश्न—शिक्षा-दीक्षा, गुरु-शिष्य, साधन-भजन सब द्वैत में चलता है, फिर क्या अद्वैत भ्रम नहीं है?

उत्तर—संसार विविधता से भरा है, इसलिए द्वैत है। संकल्पों के छूट जाने पर जब चेतन का अकेलापन होता है, उसी को अद्वैत कहते हैं। जड़-चेतन मिलाकर अद्वैत नहीं।

210. प्रश्न—स्वरूपस्थिति क्या है?

उत्तर—व्यवहारकाल में अहंकार से मुक्त तथा साधनाकाल में संकल्पों से मुक्त होना।

211. प्रश्न—साधु को कैसा होना चाहिए?

उत्तर—त्यागी, निर्मोही, अनासक्त, निर्मानी और परोपकारी।

212. प्रश्न—स्थिति-अभ्यास काल के समय कौन-सी सावधानी रखनी चाहिए?

उत्तर—मैं संकल्पों में बह न जाऊं।

213. प्रश्न—मनुष्य मेहनत से क्यों डरता है?

उत्तर—अज्ञान और सुखाध्यास-वश।

214. प्रश्न—शिक्षा का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—आन्तरिक सद्‌गुणों का विकास।

215. प्रश्न—क्या शादीशुदा व्यक्ति का जीवन सार्थक है?

उत्तर—यदि वह संयम और धर्मपरायण है तो।

216. प्रश्न—मां-बाप बड़े हैं कि गुरु?

उत्तर—अपनी-अपनी जगह पर सब बड़े हैं।

217. प्रश्न—जीव अमर है तब बीजक में क्यों कहा गया 'जिव मति मारो बापुरा'?

उत्तर—जीव अवश्य अमर है वह नहीं मरता, परन्तु किसी देहधारी को चोट पहुंचाने से उसे कष्ट होता है, इसलिए कष्ट देने से रोका गया है।

218. प्रश्न—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव, प्रकृति और ईश्वर—इन तीनों को सर्वथा पृथक-पृथक मानना द्वैत है। जड़-चेतन सब अंततः एक मानना अद्वैत है। जड़-चेतन (चित-अचित) को ईश्वर का अंश मानकर चित-अचित से ब्रह्म को श्रेष्ठ मानना विशिष्टाद्वैत है। इसका स्पष्ट विवरण 'कबीर दर्शन' के चौथे अध्याय में पढ़ें।

219. प्रश्न—आत्मनियंत्रण क्या है?

उत्तर—मन का अपने वश में होना।

220. प्रश्न—अध्यात्म एवं सद्‌गुरु का जीवन में क्या महत्त्व है?

उत्तर—सर्वोच्च।

221. प्रश्न—जीव का बंध होता है कि मन का?

उत्तर—मन का। वस्तुत: मन का बंध ही जीव का बंधन कहा जाता है।

222. प्रश्न—पारख रूपी अमृत प्राप्त होने पर भी मन में तरंगें क्यों उठती हैं?

उत्तर—वैराग्यपूर्वक स्वस्वरूप का बोध ही पारख का पाना है और ऐसा होने पर मन शांत हो जाता है। वाचिकज्ञान एवं बौद्धिकज्ञान का पाना पारख का पाना नहीं है।

223. प्रश्न—वासना ध्वंस कैसे हो?

उत्तर—गुरु-उपासना, विवेक, वैराग्य एवं चिंतन से।

224. प्रश्न—क्या उन्नति की लालसा नहीं रखनी चाहिए?

उत्तर—रखनी चाहिए; परन्तु अपना और पराये का कल्याण करना ही उन्नति है।

225. प्रश्न—दैविक ताप किस पाप से बनता है?

उत्तर—वाचिक पाप से दैविक ताप, मानसिक पाप से दैहिक ताप तथा शारीरिक पाप से भौतिक ताप होते हैं ऐसा निर्णय प्रसिद्ध है, परन्तु एकदम वर्गीकरण कर पाना कठिन है। हां, पाप का फल ताप है, इसलिए सभी प्रकार के पाप से बचना चाहिए।

226. प्रश्न—कबीर साहेब अपने शरीरान्त के दो सौ वर्ष बाद धर्म साहेब को दर्शन दिये, ऐसी धारणा बहुतों को है, सो कैसे?

उत्तर—भक्त अपने इष्ट को कल्पना में देखता है।

227. प्रश्न—क्या सद्‌गुरु कबीर निर्गुण राम को मानते थे?

उत्तर—वे स्वरूप राम को मानते थे, 'हृदया बसे तेहि राम न जाना।'

228. प्रश्न—जब मैं स्वरूपस्थिति करने बैठता हूं, तो मन कुछ देर शान्त रहता है, फिर चंचल हो जाता है, ऐसी स्थिति में क्या करूं?

उत्तर—विरक्त पुरुषों का ध्यान करो अथवा पाठ करो।

229. प्रश्न—स्थिति अभ्यास के समय नेत्र खुले अथवा बन्द रखना चाहिए?

उत्तर—बन्द रखना अच्छा है, परन्तु नींद न आनी चाहिए।

230. प्रश्न—स्थितिकाल में बाहरी आवाज सुनायी पड़ सकती है?

उत्तर—सुनायी पड़ेगी, परन्तु उसका चिन्तन नहीं होगा।

231. प्रश्न—जाग्रत में मोह नहीं रहता, किन्तु स्वप्न में क्यों होता है?

उत्तर—पुराने अध्यास और असंयम के कारण। विवेक-वैराग्य के दीर्घकाल के अभ्यास से उनका शमन हो जाता है। वैसे स्वप्न की चिंता न करके जागृति में निर्मोह रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

* * *

232. प्रश्न—पारख एक है कि अनेक?

उत्तर—पारख कहते हैं ज्ञानगुण को जो एक है; परन्तु उसको धारण करने वाले चेतन व्यक्तित्व में अनेक हैं।

233. प्रश्न—गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी आदि अंकुरज हैं, 'अंकुरज भखे सो मानवा'—ऐसा प्रमाण देकर कितने कहते हैं कि इनके खाने-पीने में दोष नहीं?

उत्तर—कहने वाले बेईमान हैं; क्योंकि ये मादक द्रव्य हैं और हर प्रकार से हानिकर हैं। सद्ग्रंथों में इनका भी तो निषेध है।

234. प्रश्न—मांसाहारी कहते हैं कि मनुष्य के अतिरिक्त देहधारी मनुष्य के खाने के लिए बनाये गये हैं, मांस में शक्ति है, इसलिए हम मांस खाते हैं?

उत्तर—जो खाते हैं और छोड़ना नहीं चाहते उनकी चिंता छोड़ दीजिए। आप स्वयं इससे बचिए और जो आपकी बातें माने उसे बताइए। संसार में सब प्रकार के लोग सब समय रहते हैं। अपना सिर पटकने की जरूरत नहीं है।

कोई प्राणी मनुष्य के खाने के लिए नहीं बनाया गया है। मनुष्य तो विवेकी है, जब वह स्वयं कष्ट नहीं चाहता तब दूसरे को कष्ट देना विवेक की बात कहां है? मांस से अधिक शक्ति मनुष्य को साग, सब्जियों, फलों, मेवों, अन्नों तथा दूध, घृत में मिलती है।

235. प्रश्न—जीव के अविनाशी होने का क्या प्रमाण?

उत्तर—सारे भौतिक तत्त्व जड़ हैं, उनसे जीव नहीं बन सकता; इसलिए वह जड़ से सर्वथा पृथक है। पृथक होने से अजन्मा है और जो अजन्मा है वह अविनाशी है।

236. प्रश्न—पाप-पुण्य के कर्मफल जीव को लगते हैं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

उत्तर—प्रत्यक्ष ही जीव सुख-दुख भोग रहे हैं।

237. प्रश्न—जीव सत्य है तो असत्य क्या है?

उत्तर—वासनाएं, जिसके निवारण से जीव मुक्त हो जाता है। सूर्य सत्य है और अन्धकार असत्य। सूर्य के उदय होते ही अन्धकार समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जीव सत्य है, वासनाएं असत्य। अत: स्वरूपज्ञान उदय होने पर वासनाएं समाप्त हो जाती हैं और जीव मुक्त हो जाता है।

238. प्रश्न—मन सूक्ष्म इन्द्रिय है या नहीं?

उत्तर—है।

239. प्रश्न—क्या सब खानियों के देहधारियों में दसों इन्द्रियां होती हैं?

उत्तर—सब खानियों के देहधारियों में दसों इन्द्रियां नहीं होतीं, केंचुआ आदि का उदाहरण प्रत्यक्ष है।

240. प्रश्न—मूर्तिपूजा किससे चली?

उत्तर—किसी न किसी प्रकार मूर्तिपूजा सदा रही है। विशेष बौद्धों और जैनों से चली।

241. प्रश्न—मूर्तिपूजा से हानि-लाभ क्या हैं?

उत्तर—जिनको कोई ज्ञान नहीं है, वे यदि सात्विक मूर्तिपूजन करते हैं तो बालक के चटुआ चाटने न्याय कुछ-न-कुछ उन्हें संतोष मिलता है; परन्तु चटुआ से बालक की भूख नहीं जाती, माता का दूध आवश्यक है। इसी प्रकार मूर्तिपूजन से सार मिलने वाला नहीं है, उसके लिए स्वरूपज्ञान और सद्साधना की आवश्यकता है।

मूर्तिपूजन में हानि यह है कि आदमी को विवेक नहीं होता और चेतन स्वरूप के ज्ञान रहित जीवनपर्यन्त जड़ का ही पुजारी बना रहता है। अत: मूर्तिपूजक को भी उससे आगे बढ़ना चाहिए।

242. प्रश्न—उपदेश और उपाय में क्या अन्तर है?

उत्तर—'मन को शुद्ध करो' यह कहना उपदेश है और मन को शुद्ध करने के लिए साधना करना उपाय है।

243. प्रश्न—आत्मशक्ति कैसे प्राप्त हो?

उत्तर—अपने आप को ठीक से पहचानने से।

244. प्रश्न—सारशब्द और पारख में क्या अन्तर है?

उत्तर—सारशब्द निर्णयवचन को कहते हैं और पारख ज्ञान गुण को, जो चेतन का स्वरूप है। यदि कोई स्वस्वरूप चेतन को ही सारशब्द कहता हो तो उसकी अपनी परिभाषा होगी। वैसे हम लोग पहले वाली ही परिभाषा मानते हैं।

245. प्रश्न—क्या जीव पिंड-ब्रह्माण्ड से परे हैं?

उत्तर—निस्सन्देह।

246. प्रश्न—दुनिया में कौन-सी वस्तु नाजुक पायी जाती है?

उत्तर—बहुत-सी, परन्तु जीव के सबसे निकट नाजुक शरीर है।

247. प्रश्न—आत्मा और मन को कैसे पहचाना जाये?

उत्तर—आत्मा कहते हैं स्वयं को, स्वयं तुम चेतन हो, सबको पहचानने वाले हो। मन तुम्हारा दृश्य है। तुम उसको देखकर त्याग दो तो तुम स्वयं रह जाओगे। इसके लिए विवेकी सद्‌गुरु की संगत करो।

248. प्रश्न—क्या ईश्वर है? यदि है तो क्या उसका प्रत्यक्षीकरण हो सकता है?

उत्तर—आपको जिसका प्रत्यक्षीकरण होगा वह माया होगी, पांच विषय होंगे, अत: छूटने वाले होंगे। ध्रुव, प्रह्लाद, अजामिल आदि को मिलने वाले ईश्वर के सारे उदाहरण निरे कल्पित हैं। इस स्वयं ज्ञाता चेतन के ऊपर कोई ईश्वर नहीं। अत: अपने ईश्वरत्व को समझो, अलग मत गिड़गिड़ाओ।

249. प्रश्न—समाचार पत्रों में आये दिन छपता रहता है कि अमुक जगह एक बच्चे ने अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त कहे। क्या यह हो सकता है?

उत्तर—यदि घटनाएं सही हैं तो ठीक है। पुनर्जन्म तो होता ही है। परन्तु मेरे सामने या प्रत्यक्ष जानकारी में ऐसी कोई घटना नहीं है। हो सकता है पुनर्जन्म सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए ऐसी कथाएं गढ़ी जाती हों।

250. प्रश्न—जब चेतन पारख स्वरूप ज्ञानमात्र है तब वह इन्द्रियों के विषयों में प्रभावित क्यों होता है?

उत्तर—अनादि अभ्यास तथा स्वस्वरूप के अज्ञानवश। सत्संग, सद्ग्रंथ सद्विवेक से अज्ञान तथा आसक्ति को मिटाकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करना चाहिए।

251. प्रश्न—क्या गृहस्थी में रहकर इसी जन्म में ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है? किस प्रकार?

उत्तर—गृहस्थी में रहने का अर्थ यदि विषयासक्ति में रहना है तो इसी जन्म में क्या, कभी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होगी।

यदि व्यक्ति विषयासक्ति से पूर्ण मुक्त हो गया है तो कपड़ा चाहे गृहस्थ का हो और चाहे विरक्त का, कोई अन्तर नहीं पड़ता। मुक्ति प्राप्ति के लिए विषयासक्ति से पूर्ण छुटकारा, निवृत्ति और मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। सद्ग्रंथों के मनन और सत्संग से सब ज्ञात हो जायेगा।

252. प्रश्न—कर्मयोग क्या है? क्या कर्मयोग के पूर्ण पालन से मुक्ति हो सकती है? एक गृहस्थ मुमुक्षु के लिए कर्मयोग की शिक्षा किस प्रकार की होगी?

उत्तर—निष्काम और अनासक्तिपूर्वक शुभकर्म करना कर्मयोग है। इस प्रकार शुभ कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। शुद्ध चित्त में ही विवेक-वैराग्य उदित होकर वासनाएं शान्त हो जाती हैं और व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है। फिर जीवन्मुक्त पुरुष भी जीवनपर्यन्त कुछ-न-कुछ लोकहिताय कार्य करता ही है।

गृहस्थ-मुमुक्षु को चाहिए कि घर, धन, जमीन, स्त्री, पुत्र, पति, परिवार आदि की आसक्ति छोड़कर उन सबके प्रति उचित कर्तव्य पालन करे। कर्तव्य कर्मों को करते हुए सब कुछ को स्वप्नवत समझकर अनासक्त, असंग रहे।

253. प्रश्न—पारख समाधि के अभ्यास के लिए किस समय का निर्धारण सर्वोत्तम होगा?

उत्तर—प्रात:काल का। वैसे जब समय मिले तभी ठीक है। इसके लिए मन को सब प्रकार से दबावरहित, सरल, शुद्ध एवं संयत रखना अत्यन्त आवश्यक है।

254. प्रश्न—अभ्यास कितने घंटे हो?

उत्तर—जितना सध सके। अधिक-से-अधिक जितना बन सके इसमें रहना ही तो जीवनलाभ है।

255. प्रश्न—मन, अन्त:करण और सूक्ष्म शरीर क्या है?

उत्तर—अन्त:करण तथा बाह्यकरण दो हैं। चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां बाह्यकरण हैं तथा अन्त:करण वह सूक्ष्म साधन है जिससे भीतर सुख-दुखादि के अनुभव होते हैं। उस अन्त:करण के ही कार्य भेद से चार नाम दिये गये हैं—मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मनन से मन, अनुसन्धान से चित्त, निर्णय से बुद्धि तथा स्वीकार से अहंकार नाम पड़े हैं।

सूक्ष्म शरीर वासनाओं का वह समूह है जो जड़तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों से ग्रथित जीव के साथ जन्म-जन्मांतर में भ्रमण करने वाला है। अन्त:करण भी सूक्ष्म रूप में स्थित है। बारम्बार स्थूल शरीर छूटते रहने पर भी वह अन्त:करण युक्त सूक्ष्म शरीर जीव को लेकर रहता है। जीव को स्थूल शरीर प्राप्त होने पर अन्त:करण वृत्ति रूप में काम करता है और स्थूल शरीर छूट जाने पर अन्त:करण सूक्ष्म शरीर के साथ बीज रूप में रहता है। पुन: शरीर मिलने पर वृत्ति रूप में काम करने लगता है।

256. प्रश्न—मानवता की चरम सीमा कहां तक है?

उत्तर—मानवता की अंतिमी सीमारेखा खींचना दुस्साहस मात्र होगा। जितना संभव हो परिश्रमी और परोपकारी होना चाहिए। अपने से जितना बन सके सहन, क्षमा तथा संतोष धारण करना चाहिए। हां, जीवन के अंतिमी उत्कर्ष पर ध्यान देते हुए कहा जा सकता है कि पूर्ण निष्काम एवं जीवन्मुक्त हो जाना ही मानवता की चरम सीमा है।

257. प्रश्न—क्या यहां पाप और पुण्य हैं, यदि हैं तो कैसे अनुभव करें?

उत्तर—पाप और पुण्य किसी स्थान, मकान या मैदान में नहीं रहते। उनका निवास मनुष्य के मन में होता है। जिन संकल्पों, कथनों तथा आचरणों के परिणाम में मन में प्रसन्नता आये वह पुण्य है। दूसरे को दुख देना और अपना चरित्र गिराना पाप है तथा दूसरे को सुख देना और अपना चरित्र उठाना पुण्य है।

258. प्रश्न—आप अंतर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं अथवा विपक्ष में? पक्ष में हैं तो क्यों, विपक्ष में हैं तो क्यों?

उत्तर—मैं तो किसी प्रकार के विवाह के पक्ष में नहीं हूं। ऐसा स्वतन्त्र मनुष्य जीवन पाकर उसे किसी पुरुष या स्त्री के हाथ में बेच देना गहरी भूल

है। किसी प्रकार की उन्नति के लिए, मोक्ष साधना के लिए और आज-कल की बढ़ती हुई जनसंख्या के समाधान के लिए भी अविवाहित रहकर ब्रह्मचारी रहना सौ सोने का है।

रहा, अधिकतम लोग तो विवाह ही करते हैं और करेंगे। विवाह युवक और युवती का होता है; अतएव दोनों की योग्यता का मिलान होना चाहिए। विवाह अपनी ही जाति में करना चाहिए और वह जाति है 'मानव'।

आरम्भ वाली बात मैं पुन: दोहरा देना चाहता हूं कि जिनसे बन सके वे आजीवन अविवाहित और शुद्ध ब्रह्मचारी बनकर रहें।

259. प्रश्न—मानसिक रोग के क्या उपचार हैं?

उत्तर—विचार-विवेक; परन्तु यह तभी होगा जब सत्संग करता रहे और सद्ग्रंथों का अध्ययन भी करता रहे। किसी साधन-सम्पन्न संत का सत्संग करते रहिए और उनसे राय लेते रहिए।

260. प्रश्न—साधुता के साथ क्रोध क्यों होता है?

उत्तर—जहां साधुता है वहां क्रोध का किंचित भी स्थान नहीं है। हां, बनावटी साधुता के अहंकार में क्रोध अवश्य रहता है।

261. प्रश्न—संयोग में सुख और वियोग में दुख क्यों होता है?

उत्तर—सब संयोग में न सुख होता है और सब वियोग में न दुख। वस्तुत: अनुकूल के संयोग से सुख होता है और उसके वियोग में दुख। इसका कारण अनुकूल की प्रियता है जो स्वाभाविक है। हां, विवेकवान सम रहने की चेष्टा करते हैं।

262. प्रश्न—क्या सचमुच कुन्ती ने क्वांरेपन में कर्ण को जन्म दिया?

उत्तर—आश्चर्य क्या है? लिखा तो यही मिलता है।

263. प्रश्न—मनुष्य पतन पथ में क्यों जाता है?

उत्तर—प्रलोभन-वश।

264. प्रश्न—मनुष्य प्राय: अच्छी बातें क्यों नहीं सोचता?

उत्तर—दोषों से ढका होने के कारण।

265. प्रश्न—बुरी वासनाओं से बचने का क्या उपाय है?

उत्तर—सत्संग, सद्ग्रंथ-अध्ययन तथा सद्विवेक।

266. प्रश्न—अच्छा आदमी यदि कुसंग में पड़ गया, तो उसका क्या होगा?

उत्तर—यदि वह कुसंग से शीघ्र निकलकर सावधान नहीं हुआ तो पतित हो जायेगा।

267. प्रश्न—जब जीव अमर है, तब किसी को मारना पाप क्यों है?

उत्तर—क्या तुम अपने को मारने दोगे? मार पड़ने वाले को दुख होता है, इसलिए पाप है।

268. प्रश्न—यदि कर्म करने पर भी फल न मिले तो क्या करना चाहिए?

उत्तर—संतोष।

269. प्रश्न—संसार में सुखी कौन है?

उत्तर—जिसने भोगों की इच्छाएं जीत ली हैं।

270. प्रश्न—मुक्ति का मार्ग क्या है?

उत्तर—अहन्ता-ममता का त्याग।

*   *   *

271. प्रश्न— खुशी, प्रसन्नता, सुख और शांति में क्या अन्तर है?

उत्तर—मन की अनुकूल स्थिति को खुशी और प्रसन्नता कहते हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

मन-इन्द्रियों से अनुकूल विषयों का ग्रहण सुख है और मन की वासना-हीनता शांति है। सुख विषयनिष्ठ है तथा शांति आत्मनिष्ठ। सुख बाहर से आता है, शांति भीतर से। सुख एक मन की तरंग है और शांति तरंगों का उपशमन।

वैसे शास्त्रों में शांति को, जीवन्मुक्ति की अनुभूति को 'सुख' नाम से भी कहा गया है। सद्‌गुरु कबीर ने कहा—

जो तू चाहै मूझको, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, 'सब सुख' तेरे पास॥

(बीजक, साखी 298)

यह 'सब सुख' जीवन्मुक्ति की शांति ही है। गीतादि शास्त्रों में शांति एवं जीवन्मुक्ति की अनुभूति को 'सुख' कहा गया है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी॥ 5/13 ॥

स युक्तः स सुखी नरः॥ 5/23 ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः॥ 5/24 ॥

योगिनं सुखमुत्तमम्॥ 6/27 ॥

अर्थात—मन से सर्व कर्मों का त्यागकर सुखी हो जाता है॥ 5/13॥ जो योगी है, वह सुखी है॥ 5/23॥ जो व्यक्ति अपने भीतर ही सुख पा लेता है, अपने भीतर ही आराम पा लेता है तथा अपने भीतर ही ज्ञान पा लेता है॥ 5/24॥ योगी को उत्तम सुख मिलता है॥ 6/27॥

अतएव शब्दों को लेकर हठ नहीं पकड़ना चाहिए। शांति तो मन की निर्वासनिक अवस्था ही है; परन्तु 'सुख' को विशेषकर विषयजन्य माना गया है। फिर भी उक्त उदाहरणानुसार 'सुख' का अर्थ निर्वासनिक शांति एवं जीवन्मुक्ति अनुभूति भी है।

श्री पूरण साहेब ने कहा है "आनन्द आनन्द सब कहै, आनन्द जीव को काल।" यहां आनन्द विषय-सुख या काल्पनिक सुख को माना गया है; परन्तु श्री रामरहस साहेब पंचग्रंथी में कहते हैं "आनन्द सिन्धु अहन्तातीता" यहां सर्व अहंताओं से अतीत हो जाने पर जो जीवन्मुक्ति की स्थिति आती है उसे ही 'आनन्द सिन्धु' कहा गया है। पंचग्रंथी में ही कहा गया 'तू हंस स्वतः आनन्द' यहां भी जीवन्मुक्ति सुख से सम्पन्न पुरुष को ही कहा गया है।

श्री काशी साहेब ने कहा—"जीवन्मुक्ति सुख अनित्य पिछानो। सुख स्वरूप जीव नहिं जानो॥" अर्थात जीवन्मुक्ति सुख भी देह रहे तक है। देहधारियों का मन उद्वेगित होने से वे दुखी हैं और जब उनमें से कोई व्यक्ति वैराग्य-विवेक पूर्वक वासनाओं को जीत लेता है और उसके मन के उद्वेग समाप्त हो जाते हैं तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है। वृत्ति की शांति ही जीवन्मुक्ति सुख है और इसकी अनुभूति देह तक ही हो सकती है। विदेह में जीव शुद्ध स्वरूप मात्र रहता है। वहां तन-मन न होने से न कोई द्वन्द्व है और न उसके अभाव में शांतिवृत्तिजनित सुख है। वहां वृत्ति का अत्यंताभाव है। वहां एकदम निर्द्वन्द्व दशा है। इसलिए जीवन्मुक्ति सुख भी अनित्य है।

जीव के शुद्ध स्वरूप में सुख नहीं कह सकते। सुख तो दुखों की अपेक्षा से अनुभव में आता है। मनोवृत्ति में ही दुख और सुख होते हैं। जीव के शुद्ध स्वरूप में न शरीर है और न मन; फिर मनोवृत्ति कहां से आ सकती है? अतएव जीव न दुख स्वरूप है और न सुख स्वरूप। श्री काशी साहेब का यह निर्णय अत्यन्त तथ्यात्मक है, सारभूत है। किन्तु साधारण आदमी यह सुनकर

घबरा जाता है कि जीव सुख स्वरूप नहीं है। वह सुख का इतना कीड़ा बना है कि सुख की कल्पना से रहित स्थिति को समझ ही नहीं पाता। परन्तु हम बहुत साधारण रूप से समझ सकते हैं कि यदि हमें दुखों की अनुभूति न हो तो हम सुख की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिसे कभी ठण्डी नहीं लगी हो वह आंच में सुख को सोच भी नहीं सकता। जब विदेहस्वरूप शुद्ध जीव में दुखों का किंचिन्मात्र कभी स्पर्श नहीं है, तब वहां सुख रूप दरिद्रता की आवश्यकता ही क्या है।

फिर भी सुख एवं आनन्द की कल्पना में विमोहित मनुष्यों को समझाने के लिए ऋषियों ने कह दिया है कि जीव आनन्द स्वरूप ही नहीं, परमानन्द स्वरूप है। उन्होंने कहा कि जीव स्वरूपत: सर्वापत्तिरहित होने से परमानन्द स्वरूप ही है। अब इस आनन्द स्वरूपता का अर्थ कोई यह लगा ले कि जीव विदेहकाल में किसी प्रकार से आनन्द का अनुभव करता है, कुछ सोचता है, अन्य मुक्त पुरुषों से बातचीत करता है और यह अनुभव करता है कि मैं मुक्त होकर बड़ा सुखी हूं, तो यह सब कल्पना बालबुद्धि ही होगी। विदेह में जीव द्वन्द्वातीत सत्ता मात्र है।

अतएव शब्दों का हठ पकड़कर कभी लड़ने की आवश्यकता नहीं, अपितु स्थानभेद से शब्दों के विभिन्न अर्थ विनम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

272. प्रश्न—एकता का क्या अर्थ है? आज तक संसार के सभी उपदेशक एकता की रट लगाते चले आ रहे हैं, लेकिन प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि सभी लोगों के विचारों, मतों, रीतियों आदि में एकता नहीं हो रही है। तब क्या ऐसी स्थिति में एकता का उपदेश करना निष्प्रयोजन नहीं है?

उत्तर—सचमुच एकता पर जोर प्राय: सभी लोगों ने दिया है। ऋग्वेद में आता है "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" यहां सबको एक साथ चलने, बोलने, जानने आदि की राय दी गयी है।

यह सच है कि संसार में सर्वथा एकता न कभी हुई न हो सकती है; क्योंकि भूमण्डल का क्षेत्र विस्तृत है। उसमें अनेक देश, प्रदेश, क्षेत्र, भाषा, विचार, संस्कार, रीति-रिवाज और मान्यताएं हैं; अतएव सबकी सभी प्रकार की एकता हो पाना असम्भव है। किंतु विश्व के सम्पूर्ण मानवों में एकता का एक ऐसा मूलभूत माध्यम है, एक ऐसे सार्वभौम लय एवं संगीत हैं जो मानव-मानव को अलग नहीं होने देते।

सबके शरीर एक ही प्रकार के मिट्टी-पानी आदि से बने हैं। सभी के भीतर एक प्रकार के ज्ञान-गुण धर्म वाले चेतन देव का निवास है। सबको अनुकूलता-प्रतिकूलता में क्रमश: सुख और दुख के अनुभव होते हैं। सबको

इन्द्रिय-मन की लम्पटता से दुख तथा उनके निग्रह से शांति होती है। अतएव सारी मूलभूत बातों में कोई अन्तर नहीं दिखता।

विषमता के जितने आधार हैं या तो झूठे हैं या तो एकदम गौण। कहीं-कहीं तो एक ही सत्य को अनेक तरीकों और विभिन्न शब्दों से कहने के कारण सत्य में भी विभिन्नता जैसी लगती है और लोगों में मिथ्या अहंकार-वश लड़ाइयां हो जाती हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र बड़ा ही मूल्यवान है—

''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।''

अर्थात एक ही सत्य को विद्वान लोग अनेक प्रकार से कहते हैं।

किसी प्राणी की अन्तरात्मा दुख नहीं चाहती। इससे यह सहज समझा जा सकता है कि हमें दूसरे को दुख नहीं देना चाहिए। सभी धार्मिक मतों के लोग जीवन की पवित्रता तथा अन्त:करण की शुद्धि में ही आत्मकल्याण बताते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में जब याज्ञवल्क्य राग-द्वेष-रहित होकर स्वरूपज्ञानी का जीवन्मुक्ति दशा में विचरण करने का वर्णन करते हैं, तब कहोल ऋषि पूछता है कि ऐसा ज्ञानी किस साधना से बने? तब याज्ञवल्क्य कहते हैं—'चाहे जिस साधना से बने, ऐसा ही बने'—''येन स्यात् तेन ईदृश: एव।''

सांख्यदर्शन भी कहता है—'जिस किसी भी प्रकार उस (प्रकृति और पुरुष के संयोग) का नष्ट होना ही पुरुषार्थ है'—यद्वा तद्वा तदुच्छिति: पुरुषार्थ:।''

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और॥

(बीजक, साखी 190)

यहां विचारकों ने साधनों पर दुराग्रह नहीं किया है। जिस प्रकार अज्ञान की ग्रंथि कटे वही साधन है और समझदारों एवं ज्ञानियों की स्थिति एक समान राग-द्वेष-रहित शान्तिमय है।

लोगों के मन में एकता की भावना है कि नहीं, इस पर न ध्यान देकर हमें यह देखना है कि हमारे मन में एकता की भावना पनपी कि नहीं। सद्गुरु कबीर का यह तलस्पर्शी वाक्य हृदय को कितना आंदोलित करता है ''जित देखो तित प्राण हमारो।''[1] जहां देखता हूं वहां हमारा प्राण है। मनुष्य ही नहीं,

---

1. बीजक, साखी 341।

जीव मात्र के प्रति अपनत्व की भावना करने पर मन की यह स्थिति आती है। पूरे विश्व को हमें कैसे मित्र मानना चाहिए यह पूज्य ऋषियों ने अपनी अन्तरात्मा की लय में, हृदय के उद्गार में हमें सिखाया है—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(अथर्ववेद 19/15/6)

अर्थात—'हमें न अपने मित्रों से भय हो, न शत्रुओं से, जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते हैं उनसे भी हमें कोई भय न हो। न दिन को हमें भय हो और न रात को। सभी दिशाएं (विश्व) हमारी मित्र हों।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्॥
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

(यजुर्वेद 36/18)

अर्थात—सभी प्राणी मुझे मित्र के रूप में देखें और मैं भी उन्हें मित्र के रूप में देखूं।

अंतिम सार यह समझना चाहिए कि विश्व में चाहे जितना मतभेद हो जाये; परन्तु मनुष्यों की शाश्वत आवश्यकताएं समान हैं। सुख-दुख में सबके दिल की धड़कनें एक तुल्य हैं और सबका अपना आपा शान्तमय चेतनस्वरूप एक सदृश है।

लोगों के गुण, कर्म, संस्कार तथा योग्यताएं अनेक और विभिन्न होने से संसार में मतों की अनेकता समाप्त नहीं हो सकती; अतएव हमें चाहिए कि उन्हें दोष के रूप न लेकर सद्गुण के रूप में देखने के अभ्यासी बनें। पण्डित माधवाचार्य की यह सीख कितनी सुहावनी है—

"माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न संजायते?"

(सर्वदर्शन संग्रह, मंगलाचरण)

अर्थात—रंग-बिरंगे फूलों से बनायी गयी माला किसके मन को अच्छी नहीं लगती?

इसी प्रकार अनेक मन रूपी अनेक रंगों के फूलों से बनायी गयी 'मानवता' रूपी माला एकता की ओर ही संकेत करती है और यह सबको प्रिय होना चाहिए। सद्गुरु कबीर की यह साखी फिर से स्मरण करो—

समुझे की गति एक है, जिन्ह समुझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और॥

(बीजक, साखी 190)

* * *

273. प्रश्न—पारख सिद्धांत और वेदान्त में क्या कोई मौलिक विभिन्नता है?

उत्तर—ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि मुख्य उपनिषदें वेद, ब्राह्मण, आरण्यक ग्रंथों के प्राय: अंश हैं, जिनमें प्राय: आध्यात्मिक चर्चा होने से ज्ञानपरक हैं; इसलिए ये वेद + अन्त = वेदान्त के नाम से जाने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि इनमें वेदों का अन्तिम सार अध्यात्मज्ञान है या अन्तिमी ज्ञान है। परन्तु इन उपनिषदों में आत्मा पर ही मुख्य जोर देते हुए स्वरूपविवेचन में स्थल-स्थल पर काफी मतभेद है।

इन उपनिषदों के आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय करने के लिए गीता में काफी प्रयास किया गया है; परन्तु गीता स्वयं आध्यात्मिक उपदेशों का एक अजायबघर बन गयी है और उसमें एक मत सिद्ध कर पाना असंभव हो गया है।

पीछे से वादरायण ने उपनिषदों के ज्ञान का समन्वय करने के लिए ब्रह्मसूत्र, जो छह शास्त्रों में एक है, लिखा; परन्तु ब्रह्मसूत्र को लेकर बड़ा बखेड़ा खड़ा हुआ। उसके पहले भी भाष्य होते रहे; परन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध पहला भाष्य स्वामी शंकराचार्य (800 ई०) का है जो शारीरिक भाष्य के नाम से जाना जाता है और उसका सिद्धान्त 'अद्वैत' है। दूसरा भास्कराचार्य (1000 ई०) का श्री भास्कर भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'भेदाभेद' है। तीसरा रामानुजाचार्य (1140 ई०) का श्री भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'विशिष्टाद्वैत' है। चौथा माध्वाचार्य (1238 ई०) का पूर्णप्रज्ञ भाष्य है, जिसका सिद्धांत 'द्वैत' है। पांचवां निम्बार्काचार्य (1250 ई०) का वेदांत-पारिजात है, जिसका सिद्धांत 'द्वैताद्वैत' है। छठां श्री कण्ठ (1270 ई०) का शैवभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'शैवविशिष्टाद्वैत' है। सातवां श्रीपति (1400 ई०) का श्रीकरभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'वीरशैवविशिष्टाद्वैत' है। आठवां बल्लभाचार्य (1500 ई०) का अणुभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' है। नवां विज्ञानभिक्षु (1600 ई०) का विज्ञानमृत है, जिसका सिद्धांत 'अविभागाद्वैत' है। दसवां बलदेव (1725 ई०) का गोविन्दभाष्य है, जिसका सिद्धांत 'अचिंत्यभेदाभेद' है।

इस प्रकार जिस वादरायण के वेदान्तदर्शन को मुख्यत: वेदान्त कहने का प्रचलन हुआ और जो उपनिषदों के ज्ञान के समन्वय में लिखा गया था वह इस स्वाभाविक विभिन्नता भरे जगत में पड़कर नाना मतों को धारण करने वाला हो गया।

वेदांत भाष्यकार शंकराचार्य लिखते हैं—

'इदानीं केवलाधिष्ठात्रीश्वरकरणवाद: प्रतिषिध्यते।'

अर्थात—जो लोग ईश्वर को केवल निमित्तकारण मानते हैं उनके मत का खण्डन करने के लिए वर्तमान अधिकरण की रचना की जा रही है। शंकराचार्य ईश्वर को केवल निमित्त कारण मानने वाले को अवैदिक कहते हैं। अत: उनके ख्याल से समस्त वैष्णव तथा आर्यसमाज के सिद्धांत अवैदिक ही हैं। स्वामी शंकराचार्य के ख्याल से कुम्हार मिट्टी लेकर घड़ा नहीं बनाता, अपितु वह स्वयं घड़ा हो जाता है। अर्थात ईश्वर जड़ प्रकृति को लेकर जगत नहीं रचता; अपितु स्वयं जगत बन जाता है। वस्तुत: उनके मत से ईश्वर, जीव, जगत सब मिथ्या हैं, माया द्वारा व्यर्थ प्रतीतमात्र हैं, एक ब्रह्म ही सत्य है।

द्वैतवादियों, विशिष्टाद्वैतवादियों आदि ने शंकराचार्य को पानी पी-पी कर कोसा है। रामानुजाचार्य ने अपने श्री भाष्य में शंकराचार्य को छिपा हुआ बौद्ध कहा। उनके मत को हास्यास्पद बताया। पद्मपुराण में शिव के मुख से शंकराचार्य के मायावाद सिद्धांत को अवैदिक करार दिलाया गया—''मायावादम् अवैदिकम्'' और उसी ग्रंथ में शिव से कहलवाया गया कि ''माया की कल्पना एक मिथ्या सिद्धान्त है और बुद्धमत का ही छिपा हुआ रूप है। हे देवि! मैंने ही कलियुग में एक ब्राह्मण (शंकराचार्य) का रूप धारणकर इस मिथ्या सिद्धांत का प्रचार किया।'' यथा—

मायावादमसच्छास्त्रम् प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड 236)

यहां तक कि माध्वाचार्य के शिष्य त्रिविक्रम के पुत्र नारायण ने मणिमंजरी और मध्वविजय—इन दो ग्रंथों में शंकराचार्य को महाभारतोक्त मणिमान नामक दैत्य बताया।

इस प्रकार वेदांत के एक भाष्यकार दूसरे को अवैदिक एतदर्थ नास्तिक घोषित करते रहे और वेदांत में नाना मतों एवं सिद्धांतों की स्थापना करते रहे। फिर 'वेदांत' से क्या सिद्धान्त माना जाये—अद्वैत कि विशिष्टाद्वैत या द्वैत, अथवा शुद्धाद्वैतादि या सब का सब?

हां, यह निर्विवाद है कि 'वेदांत' शब्द विद्वतमण्डली या साधारण जनता में अद्वैत ब्रह्मवाद के अर्थ में रूढ़ हो गया है; इसलिए पूछा हुआ वेदांत शंकराचार्य का अद्वैतवाद ही होगा।

शंकराचार्य के वेदांत की सारी प्रक्रिया का वर्णन संक्षिप्त रूप में भी यहां करना सम्भव नहीं। यहां उनका सारतत्त्व ही बताना होगा। शांकरवेदांत के मत से सत्ता केवल एक है जो अखण्ड, परिपूर्ण व्याप्त है। उसका नाम आत्मा या ब्रह्म है। यह जगत तीनों काल में नहीं है। फिर प्रतीत कैसे होता है? केवल माया से। माया क्या है? इसे मत पूछो। इसे सत्य कहूं तो द्वैत खड़ा होगा, और असत्य कहूं तो प्रत्यक्ष उसका खेल संसार दिखाई देता है। अत: न कहने योग्य है—अनिर्वचनीया।

जब एक ही ब्रह्म है तब नानत्व क्यों दिखता है? बन्ध-मोक्ष किसका है? नाना मत खड़ा करने वाला कौन है? ये सारे प्रश्न करना एक बखेड़ा बढ़ाना है। वस्तुत: अद्वैतवाद को समझने के लिए गुरु और वेदांत वाक्यों पर विश्वास करना चाहिए। यह ठीक है कि अद्वैतवाद में गुरु और वेदांत भी मिथ्या हैं, अतएव चुप रहना ही छुटकारा का सरल रास्ता है।

अद्वैतवेदांत में घट-मृत्तिका, जल-तरंग, स्वर्ण-भूषण न्याय ब्रह्म-जगत एक है; अतएव बन्ध-मोक्ष भी भ्रम हैं। इस मत में अन्तत: जड़-चेतन पृथक नहीं हैं; किन्तु सर्वथा एक है।

'पारख' सद्‌गुरु कबीर का मौलिक सिद्धान्त है, जिसका मौलिक वर्णन उनके रचित बीजक ग्रन्थ में है। उसके बाद कबीर परिचय, पंचग्रंथी, त्रिज्या, निर्णयसार, निष्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन आदि पारख सिद्धांत के ग्रन्थ हैं। लोग बीजक में बुद्धिभेद से अनेक सिद्धांत भले आरोपित करें; परन्तु 'पारखसिद्धांत' में मतभेद नहीं है।

पारख सिद्धांत जड़ और चेतन को सर्वथा-सर्वदा अलग-अलग मानता है। जड़ में अनेक मौलिक भेदपरक तत्त्व हैं तथा चेतन स्वरूपत: समान होते हुए भी उनके असंख्य व्यक्तित्व हैं। सभी चेतन एक दूसरे से भिन्न, व्याप्य-व्यापक भावरहित हैं। चेतन जड़ के वासना-वश जन्म-मरण में भटकते हैं और मानव तन में किये शुभाशुभ कर्मों के फल चारों खानियों में भोगते हैं। मानव शरीर में विवेकवानों के सत्संग तथा स्वयं विवेक से जब स्वरूपज्ञान हो जाता है और जब जड़ की आसक्ति छोड़कर द्रष्टा चेतन अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है। मुक्त जीव सदैव शिव स्वरूप अर्थात कल्याणमय, शान्तिमय है।

शम, दम, विवेक, वैराग्य, तितिक्षा, गुरु-उपासना आदि साधनपक्ष 'वेदांत' और 'पारख' का एक है; परन्तु वेदांत में आगे चलकर भोग-योग मिला दिया

जाता है जो योगवाशिष्ठ, विचारसागर आदि ग्रंथों में प्रसिद्ध है। 'ब्रह्मज्ञानी युवती का उपभोग करते हुए भी सदैव संन्यासी है।' "भोगै युवती सदा संन्यासी।" (विचार सागर 5/166)। पारख सिद्धांत इस निर्लिप्तवाद के विरोध में है।

'वेदांत' सभी चेतनों तथा जड़ को भी एक में मूलत: मिलाकर अद्वैत मानता है; किन्तु 'पारख' अन्य चेतनों तथा जड़वर्ग से अपने आपको भिन्न कर असंगता एवं निराधार स्थिति को अद्वैत मानता है।

बहुत कहां तक कहा जाये, वेदांत मूलत: जड़ और चेतन को एक में मिला देता है और पारख दोनों को सर्वथा भिन्न कर देता है सर्वदा के लिए।

'पारख' बीजक समर्थित होने से वह नया नहीं है; किन्तु उसका स्वरूप शाश्वत है। शब्दावली का आग्रह छोड़ देने पर उसके विचारक भी पुरातन हैं।

*   *   *

274. प्रश्न—सुषुप्ति की तरह समाधि अवस्था में भी क्या शरीर-संसार का भान नहीं रहता?

उत्तर—सुषुप्ति एकदम अचेती अवस्था है; परन्तु समाधि अचेती अवस्था नहीं है। वह संकल्प-तरंगों से रहित केवल शांति अवस्था है। हठयोगियों की समाधि सुषुप्ति हो सकती है; परन्तु विवेकियों की समाधि शान्ति मात्र है।

275. प्रश्न—पारख समाधि, निर्विकल्प समाधि तथा तुरीयावस्था—ये तीनों अर्थ की दृष्टि से एक हैं या नहीं?

उत्तर—पहले संकल्पों को छोड़-छोड़ कर शान्त रहना एवं केवल संकल्पों को देखते रहना, उनमें मिलना नहीं। दीर्घकाल के ऐसा अभ्यास करने से संकल्पों का सर्वथा छूट जाना और चेतन सत्ता का शान्त मात्र रह जाना—पारख समाधि है। कल्पनाओं से रहित शान्ति अवस्था निर्विकल्प समाधि है। अतएव दोनों में मौलिक अन्तर नहीं है। शर्त यह है कि यथार्थ बोधपूर्वक यह संकल्पहीन अवस्था प्राप्त की जाये। परन्तु तुर्यगा (तुरीया) एक विचित्र अवस्था है। एक तो मूल में इसका सिद्धांत जड़-चेतन अभिन्नवाद है ही, और दूसरे इस अवस्था का वर्णन महा अतिशयोक्तिपूर्ण है।

योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण के 118वें सर्ग में वर्णन मिलता है कि तुर्यगा अवस्था में पहुंचकर अन्तर-बाहर कुछ भान नहीं रहता। वह मुरदे के समान संसार से शून्य हो जाता है। दोनों में केवल इतना ही अन्तर है कि एक में श्वास चलता है और दूसरे में श्वास नहीं चलता। दूसरे द्वारा बारम्बार जगाने पर भी तुर्यगा-प्राप्त ज्ञानी का जागरण नहीं होता। योगवासिष्ठकार कहते हैं

"भेदस्यानुपलम्भत:" अर्थात जिस अवस्था में दूसरों द्वारा प्रेरित करने पर भी भेद की उपलब्धि नहीं होती, वही तुर्यगा है।

उपर्युक्त वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। ब्रह्मज्ञान कोई क्लोरोफार्म नहीं है कि व्यक्ति उसे सूंघकर सदैव के लिए अचेत हो जाये। अब भेद स्पष्ट समझ सकते हो।

276. प्रश्न—जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब भगवान का अवतार होता है, इस बात में क्या तथ्य है?

उत्तर—महान पुरुषों के गुणों पर रीझकर जनता उन्हें अवतार मान लेती है, बस इतना ही तथ्य है। संसार सदैव अंधकारमय है। महान पुरुष ही कुछ प्रकाश फैलाकर मानवता उजागर करते हैं।

अवतारवाद की मान्यता है कि जब पाप अधिक बढ़ता है तब अवतार होते हैं और यह भी मानते हैं कि सत्युग में चारों चरण पुण्य है, त्रेता में तीन चरण पुण्य तथा एक चरण पाप, द्वापर में आधा-आधा पाप-पुण्य और कलियुग में एक चरण पुण्य तथा तीन चरण पाप है। परन्तु दस मुख्य अवतारों में मत्स्य, कच्छप, वराह और नृसिंह चार अवतार सत्युग में होते हैं। वामन, परशुराम और राम तीन अवतार त्रेता में होते हैं। कृष्ण और बलराम द्वापर में तथा केवल एक अवतार कल्कि कलियुग में। इस हिसाब से तो सत्युग चारों चरण पाप से पूर्ण था तभी चार अवतारों की आवश्यकता हुई। त्रेता में तीन चरण पाप था तब तीन अवतारों की आवश्यकता हुई। द्वापर में दो चरण पाप होने से दो अवतार तथा कलियुग में केवल एक चरण पाप होने से एक ही अवतार में काम चल जायेगा।

पाप बढ़ने से अवतार होते हैं—इस हिन्दू-मान्यतानुसार भारत के बाहर इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस, चीन, जर्मनी, जापान आदि में कभी पाप हुआ ही नहीं, तभी तो चौबीसों अवतारों में कोई भारत से बाहर नहीं हुआ। और इतना ही क्या, जितने मुख्य अवतार हैं उत्तरी भारत में हुए; इसलिए विश्व में पाप का महा केन्द्र यह उत्तरी भारत (आर्यावर्त) ही है, किन्तु हिन्दू मान्यता है कि उत्तरी भारत ही धर्म का केन्द्र है। अतएव अवतारवाद अपने आप में एक कल्पना है।

महापुरुषों के प्रति श्रद्धा रखना महान गुण है। परन्तु श्रद्धा का अतिरेक करना पागलपन है। हम महान पुरुषों को अवतार कहकर उन्हें केवल पूजने की वस्तु बना देते हैं और उनके सद्गुणों का आचरण यह कहकर नहीं करते कि हम तो साधारण आदमी हैं। हम ऐसा नहीं कर सकते। वे अवतार थे, भगवान थे, तब ऐसा उच्च काम कर सके। भक्ति के अतिरेक ने कर्म सिद्धांत को खोखला बना दिया है; क्योंकि इनके यहां पापी अजामिल तथा अभक्ष्यभक्षी गिद्ध सब तर जाते हैं जान-अंजान में भगवान की खुशामद करके।

277. प्रश्न—जड़ तो प्रत्यक्ष है; परन्तु चेतन बिना जड़ के प्रत्यक्ष नहीं होता, सो क्यों?

उत्तर—जड़ किसके प्रत्यक्ष हैं? चेतन ही के तो। चेतन न हो तो जड़ को कौन प्रत्यक्ष करे? तुम स्वयं चेतन हो। तुम्हीं तो सबको जानते हो? चेतन इन्द्रियों का विषय तो है नहीं, फिर दूसरे चेतन को तुम किस साधन से जानोगे?

संसार के सभी ज्ञान सापेक्ष हैं। तुम सूर्य के प्रकाश में पृथ्वी और जल को देखते हो। वस्तुओं, पेड़ के पत्तों तथा घास-फूसों को हिलते देख एवं त्वचा में स्पर्श पाकर वायु का अनुभव करते हो। सबको प्रकाशित करनेवाला अग्नि या सूर्य है यह समझकर उसका ज्ञान करते हो। इसी प्रकार किसी शरीर में ज्ञानयुत क्रिया देखकर उसमें चेतन है, यह ज्ञान करते हो।

बिजली बादल, तार और बल्ब से सर्वथा पृथक है; परन्तु बिना उनके प्रकट नहीं होती। इसी प्रकार चेतन मन, इन्द्रिय तथा देह से सर्वथा पृथक है; परन्तु व्यवहार में बिना उनके प्रकट नहीं होता।

278. प्रश्न—अन्त:करण में भरी वासनाएं कैसे निकलें?

उत्तर—विवेकी पुरुषों की सेवा, उपासना, विवेक, वैराग्य और ज्ञान से।

279. प्रश्न—मौत का भय कैसे छूटे?

उत्तर—अपने आपको देह से पृथक अजर, अमर, शुद्ध चेतन समझकर।

280. प्रश्न—कई महात्माओं का कहना है कि जीव शरीर छोड़कर तुरन्त चला जाता है और कर्मानुसार पुनर्देह धारण करता है और कई लोग कहते हैं कि मरे हुए व्यक्ति का दशगात्र होता है; अतएव जीव 12-13 दिन घर में रहकर तत्पश्चात जाता है; सत्य क्या मानें?

उत्तर—निश्चित ही जीव शरीर छोड़कर तुरन्त चला जाता है और देर-सबेर कर्मानुसार योनि में प्रवेश करता है।

दशगात्र की बात तो केवल अंधविश्वास है। हिन्दुओं के मृतकों के जीव 12-13 दिन दशगात्र के नाते रुके रहते हैं, तो मुसलमानों, इसाइयों, पारसियों आदि के जीवों की क्या दशा होती है? अतएव यह केवल कल्पित है कि दशगात्र के नाते जीव रुके रहते हैं।

281. प्रश्न—आप कबीर साहेब के नाम में श्री नहीं लगाते, बल्कि बाद के संतों के नामों में श्री लगाते हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—ईश्वर-ब्रह्म के नाम में कोई श्री नहीं लगाता—जैसे श्री ईश्वर, श्री ब्रह्म आदि, परन्तु राम, कृष्णादि के नाम में लोग श्री लगाते हैं—जैसे श्री राम, श्री कृष्णादि।

मेरी दृष्टि में सद्गुरु कबीर सर्वोच्च हैं; इसलिए उनके नाम में श्री लगाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती; प्रत्युत पीछे के संतों के नाम में श्री लगा देता हूं, यथा श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब आदि। फिर भी सद्गुरु कबीर के नाम में श्री सर्वथा नहीं लगाता हूं या नहीं लगाने का नियम निकालता हूं—ऐसी बात नहीं है।

अनेक जगह मेरे द्वारा भी कबीर साहेब के नाम में श्री लगा है और लगता भी रहेगा।

ध्यान रहे, मैं सद्गुरु कबीर को ईश्वर-ब्रह्म के स्थान पर जगत का रचयिता या प्रेरक आदि नहीं मानता, अन्यथा ऊपर के कथन से कोई मिथ्या भ्रम कर ले। सद्गुरु कबीर एक महामानव एवं महान संत थे। यह भी समझ लो कि मानव से बढ़कर कोई है भी नहीं—न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् (महाभारत, शांतिपर्व 299/20)। जो मनुष्य को जाना वह ब्रह्म को जाना—यो मानुष वेद स वेद ब्रह्म।

सार यही हुआ कि मैं सद्गुरु कबीर को इतनी ऊंचाई पर मानता हूं जिससे अधिक ऊंचा कुछ नहीं हो सकता। अतएव उनके नाम में श्री जैसा साधारण विशेषण कोई बड़े महत्त्व का नहीं समझता, फिर भी श्री वर्जित नहीं है।

282. प्रश्न—मनुष्य शरीर पुण्य संचित से मिलता है, तो वह कौन-सी देह है जहां से पुण्य संचित करके आज मानव की संख्या बढ़ रही है?

उत्तर—मानव शरीर ही कर्म की भूमिका है। यहीं पुण्यों या पाप-कर्मों का संचय होता है। मानव शरीर में तो अन्य खानियों से ऐसे भी जीव आते हैं जिनके वहां के कर्मफल भोग पूरे हो गये हैं; अत: स्वाभाविक अपनी कर्मभूमि मनुष्य देह में आ जाते हैं।

283. प्रश्न—वर्षा आदि में फसल में असंख्य जीव आ जाते हैं, वे कहां से आते हैं?

उत्तर—जैसे वर्षा में बहुत-सा पानी बरसता है, अन्य महीने में सूख जाता है और पता नहीं चलता कि कहां चला गया; परन्तु वह नष्ट नहीं होता। वातावरण में रहता है। इसी प्रकार जीव न तो नष्ट होते हैं न तो नये बनते हैं। वे नित्य संसार में रहते हैं, संयोग पाकर दृश्य रूप में तथा वियोग पाकर अदृश्य रूप में। फिर पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों पर सभी ऋतुएं हर समय बनी

रहती हैं। जीव सर्वत्र गमनागमन किया करते हैं और शरीर धरते-छोड़ते रहते हैं।

284. प्रश्न—फसल में कीटनाशक दवाई का छिड़काव करने से हिंसा है कि नहीं?

उत्तर—किसान जीव-हत्या का लक्ष्य नहीं रखता। वह केवल अपनी फसल की रक्षा चाहता है और करता है। फसल में असंख्य जीव पलते और मरते हैं। किसान न उन्हें पालना चाहता है न मारना।

जहां तक सम्भव हो, कीट पैदा होने के पहले फसल में दवा का छिड़काव कर देना चाहिए। फिर शक्ति चले तक ही बचाया जा सकता है। जो शक्ति के बाहर है उसमें असमर्थता है। फसल की रक्षा करना किसान का कर्तव्य है। किसान के मन में हिंसा करने की भावना नहीं है, तो वह निर्दोष है।

जीव दया पालो सबै, निज शक्ति सामर्थ।
मनसाय क्रिया को फल लहै, बिन मनसाय न अर्थ॥

(विशाल वचनामृत)

वैज्ञानिक इस तथ्य की भी खोज कर रहे हैं कि कीटनाशक दवाई फसल में न छोड़ना पड़े और फसल सुरक्षित रहे। क्योंकि कीटनाशक दवाई अन्न, सब्जी तथा फल को विषाक्त बनाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

* * *

285. प्रश्न—लोग स्त्री को त्यागकर योग साधना करते हैं, यह कहां तक उचित है?

उत्तर—हद तक उचित है। जो योग चाहेगा उसे भोग छोड़ना ही पड़ेगा। मानव जीवन का परम उद्देश्य शांति की प्राप्ति भोग से नहीं, योग से ही सम्भव है। स्त्री हो या पुरुष, जो कल्याण चाहेगा उसे भोग से हटकर योग साधना ही पड़ेगा।

286. प्रश्न—यदि उपरोक्त तथ्य सत्य है तो मनुष्य को अपनी स्त्री के जीवन को समाप्त करने का क्या अधिकार है?

उत्तर—यदि कोई अपनी स्त्री की हत्या करके योग करता है तो यह गलत है, महापाप है। हत्या करना ही जीवन समाप्त करना है। स्त्री का सम्बन्ध छोड़कर विरक्त हो जाना स्त्री का जीवन समाप्त करना नहीं है।

पुरुष स्त्री में आसक्त होकर उसका अहित करता है। कामी पुरुष स्त्री को भी कामाग्नि में झोंककर उसे पूरा जीवन रोगी, शोकी तथा पूरी भंगिनी बनने को

विवश कर देता है। किस कामी पुरुष द्वारा स्त्री का कल्याण हुआ है?

कामी देहासक्त होता है और देहासक्त व्यक्ति सीमित शारीरिक जीवन को सब कुछ मानकर अपने और दूसरे (स्त्री) को अनन्त आत्मिक जीवन से वंचित रखता है, परन्तु जो काम-भोग को त्यागकर शुद्ध ब्रह्मचर्य एवं योग का जीवन व्यतीत करता है वह स्वयं देहाभिमान से ऊपर उठकर अनन्त आत्मिक जीवन में विहार करता है। यदि वह पूर्व विवाहित है तो अपनी पत्नी को भी अनन्त आत्मिक जीवन पाने का अधिकारी बना देता है, यदि वह प्रयत्न करे तो। अतएव त्यागी पुरुष स्त्री के जीवन को समाप्त नहीं करता, किन्तु उसके जीवन को सीमितता से अनंतता की ओर अग्रसर करता है। नीम कीटवत जो विषयों से अलग होना ही दुख मानता है, वह भूला है।

प्रश्न होता है कि यदि सब योगी हो जायें तो सृष्टि कैसे चलेगी? सो भैया, इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं। सृष्टि से सरकार परेशान है। आजकल तो जहां तक सम्भव है भोगी की अपेक्षा योगी एवं त्यागी बनना ही अच्छा है। फिर त्यागी तो विरले होते हैं, भोगियों से ही तो संसार भरा है।

287. प्रश्न—यदि श्रद्धा से भक्ति आती है तो श्रद्धा का उद्गम-स्रोत क्या है?

उत्तर—पवित्र हृदय।

288. प्रश्न—कबीर साहेब का आदेश क्या है?

उत्तर—"सकलो दुर्मति दूर करु, अच्छा जनम बनाव।"

289. प्रश्न—पारख सिद्धान्त पहले से था कि कबीर साहेब से ही निकला?

उत्तर—वर्तमान में उसके सम्यक अन्वेषक कबीर साहेब ही हैं; परन्तु उसका सत्य तत्त्व नित्य है तथा अन्वेषक भी सदैव होते रहते हैं।

290. प्रश्न—भवयान और चौका-आरती क्या है?

उत्तर—वर्तमान युग के परम पारखी, परम वैराग्यवान एवं जीवन्मुक्त पुरुष सद्गुरु विशाल साहेब द्वारा रचित चार ग्रन्थों में से 'भवयान' प्रथम बृहत और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

श्री विशाल साहेब रचित चार ग्रन्थ हैं—भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा और नवनियम। चारों मिलाकर विशालवचनामृत के नाम से जाना जाता है और चारों की श्री प्रेम साहेब द्वारा रचित विस्तृत टीकाएं हैं। इन पंक्तियों के लेखक की भी इन पर टीकाएं हैं।

चौका-आरती किसी कल्पित देव के उपलक्ष्य में की जाने वाली सात्विक पूजा है; परन्तु पारख सिद्धांत में यह नहीं चलता; क्योंकि पारख सिद्धांत मनुष्य के अतिरिक्त किसी देव को नहीं मानता।

291. प्रश्न—जीव और सारशब्द में क्या अन्तर है?

उत्तर—वैसे सामान्यतया देहधारी को जीव कहते हैं, किन्तु जीव का अर्थ जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन सत्ता है जो नित्य एवं अजर, अमर है।

सारशब्द निर्णय वचन को कहते हैं—सारशब्द निर्णय को नामा (पंचग्रन्थी)।

292. प्रश्न—क्या वस्तु के बिना भी नाम पड़ जाते हैं?

उत्तर—हां, जैसे भूत, प्रेत, नाना देवी-देवता, घोघर, भकाऊं आदि की कोई सत्ता नहीं; किन्तु मनुष्यों ने कल्पना करके नाम रखे हैं।

293. प्रश्न—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन—सबकी आशा छूट जाती है, परन्तु देह की आशा नहीं छूटती। इसके छूटने का क्या उपाय है?

उत्तर—स्वरूपज्ञान और स्वरूपस्थिति के अभ्यास से देहासक्ति का सर्वथा अन्त हो जाता है।

294. प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र?

उत्तर—स्वरूपतः स्वतन्त्र है, कर्मवासनावश परतन्त्र है । वासना छोड़ दे तो स्वतन्त्र।

295. प्रश्न—जीव और ईश्वर का स्वरूप क्या है?

उत्तर—जीव ज्ञानमात्र है। जब वह माया-मोह से मुक्त हो जाता है तब वही शिव (ईश्वर) है। यथा—बद्ध दसा में जीव कहि, मोक्ष दसा में शीव

(विश्रामसागर)

296. प्रश्न—मुक्त जीव के पास जब स्थूल देह नहीं रहती तब वह सुख या आनन्द का उपभोग कैसे करता है?

उत्तर—सुख, आनंद आदि की कामना एक दरिद्रता है। आपको भूख न लगी हो तो भोजन में आनंद नहीं आयेगा। जब मुक्त जीव के पास कोई दुख, इच्छा, संकल्प आदि ही नहीं रहेंगे तब उसे सुख या आनंद की आवश्यकता ही क्या है। मोक्षावस्था दुखहीन अवस्था है।

297. प्रश्न—वैराग्य क्या है और वैराग्य तथा ब्रह्मचर्य में क्या अन्तर है?

उत्तर—मोह न होना वैराग्य है, विषयासक्ति न होना ब्रह्मचर्य है। मनसा, वाचा, कर्मणा मैथुन छोड़ देना ब्रह्मचर्य है और निखिल विश्व का राग छोड़ देना वैराग्य है।

298. प्रश्न—मानव का कर्तव्य क्या है?

उत्तर—निज-पर कल्याण करना। मन संतुलित एवं शांत होना ही कल्याण है।

299. प्रश्न—आदित्य ब्रह्मचर्य, ऊर्ध्वरेता तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी किसे कहते हैं?

उत्तर—शुद्ध ब्रह्मचारी को आदित्य ब्रह्मचारी कहते हैं, वीर्यपात न होने देने वाले को ऊर्ध्वरेता कहते हैं और उपनयन (यज्ञोपवीत) से लेकर मृत्यु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुकुल में निवास करने वाले को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। वस्तुत: नैष्ठिक कहते हैं निश्चयात्मक स्थिर एवं पारगत को।

तुम पहले कैसे रहे इसकी चिन्ता छोड़ दो। आज से शुद्ध ब्रह्मचारी बन जाओ।

300. प्रश्न—जड़ से जड़ तत्त्व का निर्माण होता है या जीव का? फिर देह में जीव कैसा?

उत्तर—जड़ से जड़ तत्त्व का निर्माण नहीं होता, अपितु जड़ तत्त्व नित्य हैं। उन जड़ तत्त्वों से जड़ कार्य-पदार्थों का निर्माण होता है। जीव तो जड़ से सर्वथा पृथक नित्य चेतन है।

301. प्रश्न—कर्म का चेतन जीव पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर—वासना प्रभाव। वासना को जीतना चाहिए। बुरे कर्म छोड़कर अच्छे कर्म करे, परन्तु उसे भी अहंकार रहित होकर।

302. प्रश्न—अपने से बड़ों की बन्दगी करते समय तीन बार सिर झुकाते हैं, दो बार या चार बार क्यों नहीं?

उत्तर—भारतीय परम्परा में तीन का ज्यादा महत्त्व है। तीनों गुणों एवं मन, वाणी, कर्म—तीनों पर विजय पाने के लिए या तीनों तापों से मुक्त होने के लिए त्रिबार बन्दगी।

303. प्रश्न—मन की कल्पनाएं मिथ्या हैं, मुक्ति भी मन की कल्पना है, तो क्या वह भी मिथ्या नहीं हुई?

उत्तर—मुक्ति मन की कल्पना नहीं है; किन्तु कल्पनाओं से छूट जाना मुक्ति है। मैं के रूप में विराजमान यह स्वस्वरूप चेतन स्वभावत: असंग है। वह जड़ के सम्बन्ध में अपने आपको संयुक्त मान लिया है और यह भ्रम कर लिया है कि शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थ मेरे हैं; इसलिए वह मान्यता के बंधन में बंधा है। वह जब भलीभांति समझ लेता है कि मेरा कुछ नहीं है, मैं असंग एवं निराधार हूं, तब वह मुक्त हो जाता है। चेतन मुक्त स्वरूप है और उसकी परम सत्ता है। अतएव मुक्ति मन की कल्पना नहीं, अपितु यथार्थ सत्ता है।

304. प्रश्न—विदेहमुक्ति में जब चेतन सत्ता मात्र रहता है और यह भी नहीं जान सकता कि मैं मुक्त होकर सुख-चैन से हूं, तो ऐसी मुक्ति से क्या लाभ?

उत्तर—विदेह मुक्ति में जीव के साथ देह न होने से वहां इन्द्रिय-मन आदि का सर्वथा अभाव होता है, और इन्द्रिय-मनादि का अभाव होने से विषयों को जानने-जनाने का कोई कारण ही नहीं होता; अतएव विदेह मोक्ष में प्रपंचों का सर्वथा उपशमन है। वह सदा के लिए अनंत शांत है।

मनुष्य अत्यन्त विषयासक्त है। वह मन-इन्द्रियों द्वारा हर समय पांचों विषयरूप दृश्यों को ग्रहण करते रहने में सुख मानता है, यद्यपि वही दुख है। वह अविवेकवश मुक्ति में भी दृश्यों को नहीं छोड़ना चाहता। परंतु दृश्यों का ग्रहण मुक्ति नहीं, अपितु बन्धन है।

भूख लगने पर दुख होता है और भोजन मिलने पर सुख, रोग लगने पर पीड़ा होती है और जब उस रोग से छुटकारा हो जाता है तब आनंद लगता है। यदि रोग न लगे तो तज्जनित आनंद भी नहीं। विदेह मुक्ति सर्वथा दुखहीन अवस्था है, इसलिए वहां सुख एवं आनन्द की भी आवश्यकता नहीं।

सुख की लालसा एक दरिद्रता है। वस्तुत: दरिद्र आदमी ही कुछ चाहता है। सच तो यह है कि जो कुछ चाहता है वही दरिद्र है। विदेहमुक्ति जीव की सम्पन्न दशा एवं पूर्णता है। अतएव वहां सुख-दुख, क्लेश-आनंद, बेचैनी-चैन—सबका अभाव है। विदेहमुक्ति ऐसी शाश्वत शांति है जिसका वर्णन वाणी से असंभव है।

305. प्रश्न—जड़ प्रकृति का विस्तार निस्सीम है। इस निस्सीम प्रकृति से निकलकर मुक्त जीव कैसे और कहां स्थित हो सकता है?

उत्तर—इस चेतन जीव का जड़ प्रकृति से सम्बन्ध केवल मन-इन्द्रियों द्वारा है। उसके अभाव हो जाने पर चारों ओर प्रकृति के जाल बिछे रहने पर भी उसका और जीव का सम्बन्ध नहीं होता।

अज्ञानदशा और प्रकृति के सम्बन्ध में रहते हुए भी जब देहधारी जीव गाढ़ी निद्रा में जाता है तब उसका प्रकृति का सम्बन्ध नहीं-जैसा हो जाता है। गाढ़ी निद्रा में भी चेतन की सत्ता है ही, तभी तो पुकारने पर जागकर बोलता है कि मैं हूं; परन्तु गाढ़ी नींद में किसी का सम्बन्ध नहीं रहता।

मन, वाणी, शरीर और वासना का जब अन्त हो जाता है, तब जीव का सम्बन्ध सबसे विच्छिन्न हो जाता है। उसका प्रकृति से किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता। प्रकृति का जाल सर्वत्र बना रहने पर भी मुक्त चेतन सबसे सर्वथा असंग एवं निराधार है।

जीव का जड़ से सम्बन्ध स्मरण मात्र है। विदेह मोक्ष में स्मरण तथा उनके साधनों का सर्वथा अन्त होने से उसका जड़ से सम्बन्ध नहीं रहता।

306. प्रश्न—जीव मुक्तावस्था में निराधार एवं असंग रहता है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है? कम से कम अनुमान प्रमाण तो होना ही चाहिए।

उत्तर—जड़ दृश्य क्रियाशील रहते हुए उसकी सत्ता नित्य है और उस जड़ दृश्य का जो द्रष्टा है, जो मैं के रूप में ज्ञानतत्त्व है, उसकी भी सत्ता नित्य है।

मान लो, किसी की अवस्था 90 वर्ष की है, तो वह अनुभव करता है कि मैं वही हूं जो 80 वर्ष के पहले था। हम लोग भी अपने को वही अनुभव करते हैं जो 30-40 वर्ष के पहले थे। जो अपनी ज्ञानवृत्ति से जड़-प्रकृति में हलचल मचा रखा है, क्या उसकी सत्ता समाप्त हो जायेगी? कदापि नहीं।

वासना-वश जीव प्रत्यक्ष ही जन्मांतरों में भटकता है। जो देह धरता है वही उसे छोड़ता है और जो देह छोड़ता है वही देह धरता है। वही जीव जब मनुष्य देह रहते-रहते वासनाओं से मुक्त हो जाता है तब वह पुनः देह में नहीं आता। देह में न आने मात्र से उसकी सत्ता मिट नहीं सकती। विद्युत तार और बल्ब होने से प्रकट होती है और जब तार तथा बल्ब का सम्बन्ध नहीं रहता तब वह प्रकट नहीं होती; परन्तु इससे उसकी सत्ता मिट नहीं जाती।

चेतन जड़ का परिणाम नहीं है। चेतन की जड़ से सर्वथा पृथक नित्य सत्ता है। वह वासनावश जन्मांतरों में भटकता है और वासना त्याग हो जाने पर सत्ता मात्र रह जाता है। विदेह मोक्ष की सत्ता में विवेक ही महा प्रमाण है।

* * *

307. प्रश्न—अपनी मेहनत की कमाई से अपना निर्वाह लेते हुए मोक्ष साधना करना अच्छा है कि प्रारब्ध-बल पर विचरते हुए मोक्ष साधना करना अच्छा है?

उत्तर—दोनों अच्छे हैं। वस्तुतः अपनी मेहनत की कमाई पर अपना निर्वाह लेते हुए साधना करना चाहिए और इसी स्थिति में ही अपने को साधना में खूब मांज लेना चाहिए। जब वैराग्य की प्रचण्डता होती है तब अपने आप निवृत्ति मार्ग में व्यक्ति अग्रसर हो जाता है। घर-गृहस्थी छोड़कर सच्ची वैराग्य दशा में विचरने वाले संतों द्वारा लोकमंगल का बहुत बड़ा कार्य होता है और लोक द्वारा उनके शरीर-निर्वाह का कार्य सम्पादित होता है।

अन्न, कपड़ा, यन्त्र आदि जीवन धारणोपयोगी समस्त वस्तुओं का उत्पादन प्रत्येक व्यक्ति नहीं करता; परन्तु प्रत्येक व्यक्ति जीवन धारणोपयोगी समस्त वस्तुओं के उपभोग करने का इसलिए अधिकारी है, क्योंकि वह किसी-न-किसी प्रकार अपने कर्मों द्वारा समाज की प्रगति में अपना योगदान करता है। जैसे किसान अन्न उपजाकर, कारखाने वाले कोई कपड़ा, कोई यंत्रादि बनाकर, पुलिस देश की आंतरिक रक्षा करके, सेना देश की सीमा रक्षा करके, कर्मचारी तथा वकील अन्य व्यवस्था द्वारा जनता की रक्षा करके, डाक्टर जनता का स्वास्थ्य संरक्षण करके देश का काम करते हैं।

विचार करके देखा जाये तो संतों का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। समाज और देश को सद्बुद्धि का प्रकाश देना संतों का काम है।

यदि सारथी मदिरा पीकर रथ हांकता है तो निश्चित ही उसकी लगाम ढीली होगी तथा फलस्वरूप घोड़े रथ को गड्ढे में ले जायेंगे। शरीर रथ है, इंद्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है और बुद्धि सारथी है। यदि व्यक्ति की बुद्धि ही भ्रष्ट हो तो पूरा जीवन डूब जायेगा। मैं पूछता हूं कि बुद्धि के सुधार के लिए कौन-सी दुकान है? सरकार की ओर से कौन-सी संस्था है जहां मनुष्यों की बुद्धि सुधारी जाती है? वह संस्था निःशुल्क संतों की है जो मनुष्य की बुद्धि सुधारती है। सरकार दण्ड दे-देकर दुष्ट को सज्जन नहीं बना पाती; परन्तु संतजन अपने उत्तम व्यवहार तथा सदुपदेश से दुष्ट को सज्जन और दुराचारी को सदाचारी बना देते हैं। परमशांति एवं कल्याण की प्राप्ति का द्वार विवेकी संतों की संगत ही में खुलता है।

अतएव जिन संतों द्वारा समाज का इतना बड़ा कल्याण होता है क्या वे समाज द्वारा शरीर-निर्वाह पाने के भी अधिकारी नहीं हैं? वस्तुतः संत अपनी ही कमाई खाते हैं। वे जितना खाते हैं उसके असंख्य गुणा समाज को देते हैं।

308. प्रश्न—जीव देह के आधार में है या जीव के आधार में देह है?

उत्तर—जीव के आधार में देह है। जीव के निकल जाने पर देह बेकार हो जाती है। वैसे कर्म-वासना वश ही जीव और देह का सम्बन्ध है, उसके समाप्त होते ही जीव निराधार एवं असंग रह जाता है।

309. प्रश्न—जीव और देह का सम्बन्ध कैसे छूटेगा?

उत्तर—सम्बन्ध अज्ञान तथा मोह मात्र है। पुरुषार्थ द्वारा उसके अभाव होने पर सम्बन्ध कट जायेगा। जब जीव प्रकृति सम्बन्ध को स्वप्नवत, सारहीन एवं दुखपूर्ण समझकर अपने पूर्णकाम पूर्णतृप्त स्वरूप को पहचान लेगा तब वह प्रकृति के जाल से छूट जायेगा।

310. प्रश्न—जीव अक्रिय होने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—वह इन्द्रिय-मन का सम्बन्ध लेकर ही कुछ क्रिया करता है। आंख रहते हुए भी यदि उसे बन्द कर ले तो वह नहीं देखता, कान बन्द कर ले तो नहीं सुनता। सुषुप्ति अवस्था में मन-इन्द्रियों के ठप हो जाने से जीव में कोई क्रिया नहीं होती। अतएव देह-इन्द्रिय संघात में रहकर ही जीव क्रिया करता है और इनके सम्बन्ध से सर्वथा छूटकर अक्रिय तथा शांत है।

311. प्रश्न—जड़ और चेतन दोनों जब सर्वथा भिन्न हैं तो सम्बन्ध क्यों है?

उत्तर—भिन्न का ही सम्बन्ध होता है, एक में सम्बन्ध नहीं हो सकता। जड़-चेतन का सम्बन्ध अनादि है। जैसे चावल के साथ ही छिलका (भूसी) होने पर भी छिलका उतार देने पर चावल नहीं उगता, इसी प्रकार जीव और जड़ का सम्बन्ध अनादि होते हुए भी अपने आप को जड़ से पृथक समझकर जड़ से निष्काम हो जाने पर जीव पुनः जन्म धारण नहीं करता।

312. प्रश्न—जीव के कल्याण के लिए मन की क्या स्थिति होनी चाहिए?

उत्तर—अनासक्त।

313. प्रश्न—सांख्ययोग और कर्मयोग में क्या अन्तर है?

उत्तर—निर्वाह के अतिरिक्त मन, वाणी, शरीर से कर्मों का त्याग—सांख्ययोग है तथा अहंकार-कामना त्यागकर लोकमंगल के लिए कर्म करते रहना—कर्मयोग है।

314. प्रश्न—हम अच्छे कर्म करते हुए भी दुखी हैं, दूसरे बुरे कर्म करके भी सुखी हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—आप यदि दुखी हैं, तो निश्चित है कि आपके सब कर्म अच्छे नहीं हैं। पूर्ण अच्छे कर्म में दुख होता ही नहीं। यदि कोई प्रारब्धकृत दुख भयंकर शरीर व्याधि आदि है, तो वह पूर्व जन्म के अपने बुरे कर्म के फल हैं।

कोई बुरा कर्म करके सुखी नहीं हो सकता, भले ही वह पूर्व जन्मों के सौभाग्य से या आज के लन्दफन्द से धनी हो; परन्तु बुरा कर्म करने से उसका

चित्त निरन्तर जलता ही रहेगा।

315. प्रश्न—साहेब बन्दगी का क्या अर्थ है?

उत्तर—स्वामी! आपकी वन्दना है। यह एक शिष्टाचार है।

316. प्रश्न—स्वरूपस्थिति क्या है? कैसे करें?

उत्तर—जीव का अपने आप शांत हो जाना स्वरूपस्थिति है। सेवा, स्वाध्याय तथा साधना करने से स्वरूपस्थिति होती है। पहले खूब सेवा और स्वाध्याय करो।

317. प्रश्न—क्या कारण का भी कारण होता है?

उत्तर—कारण कारणरहित होता है। ''मूले मूलाभावादमूलं मूलम्'' (सांख्य-दर्शन 1/69)। अर्थात मूल के मूल का अभाव होने से मूल अमूल होता है।

318. प्रश्न—पारख सिद्धान्त मनुष्य के अतिरिक्त किसी देवता को नहीं मानता; तो इस सिद्धान्त में संध्यापाठ किसलिए किया जाता है?

उत्तर—संध्यापाठ में प्रत्यक्ष देव संत-सद्गुरु की वन्दना, उनके शुभ-गुणों का वर्णन एवं आध्यात्मिक ज्ञान है। इन सब का मन पर प्रभाव हो, इसलिए संध्यापाठ किया जाता है।

319. प्रश्न—मानव का अधिकार क्या है?

उत्तर—स्वतन्त्रता, स्ववशता; और यह मिलती है मन-इन्द्रियों एवं इच्छाओं को जीत लेने पर।

320. प्रश्न—विपत्ति के समय कैसे निपटें?

उत्तर—धैर्य से।

321. प्रश्न—हानि-लाभ क्या है?

उत्तर—बन्धनों में बंधे रहना हानि है, उनसे छूट जाना लाभ है।

322. प्रश्न—पहले पाप कर लिया, फिर ज्ञान हुआ। अब उस पाप से कैसे उद्धार हो?

उत्तर—पुन: पाप न करने से।

323. प्रश्न—मनुष्य किसके विवश है और वह उससे कैसे छूटे?

उत्तर—मनुष्य विषयों की वासनाओं के विवश है। यह जीव विषय-वासना में ही बंधा है। इससे छूटने का रास्ता है विवेकी सद्गुरु की भक्ति, सेवा, सत्संग, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, विवेक, वैराग्यादि का अवधारण।

सुख की इच्छा में व्यक्ति बंधा है और विवेक-वैराग्य द्वारा उससे छूट सकता है।

324. प्रश्न—हम अपने दैनिक जीवन में अच्छा-बुरा जो कुछ करते हैं, वह ईश्वर की इच्छा से होता है या हमारे मन की इच्छा से या पूर्वजन्मों के कर्मों के विधानानुसार?

उत्तर—आपके मन की इच्छा के अनुसार। पूर्व जन्मों के भले-बुरे कर्मों के तीव्र संस्कार हमें भले और बुरे की ओर प्रेरते अवश्य हैं; परन्तु वे हमें विवश करके भले या बुरे कर्म करा नहीं सकते। कर्म करने में हम आज स्वतन्त्र हैं। उसमें पूर्व कर्म-संस्कार सहायक मात्र हैं, सर्वेसर्वा नहीं। संगत, साहित्य और चिंतन से तदनुसार बुद्धि बनती है और जैसी बुद्धि वैसे कर्म होते हैं। अतएव हमें सत्संग करना चाहिए, सद्ग्रंथ पढ़ना चाहिए और मन में अच्छे विचार रखने चाहिए, जिससे कर्म अच्छे बनें; क्योंकि अच्छे कर्म करनेवाला ही सुखी होता है।

*　　　　*　　　　*

325. प्रश्न—देवदत्त ने बुद्ध से 5 बातें स्वीकार करने की प्रार्थना की थी, उन्होंने स्वीकार नहीं किया, इसलिए वह बुद्ध का शत्रु बन गया था। तो वे पांच बातें कौन हैं?

उत्तर—देवदत्त महात्मा बुद्ध की गद्दी चाहता था। उसमें असफल होने से उसने संघ में फूट डालने के लिए नाना प्रकार के षड्यंत्र रचा। उनमें एक षड्यंत्र यह भी था कि बुद्ध को ऐसे नियम बनाने के लिए विवश करें जो व्यवहार में निभ न सकें और पीछे बुद्ध तथा संघ को बदनाम किया जाये और यदि नियम न बनावें तो भी बदनाम किया जाये। विनय पिटक के चुल्लवग्ग—संघ भेदक स्कंध—में इसका विवरण है। देवदत्त ने जो पांच नियम बुद्ध से मनवाना चाहा था वे ये हैं—

(1) भिक्षु (बौद्ध साधु) जीवनपर्यन्त वन में निवास करे, गांव में बसने वाले को दोषी माना जाये।

(2) भिक्षु जीवनपर्यन्त मधुकरी (टुकड़े) मांगकर खाये, निमन्त्रण पर भोजन करने वाला दोषी माना जाये।

(3) भिक्षु जीवनपर्यन्त फेंके हुए चीथड़ों को सिलकर पहने, जो गृहस्थ द्वारा दिये हुए नये वस्त्र पहने वह दोषी माना जाये।

(4) भिक्षु जीवनपर्यन्त वृक्ष के नीचे रहे, जो छत के नीचे रहे वह दोषी माना जाये।

(5) भिक्षु जीवनपर्यन्त मछली-मांस खाने वाला न हो, जो मछली-मांस खाये वह दोषी माना जायेगा।

बुद्ध ने इन नियमों को अस्वीकार कर दिया। उक्त नियमों में पांचवां मानने योग्य था, शेष अस्वाभाविक थे।

326. प्रश्न—मुक्ति के लिए क्या ज्ञान के साथ ध्यान आवश्यक है? क्या आप ध्यान करना मानते हैं?

उत्तर—ज्ञान के साथ ध्यान आवश्यक है। ज्ञान कहते हैं अपने अविनाशी चेतन स्वरूप को सर्व प्राकृतिक वस्तुओं से पृथक समझ लेना और ध्यान कहते हैं नित्य कुछ समय के लिए स्थिर आसन से बैठकर संकल्पों को एकदम शून्य कर देना। अन्ततः स्वरूप-विचार में निरन्तर निमग्न रहना ध्यान है।

शब्द, ज्योति, नाद, बिन्दु या किसी महापुरुष का स्मरण करना, उसमें मन बांधना यह पहले दर्जे का ध्यान है। इससे मन में एकाग्रता आने की आदत पड़ती है। सारे संकल्पों का द्रष्टा बनकर मन को एकदम शून्य कर देना—अंतिम ध्यान है। जैसा कि सांख्यशास्त्र के रचयिता कपिल महाराज ने कहा है—"ध्यानं निर्विषयं मनः"—मन का संकल्पहीनत्व ध्यान है।

हम लोग मन को एकाग्र करने के लिए पहले वैराग्यवान संत-पुरुष का ध्यान करते हैं। इसके आगे साधना की तीन श्रेणियां मानते हैं—विवेक, द्रष्टा और स्थिति। शरीरादि से अपने चेतन स्वरूप को विचार द्वारा भिन्न करना विवेक है, संकल्पों को देख-देखकर उन्हें छोड़ते रहना द्रष्टा होना है और संकल्पों का एकदम अभाव होकर शांत हो जाना स्थिति है। यही अन्तिम ध्यान है।

327. प्रश्न—पारख और पारखी में क्या अन्तर है?

उत्तर—पारख कहते हैं ज्ञान को जो एक गुण है और पारखी कहते हैं चेतन को जो एक व्यक्ति (द्रव्य) है। गुण और गुणी अभिन्न होता है; अतएव पारख और पारखी एक है।

328. प्रश्न—प्रारब्ध एवं संस्कार में क्या अन्तर है?

उत्तर—सुख-दुख भोग के लिए प्रस्तुत शरीर प्रारब्ध है और मन की अच्छी-बुरी वासनाएं संस्कार हैं। प्रारब्ध भोग प्रायः अदृश्य होता है। कोई नहीं

जानता कि एक स्वस्थ मनुष्य कब भयंकर व्याधि से ग्रसित हो जायेगा, उसके स्वजन एवं पदार्थों का उससे वियोग हो जायेगा और यह भी कोई नहीं जानता कि प्रतिकूल परिस्थिति कब चली जायेगी। कुछ ऐसे सुख-दुख हैं जो अपने पूर्वजन्मों के कर्मफलों में मनुष्य पर बरबस आते हैं, वही प्रारब्ध है।

जहां तक संस्कारों का प्रश्न है, वे दृश्य हैं। अच्छे-बुरे जो विचार मन में उठते हैं उन्हें सब जानते हैं। अतएव मनुष्य बुरे संस्कारों, वासनाओं एवं विचारों को मिटाकर अच्छे संस्कारों, वासनाओं एवं विचारों को बढ़ा सकता है।

329. प्रश्न—मन के दुर्विचार कैसे दूर किये जायें?

उत्तर—आज-कल में एक दिन शरीर का अन्त निश्चित है। इस सत्यता से आंखे नहीं मीची जा सकतीं। और शरीर के नाश के साथ आज की सारी भौतिक उपलब्धियां शून्य हो जायेंगी। यह मौत की याद मनुष्य के मन को निर्मल बनाती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति का अपना असली स्वरूप शुद्ध चेतन है। उसमें कामादि विकार नहीं हैं। सारे विकार अविवेकजनित हैं। अतएव अपने शुद्ध चेतन स्वरूप का स्मरण और शारीरिक मौत की याद रखने से मन की निर्मलता होती है।

330. प्रश्न—क्रोध को जीतना चाहता हूं, परन्तु वह समय पर प्रकट हो जाता है। उसे कैसे जीतूं?

उत्तर—जो व्यक्ति जितना अहंकार और कामना के वशीभूत होगा वह उतना ही क्रोध प्रकट करेगा। मन की प्रतिकूलता न सह पाने से क्रोध आता है और अहंकारी आदमी ही सहना नहीं चाहता।

क्रोध करने से खून खौलता है, बुद्धि मारी जाती है और मनुष्य न करने योग्य काम करता तथा न कहने योग्य शब्द कहता है। क्रोध से नुकसान के सिवा कुछ नहीं है। अत: नित्य प्रात: उठकर बिस्तर पर ही पांच मिनट तक दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि आज पूरा दिन क्रोध नहीं आने दूंगा और सोने के पूर्व बिस्तर पर पूरे दिन पर नजर डालकर विचारो कि कब क्रोध आया और उसके कारण पर विचार करके क्रोध पर ग्लानि करो और क्रोध न होने देने का संकल्प करो। यह क्रम नित्य जागने के बाद तथा सोने के पूर्व दोहराओ और लगातार महीनों करते चलो, देखोगे क्रोध बहुत कम हो जायेगा और कुछ दिनों में उस पर पूर्ण विजय मिल जायेगी।

331. प्रश्न—मैं बच्चों को पढ़ाता हूं। उन्हें समय-समय पर गाली एवं ताड़ना देना पड़ता है। ऐसा कहां तक उचित है? यदि अनुचित है तो मुझे क्या रास्ता है?

उत्तर—अध्यापक को बच्चों को गाली देना पड़े, यह तो मेरी समझ के बाहर है। किसी को भी गाली देना अपने ही हीन संस्कार, गलत आदत एवं असभ्यता के लक्षण हैं। अतएव शपथ ग्रहण कर लो कि तुम आज से किसी को भी गाली नहीं दोगे। गाली तो कोई लेता नहीं, वह देनेवाले को ही लौटकर पड़ती है। अध्यापक के मुख से तो गाली कभी निकलनी ही नहीं चाहिए। अध्यापक का काम बच्चों को केवल अक्षर ही पढ़ाना नहीं, अपितु उनमें उत्तम संस्कार डालना भी है। जो अध्यापक शराब, सिगरेट, बीड़ी पीता; तम्बाकू-पान खाता, गाली बकता, मैला-कुचैला रहता, झूठ बोलता तथा ऐसे अन्य गलत आचरण करता है उससे बच्चे क्या सीखेंगे; अतएव अध्यापकों को बहुत सुसभ्य होना चाहिए।

रहा ताड़ना देना, सो केवल मारने-पीटने से बच्चों को विद्या नहीं आती, प्रत्युत इससे उनका दिल दब जाता है और वे पतित हो जाते हैं। हां, शासन बनाये रखने के लिए कुछ सन्न-फन्न अवश्य चाहिए। बच्चों को निर्दयतापूर्वक पीटना बहुत गलत है। डांट-गांस कर सहारे से काम लेना चाहिए।

332. प्रश्न—प्राण, जीव, आत्मा में अन्तर है या नहीं? यदि अन्तर है तो किस प्रकार?

उत्तर—प्राण तो वायुतत्त्व का अंश एवं जड़ है। जीव चेतन है, जड़ से पृथक है। चेतन ही आत्मा है। आत्मा कहते हैं खुद को। यह जो अहं पदार्थ है यह चेतन है, यही आत्मा है, अपना है, अपना स्वरूप है, देहोपाधि युक्त प्राणधारियों को भी जीव कहा जाता है, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीटादि; और देहरहित शुद्ध चेतन को भी जीव कहा जाता है। अतएव जीव का निरुपाधि एवं वास्तविक स्वरूप चेतन है। वह मैं ही हूं, वही आत्मा है। अत: जीव, चेतन, आत्मा 'मैं' के ही पर्याय हैं।

*　　　　*　　　　*

333. प्रश्न—सद्गुरु कबीर का सिद्धान्त एक है—'पारख'। तो कबीरपन्थी लोग नाना मत क्यों स्थापित करते हैं? अनेक तरफ खींचने से क्या जनमानस की श्रद्धा इस ओर से कम नहीं हो जायेगी?

उत्तर—निश्चित ही सद्गुरु कबीर का सिद्धान्त पारख है। वे कहते हैं—''भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहि लखाई। कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सब की भाई''॥ बीजक, शब्द 115॥ ''पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार''॥ बीजक, साखी 82॥ ''पारख बिना बिनाश है, कर विचार होहु भीन''॥ बीजक, साखी 159॥ पारख की परिभाषा देते हुए सद्गुरु

श्री पूरण साहेब कहते हैं—"जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप। तहाँ होय रहु स्थीर तू, नहि झांईं भ्रम कूप॥" अर्थात जो सबको परखता, जानता है वह चेतन स्वरूप ही पारख है। अत: अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ, किसी प्रकार मन की कल्पना, भास, अध्यास में न पड़ो।

कबीरपंथी क्या, मानवमात्र का कल्याण पारखबोध में ही है, फिर कबीरपंथियों को तो एकजुट से पारख सिद्धान्त का अवधारण एवं प्रचारण करना ही चाहिए। परन्तु संसार के विभिन्न लोगों के संस्कार, गुण, कर्म, योग्यताएं एक सदृश नहीं हैं। इस विभिन्नतापूर्ण संसार में सब बातों में सर्वथा एकता असंभव है।

किसी महान पुरुष की छत्रछाया में हर प्रकार के लोग आ जाते हैं। सद्‌गुरु कबीर के पंथ में भी विविध संस्कारों वाले व्यक्ति आये और उन सबको एक-जैसी बात नहीं पच सकी और वे नाना मत खड़ा कर दिये।

वैदिक होने के लिए ईशादि एकादश उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र—प्रस्थानत्रयी एवं वेदांत को मानना और उन पर टीका करना आवश्यक है। वैसे वेदांत के नाम से अद्वैत ब्रह्मवाद ही जाना जाता है जो स्वामी शंकराचार्य के प्रस्थानत्रयी भाष्य से समर्थित है। परन्तु उसी प्रस्थानत्रयी पर विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत परक अनेक भाष्य लिखे गये और एक मत के द्वारा दूसरे मत वालों को राक्षस का अवतार तक बताया गया। जैसे प्रसिद्ध वैष्णव माध्वाचार्य के गृहस्थ शिष्य त्रिविक्रम के पुत्र नारायण ने 'मणिमंजरी' तथा 'मध्यविजय' में शंकराचार्य को महाभारतोक्त मणिमान नामक दैत्य का अवतार कहा।

उपनिषदों का समन्वय करने के लिए गीता रची गयी तो उसमें अनेक मत खड़े हो गये। फिर ब्रह्मसूत्र रचा गया तो उसमें भी अनेक मत खड़े किये गये। इसी प्रकार सद्‌गुरु कबीर द्वारा पारख सिद्धांत प्रतिपादन के लिए बीजक रचा गया, तो उसमें अनेक मत खड़े हो गये।

तुम लिखते हो "अनेक ओर खींचने से क्या जनमानस की श्रद्धा इस ओर से कम नहीं हो जायेगी।" तुम इस प्रकार क्यों नहीं सोचते कि यदि कबीरपंथ में पारख सिद्धांत ही होता तो इस पंथ में थोड़े बौद्धिक स्तर के विचारक ही आ पाते; परन्तु इसमें अनेक मत होने से एवं सद्‌गुरु कबीर की वाणी सर्वग्राही होने से महान सद्‌गुरु कबीर के पंथ में सभी संस्कार वाले संतोषपूर्ण आश्वासन पाकर अपने को ही कबीर का सच्चा अनुयायी समझते हैं। तो इसमें श्रद्धा घटने की अपेक्षा बढ़ती ही दिखती है। अनेक विचार, संस्कार एवं मत को धारण करने वाले कबीरपंथियों को एक जगह देखकर हमारे मन में तो श्रद्धा

का ही उभाड़ होता है। सर्वदर्शन संग्रह के रचयिता माध्वाचार्य की निम्न पंक्ति तुम याद कर लो—''माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न संजायते?'' अर्थात अनेक रंगों के फूलों की माला किसके मन को नहीं अच्छी लगती!

334. प्रश्न—एक तरफ लिखा मिलता है ''अनइच्छा जो कुछ मिलै, सो भोजन करि लेन।'' दूसरी तरफ दूसरे ग्रंथ में लिखा मिलता है ''आमिन को अज्ञा तब दीन्हा। नाना व्यंजन तुरतहिं कीन्हा॥'' यह विरोधाभास क्यों?

उत्तर—पहली बात वैराग्यपरक है। वैराग्यवान सहज प्राप्त शुद्ध और स्वास्थ्यकर देखकर ग्रहण करते हैं। इच्छा नहीं करते कि अमुक वस्तु मिले। दूसरी बात भक्तिपरक है। गुरु ने सेवक को आज्ञा दी कि वह भोजन पकावे। अत: कोई विरोध नहीं है।

335. प्रश्न—''टूका में से टूक दे, चीर माहि सो चीर। देत न साधू सकुचिये, यों कथि कहहिं कबीर।'' तो क्या गृहस्थ के पुराने कपड़े साधु पहनें?

उत्तर—यहां का अभिप्राय है कि गृहस्थ लोग स्वयं जिस स्थिति में हों उसी में से काटकपट कर संतसेवा करते रहें। कोई पुराना कपड़ा या जूठी रोटी देने की बात नहीं है।

336. प्रश्न—काम, आलस्य और अहंकार कैसे दूर हों?

उत्तर—स्वाध्याय, सत्संग, सद्विवेक होने पर जब यह बात समझ में आयेगी कि विषयसेवन करना अपने आप को खोना है तब धीरे-धीरे काम पर विजय हो जायेगी। अहंकार तब मिटता है जब यह समझा जाता है कि अपना स्वरूप देहादि से सर्वथा पृथक है। सारी माया देह के साथ मिट जायेगी।

आलस्य तन-मन का पाप है, यह समझकर उसे त्यागो और कर्मशील बनो।

337. प्रश्न—सभी अवतार तथा महापुरुष उत्तरीभारत या उत्तर प्रदेश में ही क्यों होते हैं? इधर ही अधिक तीर्थस्थल भी हैं—ऐसा क्यों?

उत्तर—यदि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी हैं तो निश्चित ही वे उत्तरी भारत के निवासी थे और यदि वे बाहर से आये तो भी उत्तरी भारत में ही आकर बसे। भारत में आर्य लोग शरीर से गोरे और बली, ऊंचे-पूरे, मेधासम्पन्न, मनोबली और विद्या-बुद्धि सम्पन्न थे। वे सिंध, पंजाब, दिल्ली से लेकर पूरे उत्तरी भारत में फैले थे। उन्हीं के रचे वेद, उपनिषद्, शास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध और जैनों के अपार ग्रंथ हैं। ये ही लोग पीछे

भारत में यत्र-तत्र फैल गये थे। विदेश से जितने हमलावर आये प्राय: पश्चिम-उत्तर से होकर उत्तरी भारत में ही आये। इसलिए यहां अनेक संस्कार, विद्या, बुद्धि और कलाओं से सम्पन्न जातियों का समागम हुआ। आर्य, शक, हूण, यवन, अंग्रेज सबने अपने बिस्तर उत्तरी भारत में खोले। अतएव यहां अनेक उथल-पुथल हुए। अनेक संस्कृतियों के आदान-प्रदान हुए। फिर इधर अच्छे-अच्छे पुरुषों, संतों, विद्वानों का जन्म होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, कबीर, तुलसी आदि यहां हुए।

जिनमें मनोबल, शरीरबल, बुद्धिबल होते हैं, वे जिधर बढ़ना चाहते हैं उधर बढ़ जाते हैं। इसीलिए इधर चोर-डाकू भी बड़े-बड़े हुए, शूरवीर भी बड़े-बड़े हुए, विद्वान-संत भी बड़े-बड़े हुए और माने गये अवतार भी हुए। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि भारत के अन्य तरफ शूरवीर, विद्वान-संत नहीं हुए। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, टैगोर, अरविन्द अनेक महापुरुष बंगाल में हुए। बंगाल उत्तर प्रदेश नहीं तो उत्तरी भारत अवश्य है, तो दक्षिणी भारत में शंकराचार्य आदि, महाराष्ट्र में नामदेव आदि, गुजरात में गांधी, दयानन्द आदि हुए।

भारत के बाहर जरथुस्त्र, कन्फ्यूशियस, लाओत्ज़े, सुकरात, मूसा, ईसा, मुहम्मद कितने नाम लिए जायें अनेक महापुरुष हुए हैं। आधुनिक बड़े-बड़े वैज्ञानिक और साहसी यूरोप, अमेरिका तथा रूस में हो रहे हैं। हमारे दक्षिणी भारत में भी अच्छे-अच्छे संत, वैज्ञानिक और विद्वान हुए तथा हैं।

जो लोग यह अहंकार करने लगते हैं कि हमारे यहां इतने बड़े-बड़े पुरुष हुए, इसलिए हम बड़े हैं, वे निरे भोले हैं। बड़े पुरुष क्षेत्र, प्रदेश, देश में सीमित नहीं किये जा सकते। वे भले किसी एक भूखण्ड में जन्म लेते हैं; परन्तु वे पूरी मानवता के हैं। जो व्यक्ति उनके आदर्शों से शिक्षा लेगा वे उसी के हैं। हमारे बाप-दादा ऐसे-ऐसे बड़े थे—इस अहंकार में कोई सार नहीं है। हां, उनके उच्च आदर्शों का हमारे जीवन में अनुकरण होना चाहिए।

भारत के अन्य प्रदेश में भी तीर्थस्थल माने गये हैं, वैसे उत्तर प्रदेश में इसकी सर्वाधिक बहुलता अवश्य है। तीर्थराज प्रयाग भी उत्तर प्रदेश में ही है। इसमें भी उत्तरी भारत की आर्य जाति की ही विशेषता है। वैसे पूरे भारत एवं विश्व में वहां के लोग अपने-अपने ढंग से तीर्थस्थल एवं उत्सव-पर्व के स्थल स्थापित किये हैं।

उत्तर प्रदेश या उत्तरी भारत में अधिक महापुरुष क्यों? मेरे विचार से इसका सार उत्तर है कि यहां के बसे हुए मनोबल, शरीरबल, बुद्धिबल आदि से सम्पन्न आर्यों तथा अनेक संस्कृतियों के समागम का यह फल है।

जो विचारक इस पर अपनी खोज की बातें भी प्रस्तुत करेंगे, उनका आदर किया जायेगा।

* * *

338. प्रश्न—अंत:करण एवं सूक्ष्म शरीर द्रव्य है या अद्रव्य?

उत्तर—करण कहते हैं ज्ञान प्राप्त करने के साधन को, वे दो प्रकार के हैं, बाह्य करण तथा अंत:करण। बाह्यकरण आंख, नाक, कान, जीभ तथा चमड़ी हैं और अंत:करण मन है, जिसे कार्यभेद से मनन करने से मन, अनुसंधान एवं खोज करने से चित्त, निर्णय देने से बुद्धि तथा स्वीकार करने से अहंकार कहते हैं।

अन्त:करण अर्थात भीतरी ज्ञान का साधन। अन्त:करण एवं मन वासनाओं का समुच्चय है, वासनाएं स्वयं में कोई द्रव्य नहीं, किन्तु वासनाएं जहां टिकती हैं वह केवल शुद्ध चेतन नहीं हो सकता; अपितु जड़ तत्त्वों के सूक्ष्मतम कणों की ग्रन्थि होनी चाहिए। तार और बल्ब स्वयं में प्रकाशस्वरूप नहीं, प्रकाश की शक्ति वाली बिजली है; परन्तु वह तार एवं बल्ब आदि के आधार बिना प्रकट नहीं हो सकती। इसी प्रकार जड़ द्रव्यों में चेतना नहीं। चेतना चेतन में है; परन्तु वह बिना जड़ द्रव्यों से निर्मित अन्त:करण एवं इन्द्रिय के प्रकट नहीं हो सकती। अतएव जहां वासनाओं का ठहराव है वह अन्त:करण द्रव्य के ही आधार में रहेगा। अभाव से भाव नहीं होता। इस प्रकार अन्त:करण को द्रव्य कहा जा सकता है।

रहा सूक्ष्मशरीर वह तो वासनायुक्त द्रव्यात्मक है ही। अद्रव्य से तो कुछ भी नहीं हो सकता।

तुम कहोगे तो वासना क्या है? वासना एवं राग, द्रव्य नहीं है; इसलिए उसका विवेक द्वारा अभाव हो जाता है। वैराग्यवान जीवन्मुक्त पुरुष के भी जीवनपर्यन्त अन्त:करण एवं सूक्ष्म शरीर का अभाव नहीं होता। यदि उसका अभाव हो जाये तो शरीर का सम्बन्ध ही कट जाये। अभाव केवल राग-द्वेषादि का होता है।

339. प्रश्न—निष्काम कर्म होना तो असम्भव है। जीवन में सब कर्म सकाम ही होते हैं। यदि निष्काम कर्म होते हैं तो उसकी क्या परिभाषा है?

उत्तर—लोक-परलोक के सांसारिक पदार्थों एवं मान-प्रतिष्ठा की कामना रखकर कर्म करना सकाम कर्म है। और अनासक्त पुरुषों द्वारा लोकमंगल के लिए अपना कर्तव्य समझकर कर्म करना निष्काम कर्म है; जिसमें अहंकार तथा

कुछ पाने की कामना नहीं रहती।

सर्वथा अनासक्त जीवन्मुक्त पुरुषों द्वारा भी लोकमंगल के कार्य होते हैं; फिर उनको कौन-सी कामना रहती है? जीवन्मुक्तों द्वारा जो लोकहिताय कार्य होते हैं उन्हें निष्काम कर्म न कहा जाये तो निर्विषय कर्म कहना पड़ेगा। यदि रागवान के उलटे विरागवान होते हैं तो सकाम कर्म के उलटे निष्काम कर्म भी होते हैं।

340. प्रश्न—जीवन के पूर्वार्ध में जो हिंसक रहा है वह यथार्थ स्वरूपज्ञान पाकर मोक्षकार्य का पूर्ण पुरुषार्थ करके क्या इसी जीवन में पूर्ण वासनाहीन एवं जीवन्मुक्त हो सकता है?

उत्तर—स्वरूपज्ञान हो जाने पर जिसने हिंसादि क्रिया त्यागकर साधना मार्ग में एकरस चलने का निश्चय किया और चल रहा है तथा दीर्घकाल साधना में एकरस व्यतीत किया और यदि उसको पूर्ण वैराग्य का उदय हो गया तो वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो सकता है।

विशाल देव कहते हैं—

चोरी हिंसा लूट कर, पाछे जेहि को ज्ञान।
पूरा दुख अनुभव भये, जो तेहि से बिलगान॥
साधु संग सद्ग्रन्थ में, जो तिन पाय निवास।
दिन-दिन बाढ़ा प्रेम जो, पाय स्वरूप मवास॥
बहुत काल तेहि में गयो, दृढ़ता पूर स्वरूप।
जो छूटै तन भाव यहि, कबहुँ न दुख के कूप॥

(मुक्तिद्वार 6/49-51)

341. प्रश्न—चरणोदक-शीदप्रसादी का भक्ति से क्या सम्बन्ध है? यह भक्तों के लिए उचित है कि अनुचित है?

उत्तर—चरणोदक-महाप्रसाद वेदान्ती, वैष्णव, कबीरपंथी आदि में चलते हैं। इनका व्यवहार बढ़ाते-बढ़ाते लोग अभद्र कर देते हैं। यह विनम्रता एवं प्रेम प्रदर्शन है। वैसे गुरु-संतों के चरणों में प्रेम रखना और उनके दिव्य आचरणों से प्रेरणा लेना चरणोदक है और महात्मा पुरुषों का सत्योपदेश ही उनका महाप्रसाद है।

342. प्रश्न—पारख स्थिति क्या है?

उत्तर—पारख का अर्थ ज्ञान है, स्थिति का अर्थ दशा, ठहराव या रुक जाना है। ज्ञान में रुक जाना, ज्ञान में ठहर जाना पारखस्थिति है। व्यक्ति का

अपना मौलिक नित्य स्वरूप ज्ञान है, पारख है। हर व्यक्ति ज्ञान स्वरूप है। मन के साथ न बहकर अपनी ज्ञान-दशा में स्थित हो जाना ही 'पारख स्थिति' है।

343. प्रश्न—स्व-निग्रह क्या है और वह कैसे हो?

उत्तर—'स्व' कहते हैं अपने आप को, निग्रह का अर्थ रोक या स्ववश करना है। अपने आपको अपने में रोक लेना, स्ववश कर लेना 'स्वनिग्रह' है।

हर व्यक्ति अपनी चेतनाधारा को निरन्तर विषयों में बहा रहा है। जो इसे रोककर अपने आप में समाहित कर ले वही 'स्व-निग्रही' है। स्ववशता ही स्व-निग्रह है। स्व-वशता तथा पर-वशता दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। स्व-वशता ही जीवन का चरम सुख है।

344. प्रश्न—जीवन में महत्त्व किसका है?

उत्तर—स्व-वशता का, पारखस्थिति का अर्थात स्वयं में पूर्णसंतुष्टि का।

345. प्रश्न—मानव का चरम लक्ष्य क्या होना चाहिए?

उत्तर—मानव का चरम लक्ष्य कुछ होना नहीं चाहिए; किन्तु है ही, उसे केवल पहचानना चाहिए। हर मनुष्य शांति का भूखा-प्यासा है। अखण्ड तृप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है, और वह 'स्व-निग्रह' में ही सम्भव है। अतएव स्वरूपस्थिति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है।

346. प्रश्न—'अभिनिवेश' किसे कहते हैं?

उत्तर—'अभिनिवेश' कहते हैं आग्रह या दृढ़ संकल्प को। वैसे यह योगदर्शन का पारिभाषिक शब्द है जो मरण-भयजनक अज्ञान एवं क्लेश के लिए व्यवहृत है। अर्थात अभिनिवेश कहते हैं 'मरण-भय' को।

347. प्रश्न—अपने स्वरूप को मन से कैसे पृथक करें?

उत्तर—मन संकल्पों का जाल और दृश्य है और व्यक्ति शुद्ध चेतन एवं मन का द्रष्टा है। देखने वाला देखी हुई वस्तु से पृथक होता ही है। सारे संकल्पों एवं मनन-धारा को अपने आप से पृथक जानकर उन्हें छोड़ते रहो और इस प्रकार अपने को हलका रखो।

348. प्रश्न—ध्यान अभ्यास करने पर प्रसन्नता आती है। अनेक सुन्दर रंग दिखते, नाद सुनाई पड़ता तथा आप जैसे गुरुजनों के रूप दिखते हैं; परन्तु आंख खोलने पर अन्धकार तथा भयानक दृश्य दिखाई देता है। दिन भर मन में बेचैनी रहती है। क्या ध्यानाभ्यास स्थगित कर दूं?

उत्तर—ध्यान में भी तुम मनोमय सृष्टि में ही रहते हो और उसके बाद भयानक दृश्य देखना यह तो और खतरा है। तुम्हें यदि फल उलटा दिखे तो इसे छोड़कर सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो या कोई आस-पास अच्छे साधक संत से सम्मति लेकर साधना करो।

349. प्रश्न—सद्गुरु कबीर के कथनानुसार मरने के पहले मरना क्या है?

उत्तर—देह से लेकर समस्त दृश्य पदार्थों के अहंकार तथा कामना को छोड़ देना ही, मरने के पहले मरना है।

*   *   *

350. प्रश्न—नास्तिक और आस्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर—'नहीं' कहने वाला नास्तिक है और 'है' कहने वाला आस्तिक है। अब क्या नहीं है और है, इसकी परिभाषा इस शब्द से स्वत: नहीं होती। कोई कहता है वेद को जो नहीं मानता वह नास्तिक है और कोई कहता है परलोक जो नहीं मानता वह नास्तिक है, कोई कहता है कि ईश्वर को जो नहीं मानता वह नास्तिक है और कोई कहता है अपने आपको जो नहीं मानता वह नास्तिक है। सब मिलकर कहते हैं भौतिकवादी नास्तिक हैं। मेरे अपने विचार से संसार का एक व्यक्ति भी नास्तिक नहीं है; अपितु सब आस्तिक हैं। सिद्धांत रूप में चाहे आंशिक ही सही सब नैतिकता को मानते हैं। भौतिक द्वंद्ववाद के प्रवर्तक मार्क्स भी आस्तिक हैं। क्योंकि पत्थर की मूर्ति और निर्गुण-निराकार ईश्वर का चिंतन करने वाला यदि आस्तिक है, तो प्रत्यक्ष जानदार सगुण-साकार, भूखे-नंगे मानव को रोजी-रोटी एवं कपड़े दिलाने के समर्थक बिलकुल आस्तिक हैं।

वस्तुत: नास्तिकता एक गाली है जो प्राय: हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे के लिए प्रयोग में आती है। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, यहूदी, वैष्णव, वेदान्ती, जैन, बौद्ध प्राय: सब अपने से भिन्न मत वालों को नास्तिक कहते रहते हैं, जो गलत है। मानवतावादी किसी को नास्तिक नहीं कहता। इस विषय को विस्तार से समझने के लिए 'नास्तिक कौन' पढ़ें।

351. प्रश्न—संत कबीर का मूल उद्देश्य आत्मकल्याण था कि समाज सुधार?

उत्तर—आत्मकल्याण, अर्थात अपना कल्याण किये बिना कोई समाज सुधार कैसे कर सकता है? और व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर ही समाज बनता है। अत: उनका उद्देश्य आत्मकल्याण तथा समाज कल्याण दोनों था।

352. प्रश्न—उपवास किसे कहते हैं? उपवास करना चाहिए या नहीं?

उत्तर—उपवास का सरल और लोकप्रचलित अर्थ जो जानते हो, वही है। अर्थात भोजन न करना। लोग गलत वस्तु और अधिक मात्रा में खा-खाकर आंत को खराब करते रहते हैं। यदि महीने में केवल दो उपवास कर लिया जाये तो अच्छा है। एक दिन पूरा उपवास रखने से आंत को आराम करने का अवसर मिल जाता है और वह स्वस्थ हो जाती है। उपवास के दिन नीबू का रस पानी में दो-तीन बार लेना चाहिए, और कुछ नहीं। यदि ज्यादा भूख लगे तो खांड़ या गुड़ का शरबत एक बार ले ले। खांड़-गुड़ न मिले तो चीनी का शरबत ले ले। समय से आधा दिन का उपवास या फलाहार पर रह जाना भी अच्छा है; किन्तु फलाहार थोड़ा ले। उपवास केवल स्वास्थ्य सुधार के लिए है, पाप काटने तथा कल्पित स्वर्ग पाने के लिए नहीं।

353. प्रश्न—'पूत कुपूत तो का धन संचय, पूत सपूत तो का धन संचय।' इसका अर्थ क्या है?

उत्तर—यदि खराब आचरण का एवं आलसी पुत्र है तो उसके लिए धन संग्रह करना बेकार है। वह सारा संचित धन थोड़े दिनों में उड़ा देगा और यदि सदाचारी तथा परिश्रमशील पुत्र है तो उसके लिए धन संचय करने की आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि वह स्वयं कमा लेगा। अतएव जो कमाओ उसे अपने और दूसरे तथा जन सेवा में खर्च करते रहो। अधिक धन-संग्रह अपराध है।

354. प्रश्न—अज्ञान सत है या असत?

उत्तर—असत। उदाहरणार्थ—सूर्य प्रकाशस्वरूप और सत है और अंधकार उसका अभाव मात्र एवं असत है। इसी प्रकार ज्ञान चेतन द्रव्य का गुण होने से सत है, और अज्ञान उसका अभाव एवं अंधकारधर्मा होने से असत है। अंधकार असत अवस्तु होने से उसे अन्य प्रकार हटाया नहीं जा सकता, प्रकाश लाने पर वह समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञान अन्य प्रकार से नहीं मिट सकता, ज्ञान आने से वह नहीं रहता।

355. प्रश्न—आत्मा संसार का निमित्त कारण है या उपादान?

उत्तर—संसार का कारण तो जड़ प्रकृति है। आत्मा जड़ संसार से सर्वथा पृथक शुद्ध-बुद्ध है। हां, यह अनादि से जड़वासनावश और शरीर धारण करके संसार के वासनात्मक एवं चेतना जगत की सृष्टि का निमित्त कारण अवश्य बना है। किन्तु जो छह ऋतु, बादल, वर्षा, अनन्त ब्रह्मांड की क्रियाशीलता आदि है यह जड़ प्रकृति के पदार्थगत गुण-धर्म-क्रियाओं पर ही निर्भर है।

356. प्रश्न—सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

उत्तर—सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति अनादि वासनात्मक है। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज बनते हैं, वैसे सूक्ष्म देह से स्थूल देह बनती है तथा स्थूल देह के संस्कार एवं वासना से सूक्ष्म देह बनती है।

357. प्रश्न—संतमत के प्रवर्तक सद्गुरु कबीर ही क्यों?

उत्तर—शास्त्र, महापुरुष, अवतार, पैगम्बर, ईश्वर और परम्परा—इनकी दोहाई देकर हर मतवादी जनता को अपने अंधविश्वास में घेरकर एक चक्कर में चला रहे थे। सद्गुरु कबीर इन सबसे हटकर स्वतन्त्र चिंतन, प्रवचन और आचरण करके और सारे कुहासों को काटकर समाज एवं संसार के लिए स्वतन्त्र चिंतन का द्वार खोल सके। इसलिए संतों एवं विद्वानों ने उनको संतमत का प्रवर्तक माना।

358. प्रश्न—सद्गुरु कबीर ने मन्त्र को महत्त्व दिया है कि नहीं?

उत्तर—झाड़-फूंक वाला मन्त्र तो बिलकुल बेकार है। सलाह को मन्त्र कहते हैं, सो ठीक है। जहां तक किसी शिष्य को दीक्षा देते समय उसे मन्त्र देने की बात है इसे कबीर साहेब ने स्वीकारा है कि नहीं यह कहना तो कठिन है। वैसे कोई गुरु शिष्य को दीक्षा देते समय संस्कारों को पुष्ट करने के लिए किसी शुभ नियम की पूर्ति तो करेगा ही। शिष्य को यथार्थ बोध देना ही दीक्षा है; परन्तु संस्कारों के दृढ़ीकरण के लिए सत्य निर्णय रूप किसी निर्धारित छोटे वाक्य को मन्त्र रूप में सुना देना उचित ही है।

359. प्रश्न—मनुष्य को केवल वर्तमान का ख्याल रखते हुए जीना चाहिए या भविष्य पर भी नजर रखना चाहिए?

उत्तर—जो व्यक्ति वर्तमान को पवित्र रखेगा और सदैव वर्तमान को पवित्र बनाये रखेगा उसका सारा भविष्य पवित्र होता जायेगा। वर्तमान को सुधारते रहने वाले को भविष्य के लिए अलग से चिंता नहीं करनी पड़ती। यहां तक कि जो व्यक्ति सदैव वर्तमान को निर्मल रखता है उसका भविष्य तो सुधरा होता ही है, उसके भूतकाल के भी मलिन संस्कार धुल जाते हैं।

अतएव—

वर्तमान में बरतो भाई। भूत भविष्य सब देउ बहाई॥ (निर्णयसार)

360. प्रश्न—कैसे साधु की पूजा करनी चाहिए?

उत्तर—साधु तो साधु है। साधु विषयविरक्त, सदाचारी एवं विवेक-वैराग्य सद्गुण सम्पन्न होता है और उसी की पूजा करनी चाहिए। रहा, किसी मेला-

भण्डारा की सामूहिक साधुमण्डली में पूजा करनी हो तो सबसे यह तो नहीं पूछते बनेगा कि आप सच्चे साधु हैं कि गलत? जिनको गलत जाना जाता हो उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। शेष भेष भगवान का यथायोग्य सत्कार कर देना चाहिए।

361. प्रश्न—जाति-पांति मानना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—मनुष्य की एक जाति है। शुद्धता का आधार लेकर व्यवहार करना चाहिए।

362. प्रश्न—साधु के मिलने पर उससे उसकी जाति पूछना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—बिलकुल नहीं। साधु तो पवित्र होता है। उससे जाति पूछने से क्या प्रयोजन?

जाति न पूछो साधु से, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

(सद्गुरु कबीर)

वस्तुतः जाति मनुष्यमात्र से नहीं पूछना चाहिए। पूरे मनुष्य की एक जाति है—मानव।

* * *

363. प्रश्न—पशु का दूध उसके बच्चे का भाग है, उसे क्या मनुष्य को लेना चाहिए और दूध बछड़े का जूठ भी होता है?

उत्तर—पशु का दूध उसके बच्चे का भाग अवश्य होता है; परन्तु मनुष्य जो पशु की सेवा करता है, उसको भी तो पारिश्रमिक मिलना चाहिए। पशु को दुहा न जाये तो दूध बढ़ नहीं सकता, जैसे बनैले पशु का दूध नहीं बढ़ता। उनका दूध केवल उनके बच्चों के लिए ही होता है। जहां पशु पाले जाते और दुहे जाते हैं वहां दूध बढ़ता है और उस सारे दूध को बच्चा पीकर पचा भी नहीं सकता। अतएव बच्चे का पेट दूध से भरकर तथा उसके बड़ा हो जाने पर दूध, अन्न और चारा से उसका पेट भरकर दूध लेना कोई बुरा नहीं।

रहा, दूध पशु-बच्चे का जूठ होता है, परन्तु पशु के पन्हा जाने पर पशु का स्तन पानी से धो लेने पर वह स्वच्छ हो जाता है। सब ठीक से नहीं धोते और दूध कहीं से आया हुआ पीया-खाया जाता है यह प्रश्न आता है।

दूध मानव शरीर के लिए एक सात्विक उपयुक्त खाद्य-पदार्थ है और सभी धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत है। तुम्हारे सिद्धांत के पूर्व से आज तक के

समस्त संत-भक्त भी स्वीकार करते आये हैं। फिर शुद्धाशुद्ध का विचार शक्ति के अनुसार ही रख मिलेगा। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा—

छूतिहिं जेंवन छूतिहिं अँचवन, छूतिहिं जगत उपाया।
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित, जाके संग न माया॥

(बीजक, शब्द 41)

प्रतिदिन भोजन को बचाते हुए भी पवित्र मक्खियां उसे पवित्र ही कर देती हैं! नल का पानी चाम के वायसर से छनकर आता ही है, कुआं-नदी में रहने वाले मेढक-मछली अपनी टट्टी-पेशाब से कुआं-नदी के पानी के शुद्ध करते ही रहते हैं! सारी दुर्गंधी से हवा तथा मुरदों से पृथ्वी पटी ही है। कहां जाओगे?

जिनकी रुचि न हो दूध न खायें। व्यक्तिगत कोई दूध छोड़ सकता है, समूहबद्ध समाज नहीं छोड़ सकता। यदि हठ से तथा शर्माशर्मी से छोड़ेगा तो ज्यादा दिन नहीं चलेगा और पीछे से उस समाज को पछताना पड़ेगा। इसलिए बहुत उछलकर नहीं चलना चाहिए। विचारवान और गम्भीर बनने की आवश्यकता है।

364. प्रश्न—व्यवहार में रहकर राग-द्वेष से रहित कैसे रहा जाये?

उत्तर—सारा व्यवहार क्षणिक, नाशवान एवं बीत जाने वाला समझकर।

365. प्रश्न—संकल्प-विकल्प का कारण क्या है? और ये शांत कैसे होंगे?

उत्तर—संकल्प-विकल्प का कारण इच्छा है। इच्छा जीत लेने पर संकल्प-विकल्प शांत हो जाते हैं।

366. प्रश्न—समय थोड़ा है, काम जरूरी, करना यही है—इसका भाव क्या?

उत्तर—जीवन क्षणिक है, शांति प्राप्ति का काम करना है; क्योंकि यही आवश्यक है, यही जीवनोद्देश्य है।

367. प्रश्न—सहज ध्यान क्या है?

उत्तर—जीव सहज स्वाभाविक सबका द्रष्टा है। जब सबको अपने से पृथक समझकर और सब समय सबका द्रष्टा बनकर सबसे अनासक्त रहा जाता है, तब यही सहज ध्यान की स्थिति होती है। सहज का अर्थ स्वाभाविक है और ध्यान का अर्थ निर्विषय एवं संकल्पहीन मन है। स्वरूपज्ञानपूर्वक जब स्वाभाविक निर्विषय एवं संकल्पों पर स्ववशता की स्थिति होती है, तब इसे सहज ध्यान कहते हैं।

368. प्रश्न—साधक, साधन, साधना, साध्य और सिद्धि क्या है?

उत्तर—प्रयत्नशील व्यक्ति साधक है, औजार साधन है, उसका प्रयोग साधना है, कोई विषय साध्य है और उसकी सफलता एवं प्राप्ति सिद्धि है। उदाहरणार्थ—किसान साधक है, हल-बैल आदि साधन हैं, गोड़ना-जोतनादि साधना है, अन्न साध्य है और अन्न की प्राप्ति सिद्धि है। इसी प्रकार मुक्ति का इच्छुक साधक है, विवेक-वैराग्यादि साधन हैं, इनका अभ्यास साधना है, मोक्ष एवं शांति साध्य है और उसकी प्राप्ति सिद्धि है।

369. प्रश्न—मरणोपरान्त जीव की क्या स्थिति होती है?

उत्तर—आज की आध्यात्मिक उन्नति या अवनति ही मरणोपरान्त उन्नति या अवनति एवं सुख या दुख का सूचक है। वर्तमान में जो पवित्र मन वाला है वह आज भी सुखी है और आगे भी सुखी रहेगा। और जो आज गंदा मन वाला है वह आज दुखी है और आगे भी दुखी रहेगा। अतएव वर्तमान के सुधार-बिगाड़ ही भविष्य के सुधार-बिगाड़ हैं।

370. प्रश्न—शरीर छूटते समय ज्ञानी-अज्ञानी दोनों को पीड़ा होती है; फिर दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर—पीड़ा दो प्रकार की होती है, एक मानसिक और दूसरी शारीरिक। काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिंता, शोक आदि मानसिक पीड़ा है और रोगजनित कष्ट शारीरिक पीड़ा है। प्रारब्धवशात ज्ञानी-अज्ञानी सबको शारीरिक पीड़ा होती है, किन्तु मानसिक पीड़ा केवल अज्ञानी को होती है, ज्ञानी को नहीं।

कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि प्रारब्धवशात ज्ञानी पुरुष को शरीरांत के समय शारीरिक पीड़ा अधिक हो जाती है और कई अज्ञानी व्यक्तियों को उस समय शारीरिक पीड़ा बिलकुल नहीं होती; क्योंकि उनके पूर्व प्रारब्ध ठीक हैं। ज्ञानी की सफलता आज की शारीरिक पीड़ा से मुक्त होने में नहीं है। उसकी सफलता मानसिक पीड़ा से मुक्त होने में है जो पवित्रता एवं स्वरूपज्ञान के उदय होने में है।

371. प्रश्न—स्थूल शरीर में चेतन किस तरह रहता है? शरीर से निकलते समय वह दिखाई नहीं देता। चेतनवस्तु दिखने जैसी है कि नहीं, वह साकार है कि निराकार?

उत्तर—जैसे मकान-मालिक मकान में रहता है, वैसे जीव शरीर में रहता है। अन्तर यह है कि मकान-मालिक इच्छानुसार मकान में तथा उसके बाहर आ-जा सकता है; परन्तु जीव पूर्व के प्रारब्ध कर्मों में बंधा हुआ जीवनपर्यन्त शरीर में रहता है और एक बार इससे निकल जाने पर इसमें पुन: नहीं आता।

चेतन देह-इन्द्रिय-साधन से सबको देखता है। यह इन्द्रियों से देखा नहीं जा सकता; क्योंकि यह पांचों विषयों से परे है। इसलिए पांचों ज्ञान इन्द्रियों में नहीं आ सकता।

आंख से तो केवल रूप दिखाई देता है। अन्य चार विषय शब्द, रस, गंध, स्पर्श ही नहीं दिखाई देते, फिर चेतन को देखने की बात ही व्यर्थ है। निराकार शून्य को कहते हैं। चेतन ज्ञान गुण वाला सत्य पदार्थ है; इसलिए निराकार नहीं है। परन्तु उसे भौतिक पदार्थों के सदृश साकार भी नहीं कह सकते। वह मन-इन्द्रियों से ऊपर ज्ञानाकार एवं नित्य सत्तावान है।

372. प्रश्न—इस देहद्वारा किये गये कर्म के फल यदि अगले जन्मों में मिलते हैं, तो फल का क्या महत्त्व?

उत्तर—इस देह में जो अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं, उनके फल तत्काल भी मिलते हैं और जन्मान्तर में भी। कर्ता ही को फल मिलता है, साधन को नहीं। किसी मनुष्य ने लाठी से किसी को मारा तो उस मारने वाले मनुष्य को दण्ड मिलेगा न कि लाठी को। जीव कर्ता है, देह कर्म करने का साधन मात्र है। अतएव कर्ता जीव आज और आगे सब समय रहता है; अतः फल उसी को मिलता है। यही प्रकृति का न्याय है।

373. प्रश्न—अतृप्त आत्मा क्या है?

उत्तर—जिस जीव की इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, उसे अतृप्त आत्मा कहते हैं और जीवन्मुक्तों को छोड़कर कम-बेश सभी आत्माएं अतृप्त हैं। क्योंकि तृप्ति इच्छाओं के त्याग से मिलती है। "अतृप्त आत्माएं सूक्ष्म शरीर लेकर घूमती रहती और लोगों के ऊपर आकर सताती रहती हैं"—यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण एवं अज्ञानपूर्ण है। जीवन्मुक्त आत्माओं को छोड़कर सभी आत्माएं अतृप्त हैं और वे जन्मांतर में घूमती रहती हैं।

374. प्रश्न—देवी-देवता और यज्ञ क्या है?

उत्तर—सद्गुण सम्पन्न पुरुष देवता तथा सुशीला नारियां देवी हैं और लोककल्याण सम्बन्धी रचनात्मक कार्य यज्ञ हैं।

*　　　*　　　*

375. प्रश्न—मुझे अपने जीवन को ऊपर उठाना है, क्या करूं?

उत्तर—अनासक्त और कर्तव्य तत्पर बनें और इसके लिए विवेकवानों का सत्संग करें।

376. प्रश्न—जीवन्मुक्त पुरुष की पहचान कैसे हो?

उत्तर—स्वयं जीवन्मुक्त होकर।

377. प्रश्न—क्या संसार स्वप्नवत है?

उत्तर—संसार पदार्थात्मक एवं द्रव्यात्मक है। बने हुए कार्य पदार्थ विनश जाते हैं; परन्तु कारण द्रव्य नित्य रहते हैं। अत: संसार प्रवाह रूप नित्य एवं यथार्थ है। जीव का उससे सम्बन्ध केवल स्मरण मात्र है। अतएव जगत स्वप्नवत नहीं, जगत का सम्बन्ध स्वप्नवत है।

378. प्रश्न—जीव को स्वप्नावस्था में ज्ञान रहता है कि नहीं?

उत्तर—ज्ञान द्वारा ही तो स्वप्न चित्रावली को देखता है।

379. प्रश्न—मन को रोकने का मुख्य साधन क्या है?

उत्तर—वैराग्य एवं अनासक्ति।

380. प्रश्न—सत्यनाम, पारखपद और चेतन में क्या अन्तर है?

उत्तर—चेतन ही को पारखपद अर्थात ज्ञानस्वरूप कहते हैं और वही सत्य है। फिर अन्तर क्या है।

381. प्रश्न—अपने आपको जीवन्मुक्त कब समझना चाहिए?

उत्तर—जब मन में किसी वस्तु का आकर्षण न हो।

382. प्रश्न—साधक कुछ दिनों में शिथिल क्यों हो जाता है?

उत्तर—थोड़ी ही सफलता में सन्तुष्ट हो जाने के कारण और मानप्रतिष्ठा में भूल जाने से शिथिल हो जाता है।

383. प्रश्न—भास, अध्यास, अनुमान तथा कल्पना में क्या अन्तर है?

उत्तर—दृश्य विषयों में सुखाकर्षण भास है, विषयासक्ति का हृदय में गहराई से गड़े रहना अध्यास है, अटकलबाजी अनुमान है और मन के राग-द्वेष सुख-दुख आदि कल्पना हैं।

384. प्रश्न—शरीरान्त के बाद दूसरे शरीर में क्या पूर्व जन्म के संस्कार अन्त:करण में रहते हैं?

उत्तर—वर्तमान में मनुष्यों के विभिन्न संस्कार गुण-कर्म, शारीरिक-मानसिक स्थितियों को देखते हुए पूर्व जन्मों के संस्कारों की प्रतीति होती है।

मुख्य बात है कि चेतन जीवों की जड़तत्त्वों से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता का होना। जड़ तत्त्वों से चेतन का निर्माण होना असम्भव है और चेतन से जड़तत्त्व भी नहीं बन सकते। जब चेतन जड़ से भिन्न है और देह का निवासी भी है, तब देह छूटने पर पुन: देह का धारण करना स्वाभाविक बात है। यह नियम है कि जब तक कारण का विरोध नहीं होता तब तक कार्य बनने का अन्त नहीं होता। देह धारण में स्वरूप का अज्ञान, विषयों का राग तथा सकाम कर्म कारण है। इनका अभाव जब तक नहीं होता है, पुनर्जन्म होता रहेगा।

जड़ और चेतन दोनों पदार्थ नित्य हैं। उन दोनों का संयोग जन्म तथा वियोग मरण कहलाता है और जन्म-मरण का प्रवाह बराबर चल रहा है, तो उन्हीं-उन्हीं जीव तथा जड़ पदार्थों का संयोग-वियोग होता है। अतएव पुनर्जन्म तो स्वत: प्रत्यक्षसिद्ध प्रवाह है।

385. प्रश्न—किस कर्म के करने से मनुष्य शरीर मिलता है?

उत्तर—आज तुम्हें मनुष्य शरीर मिला है, उसका कल्याण-साधना में उपयोग करो। आगे, मनुष्यादि किसी शरीर पाने की कल्पना निरर्थक है। जो वर्तमान जीवन का सदुपयोग करता है उसका भविष्य उज्ज्वल है।

386. प्रश्न—साधु को खेती-बारी करना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—साधु का काम है साधना करना, खेती-बारी करना नहीं; परन्तु यदि साधु ऐसे स्थान पर रह रहा है जहां खेती-बारी लगी है; तो उसे सहजतया कर-करा लेना ठीक है। फिर साधु-समाज में भी अनेक श्रेणी के लोग होते हैं। आश्रम और विचरन्त दो विधि साधु रहते हैं। नये साधक, रोगी तथा वृद्ध साधुओं के लिए आश्रम अधिक सहायक होता है। यदि आश्रम में खेती-बारी हो तो उसे गौण रखना चाहिए, मुख्य साधना पर जोर देना चाहिए।

यह ध्यान रहे, आवाज धीमी और कर्तव्य ऊंचा होना चाहिए। आश्रम और खेती-बारी की आलोचना करना मात्र साधना या साधुता नहीं है। आश्रम तथा विचरन्त दोनों में अच्छे और बुरे होते हैं।

387. प्रश्न—खेती-बारी करते हुए जीवन्मुक्ति का आचरण करके साधु जीवन्मुक्त हो सकता है कि नहीं?

उत्तर—यदि अन्न खाकर साधु जीवन्मुक्ति की रहनी धारण कर सकता है तो अन्न को पैदा करके खाने से जीवन्मुक्ति में क्या बाधा होगी? अपने हाथों से हल चलाकर और अन्न पैदा करके जीवन निर्वाह लेते हुए साधक जीवन्मुक्त हो सकता है और सारी क्रियाओं को छोड़कर जंगल में बैठने वाला भी बन्धनों में बंधा रह सकता है।

अपने हाथों से अन्न पैदा करके खाना या दूसरे का दिया हुआ अन्न खाना—अन्न खाना पड़ेगा। खास बात है कि यदि साधु अपने हाथों से ही अन्न पैदा करता हो तो वह केवल निर्वाह का लक्ष्य रखकर खेती का काम थोड़ा करे, शेष अधिक-से-अधिक समय सत्संग, स्वाध्याय एवं साधना में बिताये। मोक्ष-साधना के लिए साधक का जीवन अधिक से अधिक निवृत्तिपरक होना चाहिए। जिसे भोगों-ऐश्वर्यों की लालसा नहीं है, वह यदि अपने हाथों से ही निर्वाह के लिए खेती करेगा तो भी वह केवल पेट पूर्ति का ही लक्ष्य रखेगा। वह खेती-बारी में अधिक फंसा नहीं रहेगा। वह थोड़ा व्यवहार-धन्धा करके निवृत्तिपरायण रहेगा।

यह बात अलग है कि यदि साधु भजन करे तो उसे भोजन की कमी नहीं है। परन्तु कोई साधु भोजन का अपने हाथों ही प्रबन्ध करके भजन करना चाहे और भजन करे तो बुरा क्या है?

कितने आश्रमधारी गृहस्थवत केवल स्थूल व्यवहार में ही व्यस्त हैं, तो कितने विचरणशील लम्पट, दम्भी और अहंकारी हैं और दोनों क्षेत्रों में विवेकी पुरुष भी हैं; अतएव रहनी की विशेषता है।

सारत: औषधवत स्थूल कर्म होना चाहिए, जोर साधना पर होना चाहिए।

388. प्रश्न—खेती करने से जीवहत्या होती है, उसका पाप लगेगा कि नहीं?

उत्तर—केवल खेती करने में ही नहीं, चलने में, भोजन पकाने में, टट्टी, लघुशंका तथा स्नान करने में, श्वास लेने में, यहां तक कि बिस्तर पर लेटने में मच्छड़-खटमल दबकर जीवहिंसा होती है, परन्तु उक्त क्रियाओं में किसी का कोई हिंसा करने का उद्देश्य नहीं रहता।

खेती करने में असंख्य जीवों की हत्या होती है और असंख्य जीवों का पालन-पोषण भी। यदि खेती करने में पाप है तो पाप की कमाई से पैदा हुआ अन्न खाने में भी पाप होगा। फिर संसार में कोई भी निष्पाप नहीं होगा। अतएव मेरे विचार से कृषक का मन्तव्य अन्न पैदा करना है, जीवहत्या नहीं; इसलिए वह निष्पाप है। वह तो सबको अन्न खिलाकर पुण्य करता है।

389. प्रश्न—क्रियवान कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आसक्तिपूर्वक किया जाये। आसक्ति का त्यागना ही जीवन्मुक्ति के मार्ग में बढ़ना है।

390. प्रश्न—क्या चेचक देवी है?

उत्तर—चेचक रोग है, देवी नहीं। उसको डरो मत, दवाई करो।

391. प्रश्न—वैराग्य एकरस क्यों नहीं होता?

उत्तर—क्योंकि शुद्ध अन्त:करणपूर्वक एकरस विवेक जाग्रत नहीं किया जाता।

392. प्रश्न—मैं संतों को देखकर उन्हीं जैसा बनना चाहता हूं, परन्तु बन नहीं पाता, कैसे बनूं?

उत्तर—साधु संगत, सद्ग्रन्थ अध्ययन एवं निरन्तर विवेक कीजिये।

393. प्रश्न—पिण्डोदक क्रिया का फल क्या मृतक को मिलता है?

उत्तर—जो जीव शरीर छोड़कर चला गया, उसे यहां का दिया हुआ कुछ नहीं मिलता। कर्म ही उसका साथी है।

*　　　*　　　*

394. प्रश्न—वेदों का महत्त्व क्यों है?

उत्तर—क्योंकि उनमें हमारे प्राचीनतम पूर्वजों के इतिहास, ज्ञान-विज्ञान, संस्कार, रीतिरिवाज आदि की झलकियां हैं। वे विश्व की प्राचीनतम समृद्ध पुस्तकें हैं जिनमें हम अपने पूर्वजों की गरिमा देख सकते हैं।

395. प्रश्न—जो अध्यापक तम्बाकू, सिगरेट आदि का सेवन करते हैं, क्या वे छात्रों का सही निर्माण कर सकते हैं?

उत्तर—अध्यापकों को छात्रों को भाषा-ज्ञान तथा प्रौद्योगिक एवं तकनीकी ज्ञान देने के साथ-साथ उनमें उत्तम चरित्र का संस्कार डालना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब वे स्वयं सभी दुर्व्यसनों से रहित होकर नैतिक एवं सदाचारी जीवन व्यतीत करें।

396. प्रश्न—दुर्व्यसन तथा राग-द्वेष में लगे हुए साधु वेषधारी क्या समाज का हित कर सकेंगे?

उत्तर—साधु सदाचार, नैतिकता, शांति एवं निर्मलता का मूर्तिमन्त आदर्श होता है। दुर्व्यसन तथा राग-द्वेष में लिपटा हुआ व्यक्ति साधु है ही नहीं। साधुवेष, लम्बी आयु, प्रतिष्ठा, विद्वता आदि साधुता के मानदण्ड नहीं हैं।

397. प्रश्न—जीव (चेतन) और मन (इच्छा) में क्या अन्तर है?

उत्तर—जीव अविनाशी है, चेतन है और वही तुम हो। अर्थात तुम ही चेतन हो और मन संस्कारों को ग्रहण करने का एक साधन है जो तुमसे पृथक है। इच्छाएं मन की तरंगें हैं। मन तथा मन की इच्छाएं छाया के समान आने-जाने वाले नश्वर हैं; परन्तु जीव अविनाशी है।

398. प्रश्न—जीव और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर—जैसे अग्नि और गरमी गुण-गुणी का नित्य समवाय सम्बन्ध है। अर्थात दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार जीव और ज्ञान एक है। ज्ञान जीव का स्वभाव है।

399. प्रश्न—इच्छाएं क्यों पैदा होती हैं?

उत्तर—इच्छाएं दो प्रकार की होती हैं, अच्छी तथा बुरी। अच्छी इच्छाएं शुद्ध विचार से तथा बुरी इच्छाएं अज्ञान से पैदा होती हैं।

400. प्रश्न—संसार में सभी जीव बराबर हैं कि घट-बढ़?

उत्तर—जीव के शुद्ध स्वरूप एक समान हैं। देह छोटी-बड़ी तथा बुद्धि कम-वेश है। ज्ञान की कमी-वेशी के कारण हैं खानियों की भिन्नता तथा अनेक जन्मों के संस्कारों की भिन्नता। जैसे अनेक प्रकार के चश्में से देखने की शक्ति में घटी-बढ़ी होती है यद्यपि नेत्र एक समान हैं।

401. प्रश्न—पारख-समाधि में संकल्प की शांति अवस्था कितने समय तक रह सकती है?

उत्तर—अभ्यास जितना वैराग्यपूर्ण और दीर्घ समय से हो। जिस दिशा में जितना श्रम करो, उतनी सफलता।

402. प्रश्न—ध्यान से उठने के बाद व्यवहार में जब व्यक्ति बरतेगा, तब उसको हर्ष-शोक भी आयेंगे, तो जीवन्मुक्ति कैसे रह सकती है?

उत्तर—ध्यान में तो हर्ष-शोक होने का प्रश्न ही नहीं है, व्यवहार में ही हर्ष-शोक होते हैं और उन्हें त्यागकर ही जीवन्मुक्ति होती है। जीवन्मुक्त को हर्ष-शोक नहीं होते।

403. प्रश्न—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर—अपने आप को देह, मन, प्राण आदि से भिन्न शुद्ध चेतन स्वरूप समझना—ज्ञान है, जितेन्द्रिय पवित्र सन्त पुरुषों एवं अन्ततः अपने स्वरूप की स्थिति में निष्ठा होना—भक्ति है तथा देहादि पंचविषयों के प्रति अनासक्त होना—वैराग्य है।

404. प्रश्न—पांच तत्त्व और पचीस प्रकृतियां कौन-कौन हैं?

उत्तर—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये पांच तत्त्व हैं। प्रथम चार तत्त्व गुण-धर्म युक्त द्रव्य हैं तथा आकाश गुण-धर्म रहित शून्य है।

पृथ्वी तत्त्व की पांच प्रकृति—हाड़, मांस, चाम, नस, रोम। जल की प्रकृति—लार, मूत्र, वीर्य, रक्त और पसीना। अग्नि की प्रकृति—भूख, प्यास, आलस्य, नींद और जमुहाई। वायु की प्रकृति—बलकरन, संकोचन, प्रसारन, बोलन और चलन।

आकाश की प्रकृति—काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय मानते हैं। परन्तु आकाश कोई द्रव्य न होने से उसमें कोई प्रकृति नहीं। फिर यदि कामादि प्रकृति हों तो वे छूट नहीं सकते; क्योंकि प्रकृति छूटती नहीं। अतएव कामादिक मनोविकार हैं, इसलिए वे साधना से मिट जाते हैं।

405. प्रश्न—कबीर साहेब ने नारी की निन्दा क्यों की है?

उत्तर—कबीर साहेब ने नारी की निन्दा कभी नहीं की। बीजक भर में जहां दो-चार जगह कुछ ऐसी चर्चा-सी लगती है, वह कामुकता का खण्डन है और ऐसी बहुत थोड़ी ही पंक्तियां हैं।

सद्गुरु कबीर ने तो नर तथा नारी दोनों का समान स्तर माना है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी॥ 1 ॥
सहज समाना घट घट बोलै, वाके चरित अनूपा॥ 2 ॥
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा॥ 3 ॥

(बीजक, शब्द 48)

बुझ बुझ पंडित बिरवा न होय, आधे बसे पुरुष आधे बसे जोय॥ 1 ॥

(बीजक, शब्द 50)

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी॥ 1 ॥
वेद कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी॥ 2 ॥
माटी का घट साज बनाया, नादे बिन्द समाना॥ 3 ॥
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना॥ 4 ॥

(बीजक, शब्द 75)

406. प्रश्न—किसी के मरने पर उसकी लाश ले जाने वाले समाज के साथ जाना चाहिए कि नहीं और जनेऊ बदलना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—लाश के साथ जाना तो एक सामाजिकता है जो जरूरी है। रहा जनेऊ बदलना, यह केवल रस्म है। जैसा करने से ठीक हो वैसा करे।

407. प्रश्न—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा शब्दादि पंच विषय—इन नौ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर माना गया है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर क्या है?

उत्तर—चतुष्टय अन्त:करण द्वारा पंचविषयों का अध्यास ग्रहण होता है। पंचविषयों का अध्यास ही पुनर्जन्म का कारण होने से वही सूक्ष्म शरीर है। परन्तु चतुष्टय अन्त:करण और पंचविषयों का अध्यास शुद्ध जीव में नहीं ठहर सकते। अतएव तत्त्वों के सूक्ष्म अंश की एक ग्रंथि होनी चाहिए जो जीव के साथ में वासनाओं का वहन करती हो। अतएव पंच-विषयासक्ति एवं चतुष्टय अंत:करण का बीज-स्वरूप लेकर तत्त्वों के सूक्ष्मांश की ग्रंथि ही सूक्ष्म शरीर है।

*　　　*　　　*

408. प्रश्न—मूर्तिपूजा न मानने पर मां-बाप व गुरुजनों की फोटो में जूते मारने पर क्या पाप है?

उत्तर—किसी महापुरुष का चित्र या मूर्ति यदि घर में हो तो उसको साफ-सुथरा रखना ही उसकी पूजा है। उसको जल-भोजन पिलाने-खिलाने, उसे सुलाने-जगाने, उसकी आरती-वंदना करने की प्रक्रिया भोलापन एवं भावुकता मात्र है। वेश्या का चित्र देखने से यदि मन खराब हो सकता है तो वैराग्यवान सन्तों का चित्र देखने से मन में निर्मलता आये यह स्वाभाविक है। माता-पिता, वीर तथा राष्ट्ररक्षकों के चित्र देखकर उपकारभाव स्मरण होना सहज है।

लोग मूर्तिपूजा का तात्पर्य मानते हैं चित्र या मूर्ति को जल-भोजन पिलाने-खिलाने, उसे सुलाने-जगाने तथा उसकी आरती-वन्दना करने का उपक्रम करना। यह मूर्ति या चित्र को देखकर उन महापुरुषों के स्मरणों से प्रेरणा लेने को छोड़कर स्थूल क्रिया की खटपट में पड़ जाना है। रह गया, जिनमें ऐसी भावुकता है, जो लोग चित्र-मूर्ति को खिलाना-पिलाना चाहते हैं उन्हें खिलाने-पिलाने दीजिये। उनके विरोध के चक्कर में पड़ जाना तो अपना ही अज्ञान होगा। क्योंकि संसार में अनेक विचार और संस्कार के लोग हैं, सबके पीछे न पड़कर अपने सही पथ पर अग्रसर होते रहना है।

रही माता-पिता और गुरुजनों के चित्रों को जूते मारने की बात, यह तो हद दर्जे की बेवकूफी होगी। क्योंकि चित्रों की कोई उपयोगिता ही नहीं है, ऐसा तो कोई विवेकवान नहीं कहता।

विवेकवान मूर्ति एवं चित्र को केवल स्मृति के आधार मानते हैं; भावुकजन उन्हें रोटी-दाल खिलाना चाहते हैं। उन्हें खिलाने दीजिये।

409. प्रश्न—राम, कृष्ण आदि शास्त्रों के अनुसार रावण, कंस आदि पापी मनुष्यों का वध करने के बावजूद भी पूजे जाते हैं। क्या उन्होंने वध करके पाप नहीं किया, या वे शास्त्र ही झूठे हैं?

उत्तर—श्रीराम, श्रीकृष्ण राजनीतिक नेता थे। पापियों को मारना उनका काम था। फिर राजनीति में तो विरोधी पक्ष ही पापी होता है। हिन्दुस्तान के ख्याल से पाकिस्तान पापी है और पाकिस्तान के ख्याल से हिन्दुस्तान। राजनीति को छोड़कर धर्म के क्षेत्र में देखो, एक सम्प्रदाय के ख्याल से दूसरे सम्प्रदाय के लोग नास्तिक, काफिर, बेदीन, पापी, अपवित्र एतदर्थ नरक में जाने के अधिकारी होते हैं।

राम और कृष्ण के विषय में जितना लिखा गया है, वह सब इतिहास नहीं है; किन्तु उनमें इतिहास की झलकियां हैं। क्योंकि उनमें अधिकतम अतिरंजन एवं अतिशयोक्तियां हैं। उनमें कितना सत्य है और कितना काल्पनिक है, कह पाना कठिन है।

राम और कृष्ण के विषय में पाप और पुण्य की बातें छोड़ देने के बाद भी उनमें कुछ ऐसी ऊंचाइयां और गहराइयां हैं जिनसे वे पूजे जाते हैं।

410. प्रश्न—राम और कृष्ण ने पापियों को मारकर देश को सुखी बनाया; इसलिए उनकी पूजा घरोघर होती है; परन्तु गांधी जी ने भी अंग्रेजों को भारत से भगाकर देश को सुखी बनाया, तो उनकी पूजा घरोघर क्यों नहीं होती?

उत्तर—राम-कृष्ण के समय में उन्हें कोई नहीं पूजता था। उनके जीवनकाल के हजारों वर्ष बाद उनको ईश्वर के अवतार मानकर लोग पूजना शुरू किये। गांधी जी को भी आगे चलकर ईश्वर-अवतार होने की ना-समझी की जा सकती है।

411. प्रश्न—चरित्र-सुधार के लिए की गयी दृढ़ प्रतिज्ञा कैसे निभायी जाये?

उत्तर—जब चरित्र-सुधार में महान लाभ निश्चय हो जायेगा, निरन्तर सावधानी बरती जायेगी और दुर्गुणों को भयंकर सर्प एवं विषवत समझा जायेगा, तब चरित्र-सुधार की प्रतिज्ञा सरलता से निभायी जा सकती है। प्रतिज्ञा किसी महान पुरुष के सामने ली जाये तो अति उत्तम हो। कोई महान पुरुष न मिले तो अपने किसी अच्छे मित्र या बड़े पुरुषों के सामने ली जाये।

412. प्रश्न—क्या आत्मा जब जीवन्मुक्त हो जाता है तभी वह परमात्मा कहलाता है?

उत्तर—जीव का स्वाभाविक स्वरूप यदि निर्मल न हो तो वह निर्मल हो ही नहीं सकता। कोयला दूसरी वस्तु में लग जाये तो वह धोने से धुल जाता है; परन्तु स्वयं कोयला को सौ मन साबुन से धोया जाये तो भी वह उजला नहीं होगा। जीव स्वभावत: मलिन नहीं, किन्तु जड़ सम्बन्ध से उसमें मलिनता का आभासमात्र है। विवेक द्वारा मलिनता हट जाने पर वह निर्मल एवं जीवन्मुक्त है और जीवन्मुक्त आत्मा ही सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त है, उसी को परमात्मा कह सकते हैं। उसके अतिरिक्त परमात्मा तो केवल मन की कल्पना है।

413. प्रश्न—आज सद्गुरु कबीर के अनुयायियों में दो मत क्यों हैं? एक मानता है सद्गुरु का शरीर कमल फूल से हुआ तथा दूसरा मानता है कि माता-पिता से हुआ, सो क्यों?

उत्तर—हर महान पुरुष की शरण में हर श्रेणी के लोग आते हैं। सद्गुरु कबीर की शरण में भी इसी प्रकार हर श्रेणी के लोग आये। कबीर देव का उज्ज्वल पारख ज्ञान पाकर कुछ लोग विचारक हो गये और शेष भावुक ही बने रहे। कबीरदेव जैसे वस्तुपरक बुद्धिवादी निराले पारखी गुरु को पाकर वस्तुतथ्य के ठोस धरातल को छोड़कर कल्पना के स्वप्नलोक में भटकना कबीरदेव की कीर्ति में कलंक लगाने की चेष्टा करना है।

सृष्टिक्रम और कारण-कार्य-व्यवस्था के अटल प्राकृतिक नियमों से आंखें मूंदकर अलीक आकाशवाणी और अति मानवीय तत्त्व की कल्पना करना सद्गुरु कबीर को नहीं समझना है।

414. प्रश्न—सबसे बड़ा सुख और दुख क्या है?

उत्तर—सबसे बड़ा सुख सन्तोष है और सबसे बड़ा दुख विषय-इच्छा तथा मन की मलिनता है।

415. प्रश्न—कर्म, उपासना तथा योग की वास्तविकता क्या है?

उत्तर—दान, सेवा, लोकमंगल का कार्य एवं समस्त पवित्राचरण कर्म की वास्तविकता है; निर्मल सन्त एवं पूर्णकाम सद्गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धाभक्ति एवं स्वस्वरूप चेतन का निरन्तर चिन्तन उपासना की वास्तविकता है और मन का एकाग्र होना—योग की वास्तविकता है।

416. प्रश्न—शरीर का संचालन आत्मा करता है, तो समग्र सृष्टि का संचालन कौन करता है?

उत्तर—सृष्टि द्रव्य और गति का समुच्चय है। मौलिक द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहें या ठोस, तरल, वायव्य, अतिवायव्य कहें या आक्सीजन,

हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि कहें; अनादि हैं। द्रव्य अनादि तो उसकी गति भी अनादि। द्रव्य की गति ही उसकी सम्पत्ति है। अतएव सृष्टि के मौलिक द्रव्य (तत्त्व) अपने गुण, धर्मों एवं गति से सम्पन्न स्वयं अपने नियम में बरतते हैं, जिसे ऋग्वेद में ऋत कहा गया है। सारांश यह हुआ कि तत्त्वों के गुण, धर्मों एवं क्रिया से सृष्टि स्वयं प्रवाह रूप चलती रहती है।

417. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब चौका करते थे?

उत्तर—श्री कबीर साहेब निर्भ्रांत सत्य द्रष्टा थे। वे चौका नहीं करते थे और न बीजक में उसकी कोई चर्चा है।

418. प्रश्न—चौका का क्या महत्त्व है जो अभी कबीरपंथ में चलता है?

उत्तर—चौका सनातनधर्मियों की सत्यनारायणव्रत कथा के समान एक काल्पनिक सात्विक पूजा है। समाज में अनेक योग्यता वाले लोग होते हैं। कबीरपंथ की कुछ शाखाओं में यह चलता है, पारख सिद्धान्त में नहीं चलता।

419. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब ने वंश बयालिस की स्थापना की थी?

उत्तर—सद्गुरु कबीर स्वरूपज्ञान, सदाचार, मानवता आदि के उपदेशक थे। वे विरक्त संत थे, उनका मौलिक ग्रन्थ बीजक पढ़कर उनका सिद्धान्त समझिये। वे वंश बयालिस के स्थापक नहीं।

420. प्रश्न—साधक के मन में निरन्तर कौन-से विचार आने चाहिए जिससे वह साधना पथ से न डिगे?

उत्तर—शरीर नाशवान है, वह आजकल में छूट जायेगा। जहां अन्ततः कुछ अपना नहीं है, वहां की वस्तुओं के लिए राग-द्वेष में क्यों पड़ना?

421. प्रश्न—निष्काम भक्ति क्या है?

उत्तर—जो केवल चित्तशुद्धि के लिए की जाये।

422. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर भक्ति कैसे करें?

उत्तर—जैसे बाजार के हल्लागुल्ला के बीच में भी अपना सौदा कर लिया जाता है।

423. प्रश्न—सत्संग के समय जो सद्वृत्ति रहती है, वह पीछे क्यों नहीं रहती?

उत्तर—क्योंकि सद्ग्रंथ अध्ययन, सद्विचार एवं साधना का पुरुषार्थ जारी नहीं रखा जाता।

424. प्रश्न—भक्ति-प्रधान व्यक्ति का लक्षण क्या है?

उत्तर—वह निर्मान, सेवापरायण, विनयी, अनासक्त तथा सत्यानुरागी होता है।

* * *

425. प्रश्न—मोक्ष कब से और किसके समय से होने लगा?

उत्तर—जब जिसको असत्य के त्यागपूर्वक सत्य स्वरूप का बोध हुआ तब उसका मोक्ष हुआ। जगत अनादि है जिसमें खरबों वर्षों का भी कोई महत्त्व नहीं है। ऐसे सीमातीत अनादि जगत में कौन बता सकता है कि कब से मोक्ष चालू हुआ है। जब कभी कोई सत्य स्वरूप में स्थित हुआ वह मुक्त हुआ।

426. प्रश्न—जान और ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर—जान मात्र सब जीव हैं; परन्तु बन्धन में हैं। ज्ञान का अर्थ है विषयासक्ति का त्याग करके स्वरूप में स्थित हो जाना।

427. प्रश्न—ज्ञान की बात आचरण में नहीं आती, यदि आचरण में लाने का प्रयत्न करते हैं तो गृहस्थी की जिम्मेदारी के कर्तव्य से रहित होते हैं?

उत्तर—धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते ज्ञान की बातों का आचरण होने लगता है। जब आचरण में लाभ निश्चय होगा तब स्वयमेव उधर गति होगी।

रही बात, आचरण करने से कर्तव्य का पालन छूट जायेगा, यह मिथ्या भ्रम है। भला, सन्मार्ग पर चलने से किसी का उचित कर्तव्य छूट जाता है? सदाचारी होकर कर्तव्य को सही ढंग से निभाया जा सकता है।

428. प्रश्न—यदि जीव के स्वरूप में भूल है तो उसका छूटना असम्भव है और यदि स्वरूप में नहीं है तो दुख क्यों है?

उत्तर—जीव के स्वरूप में भूल इसलिए नहीं है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष त्याग होता है। इसीलिए विवेकवान भूल को त्यागकर दुखों से मुक्त हो जाते हैं।

429. प्रश्न—प्रवृत्ति और निवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—मन का राग-द्वेष में फंसे रहना ही प्रवृत्ति है तथा राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त रहना ही निवृत्ति है।

430. प्रश्न—मनुष्य के ज्ञातव्य, कर्तव्य तथा प्राप्तव्य क्या हैं?

उत्तर—जड़-चेतन की भिन्नता तथा उसके स्वरूप ज्ञातव्य हैं, विषयासक्ति का त्याग कर्तव्य है तथा स्वरूपस्थिति प्राप्तव्य है।

431. प्रश्न—मूर्ति और फोटो की पूजा तथा चेतन-पूजा क्या है, दोनों के हानि-लाभ क्या हैं?

उत्तर—किसी महापुरुष तथा सन्त पुरुष की मूर्ति या फोटो यदि हो तो उसे स्वच्छ रखना उसकी पूजा है तथा उसको देखकर उन महापुरुषों की स्मृति में अपने भाव को पवित्र करना उससे लाभ लेना है। हानि यह है कि उसी जड़पिण्ड की धूप-दीप, भोग-राग में लगकर विवेक को जगाना ही नहीं।

चेतन-पूजा है जीव-दया की दृष्टि से किसी को भी खिला-पिला देना तथा ज्ञान एवं सदाचरण सम्पन्न पुरुष की मन, वाणी, कर्म से सेवा-उपासना करके उनसे ज्ञान तथा रहनी की प्रेरणा ग्रहण करना। चेतन-मूर्ति ही तुम्हें बोध दे सकती है।

432. प्रश्न—अच्छे सन्त किसे कहते हैं और उसकी परख कैसे हो?

उत्तर—जो विषयासक्ति, राग-द्वेष तथा उद्वेग से रहित है, वही अच्छा सन्त है। उसकी परख उसकी संगत करके होगी, परन्तु अपने में भी जब परखने की क्षमता हो।

433. प्रश्न—लोग बहुत धनी, गरीब तथा अति गरीब हैं। यह भिन्नता क्यों?

उत्तर—अपने-अपने पूर्व जन्मों के कर्मों की भिन्नता तो है ही, परन्तु वर्तमान की समाज-व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था की बहुत बड़ी गड़बड़ी है। इस विभिन्नता का यही कारण है।

जो मनुष्यों के शारीरिक गठन, बुद्धि और प्रतिभा में अन्तर है, यह उनके पूर्व जन्मों के कर्मों के परिणाम हैं। ऊंची योग्यता वाला व्यक्ति अधिक धन कमा लेगा, परन्तु वह जो अपने श्रमिकों में धन का उचित बंटवारा नहीं करता है तथा अपने निर्वाह के अतिरिक्त शेष धन को लोकमंगल में नहीं लगाता है तो यह उसका अपराध है। गरीबी-अमीरी की खाई पाटने के लिए सबको श्रमशील होना चाहिए तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था होनी चाहिए।

434. प्रश्न—पुनर्जन्म प्रत्यक्ष नहीं, वह अनुमान पर निर्भर करता है। क्या यह अनुमान सत्य है?

उत्तर—हर कार्य के पीछे कारण होता है। इस जीवन के पीछे भी कारण है। यह जीवन अचानक नहीं आ गया। जड़ और चेतन का संयोग जन्म तथा

उनका वियोग मृत्यु है और यह प्रवाह लोग सदा से देख रहे हैं। सबके कर्मों तथा फल भोगों की विभिन्नता तो प्रत्यक्ष ही है। अतएव पुनर्जन्म अनुमान साधित होते हुए प्रत्यक्ष सम्बलित एवं सत्य है।

435. प्रश्न—अपने पर्वत तुल्य दोष भी नहीं दिखते हैं और दूसरे के लघु दोष भी बड़े दिखते हैं, ऐसा क्यों?

उत्तर—जो बुराई स्वभाव में ढल जाती है, वह सहसा देखने में नहीं आती। दूसरे की बुराइयां अपने स्वभाव में नहीं हैं इसलिए वे दिख जाती हैं। इसके अतिरिक्त अपने दोष जानकर भी मनुष्य आंखें इसलिए मूंदता है क्योंकि उनको त्यागने में परिश्रम पड़ता है। दूसरे की बुराइयों को देखने तथा कहने में कुछ मेहनत नहीं। और फिर दूसरे की बुराइयों को देख तथा कहकर अपनी बुराइयों के लिए मनुष्य को सन्तोष मिलता है। दूसरों को बुरा कहकर लोगों में अपनी धाक भी जमती है। परन्तु यह सब मन का भ्रम है। दूसरे की बुराई करने वाला शीघ्र पतित हो जाता है।

436. प्रश्न—श्रद्धेय के समीप रहकर जैसी श्रद्धा बनी रहती है, वैसी श्रद्धा उनसे दूर रहकर भी बनी रहे, इसके लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर—श्रद्धा मन का बहुत ऊंचा गुण है। यह शीघ्र कहीं नहीं लगती, और यदि श्रद्धा का आधार सच है, श्रद्धालु पूर्ण समझदार है तथा श्रद्धेय पूर्ण पुरुष है, तो श्रद्धा घटने की बात ही नहीं है।

श्रद्धा बनी रहे इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता और जो कुछ करके श्रद्धा होती है वह नकली है। जब तक जिस वस्तु में सुख-लाभ निश्चय रहेगा, तब तक उसके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा रहेगी। जिस लाभ को लेकर श्रद्धा होती है वह निश्चय बने रहने पर श्रद्धा बनी रहती है और उसके उड़ जाने पर श्रद्धा भी उड़ जाती है। श्रद्धेय की अपूर्णता से भी श्रद्धा घट जाती है।

437. प्रश्न—साधु को आश्रम में रहकर तथा घूमते-विचरते हुए कौन-कौन-सी प्रमुख सावधानियां बरतनी चाहिए?

उत्तर—साधु या महंत को चाहिए कि वे आश्रम में स्त्री को न रखें। जो अतिथि हों थोड़े दिनों तक रहती हैं उनके लिए कोई बात नहीं, परन्तु उनके साथ उनके घर का कोई पुरुष होना चाहिए।

झाड़ू लगाना, बरतन मांजना, सफाई का काम करना, भोजन पकाना तथा आश्रम के अन्य कामों में सक्रिय रूप से लगकर सेवा का कार्य करना, धार्मिक ग्रंथों का पाठ, पूजा, कथा, सत्संग, पठन-पाठन आलस्य रहित होकर करना, लोभ-लालच, अहंकार तथा झगड़ा छोड़कर विनम्रता, सेवा, समता, त्याग,

सन्तोष हर जगह सुखदायी होते हैं।

भ्रमण में गृहस्थों का सम्बन्ध होता है। साधु को चाहिए कि वह गृहस्थों के यहां जाकर स्त्रियों से घनिष्ठता न करे। उनको उपदेश अन्य पुरुषों की उपस्थिति में करे, स्त्रियों से अपनी शारीरिक सेवा न ले। भक्तजन जो सेवा कर सकें उतने में सन्तुष्ट रहे। साधु आपस में समता तथा प्रेम का बरताव रखें। व्यवहार व परमार्थ के कामों में आगे रहना यहां भी आवश्यक है।

सार—साधु को श्रमशील, सेवापरायण, सन्तोषी, सरल, समतालु, स्वाध्यायनिष्ठ, साधना-परायण, शुद्ध ब्रह्मचर्य पालक, वैराग्यवान, कुसंग त्यागी और उद्वेगरहित रहनी बनाना चाहिए।

438. प्रश्न—आप कहते हैं कि स्वयं पूर्ण होकर ही प्रचार क्षेत्र में उतरना चाहिए, परन्तु देखा जाता है बिना पूर्णता प्राप्त किये ही साधु-साधक प्रचार करते हैं और उनसे बहुतों का सुधार भी होता है, तो क्या वे गलत करते हैं?

उत्तर—किसी योग्य एवं पूर्ण गुरु की शरण में रहकर सेवा, स्वाध्याय एवं साधना करते हुए सामने मिले श्रद्धालुओं को ज्ञान की चर्चा सुना देना ठीक है। परन्तु गुरु बनकर सक्रिय रूप में प्रचार क्षेत्र में उतरना अपूर्ण साधकों के लिए खतरा है। अपूर्ण गुरुओं, साधुओं, महंतों से जितना ज्ञान का प्रचार होता है, उससे अधिक अज्ञान, ईर्ष्या, वैमनस्य, घृणा, राग-द्वेष, स्वार्थपरता आदि का प्रचार होता है। जिन गुरुओं-साधुओं के पास भक्त एवं मुमुक्षु अपने कल्याण के लिए जाते हैं, यदि वे उनके पास राग-द्वेष तथा स्वार्थपरता पायें, तो उनको क्या शांति मिलेगी! अधिकतम गुरु जो उलझे हुए दिखाई देते हैं, इसका कारण यही है कि वे स्वयं पूर्ण हुए बिना प्रचार क्षेत्र में उतर आये।

वस्तुत: अनासक्त, पूर्ण सन्त पुरुष ही गुरु बनने का अधिकारी है, क्योंकि वह प्राप्त पदार्थों के राग-द्वेष में नहीं उलझेगा। अनासक्त पुरुष ही प्रतिष्ठा पाकर निर्मल रह सकता है। अधूरे लोग गुरु बनकर संसार से प्रतिष्ठा पाने पर राग-द्वेष के विकारों में डूब जाते हैं और उनके द्वारा संसार को बुरा आदर्श ही मिलता है।

सारे उपदेष्टा यही तो उपदेश कर रहे हैं कि राग-द्वेष से रहित होकर शांति प्राप्त करना चाहिए और यदि वे स्वयं राग-द्वेष में उलझे हुए अशांत हैं तो उनके उपदेशों का क्या मूल्य है? अतएव अधूरे गुरुओं द्वारा अच्छाई की अपेक्षा अंतत: बुराई का अधिक प्रचार होता है।

साधक जिस अपनी शक्ति को गुरुवाई तथा प्रचार में लगाता है उसी को यदि सेवा, स्वाध्याय एवं साधना में लगाकर वैराग्य की रहनी बनावे और दीर्घकाल अभ्यास करके पूर्ण अनासक्त हो जाये और फिर उसके बाद वह

दूसरे के कल्याण की जिम्मेदारी ले, गुरु बने; तो संसार का सही कल्याण होगा। इससे साधु-समाज से गलत आदर्श समाप्त हो जायेगा और सर्वत्र लोकमंगल का रचनात्मक कार्य होने लगेगा।

439. प्रश्न—गुरु के प्रति हमारा कर्तव्य क्या है?

उत्तर—गुरु के द्वारा जो मिलता है यदि उसमें तुम्हें लाभ निश्चय होगा तो उनके प्रति तुम्हें क्या करना चाहिए, यह बताना नहीं पड़ेगा।

440. प्रश्न—क्या स्वभाव सुधरता है?

उत्तर—बिलकुल। उसी के लिए तो साधक होने का बीड़ा उठाया जाता है।

441. प्रश्न—जीवन की परम उपलब्धि क्या है? साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए साधक की पहचान क्या है?

उत्तर—जीवन की परम उपलब्धि स्वरूपस्थिति की प्राप्ति है। राग-द्वेष रहित मन की शांति को पा जाना एवं अनुद्वेग, निष्काम जीवन ही साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुए साधक की पहचान है।

442. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर अपना उद्धार कैसे करें?

उत्तर—पराई स्त्री को मां, बहन तथा पुत्री समझें और स्त्रियां पराये पुरुषों को पिता, भाई एवं पुत्र समझें। शक्ति चले तक किसी को पीड़ा न दो। दूसरे का धन अनुचित रूप में न लो। मेहनत करके खाओ। मांस, मछली, अण्डा, शराब, गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि का सर्वथा त्याग करो। अपनी कमाई में से कुछ लोकमंगल के कार्यों में लगाओ। दीनों की सहायता एवं सन्तों की सेवा करो। सत्संग करो, भक्ति करो, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करो। दूसरे किसी में दोष-दर्शन न कर केवल सबसे सद्गुण लो। देवी-देवादि की सारी भ्रांतियों को सत्संग, विवेक से हटाकर स्वस्वरूप चेतन का ज्ञान प्राप्त करो और दया, क्षमा, शील, विचार, सन्तोष से रहकर साधना द्वारा अपना कल्याण करो।

*　　　　*　　　　*

443. प्रश्न—पूर्णज्ञानी पुरुष क्या दूसरे की मन-गति जान सकता है तथा क्या उसके शरीर में कोई फेर-फार होता है?

उत्तर—जो ज्ञानी है, अपने मन का द्रष्टा है, वह संगत पड़ने पर बहुत कुछ दूसरे के स्वभाव की परख कर लेता है; परन्तु दूसरे के मन के संकल्पों को नहीं जान सकता। पूर्ण ज्ञानी के शरीर में कोई फेर-फार नहीं होता, केवल

आन्तरिक मन की स्थिति दिव्य हो जाती है।

444. प्रश्न—मन को स्थिर कैसे करें?

उत्तर—विवेकी संतों की उपासना, विवेक, वैराग्य और अभ्यास द्वारा मन स्थिर होता है। साधना सम्पन्न सन्त पुरुष के सहवास की बड़ी आवश्यकता है। सारा भेद भेदी से मिलता है।

445. प्रश्न—क्या आपको स्वरूप साक्षात्कार हुआ है? यदि हुआ है तो आपकी मानसिक दशा क्या है?

उत्तर—"मुझे स्वरूप साक्षात्कार हुआ है"—यह कहने का विषय नहीं है, रहने का विषय है। हम कह दें, तो आप समझ नहीं सकते। हां, इतना कह सकता हूं कि मेरी सारी कामनाएं पूरी हैं। मैं जिनके साथ रात-दिन वर्तमान करता हूं उन साधु-ब्रह्मचारियों, भक्तों एवं मनुष्यों से पूर्ण सन्तुष्ट हूं। मेरे शरीर द्वारा जो कुछ थोड़ा-बहुत हो रहा है, उसमें भी पूर्ण सन्तुष्ट हूं। मैं कैसे कहूं कि अपनी प्रतिष्ठा पाकर मेरे मन में हर्ष की गुदगुदी नहीं लगती, परन्तु उसे तुच्छ, नश्वर, स्वप्नतुल्य समझकर उसके अहंकार से रहित रहने का प्रयत्न करता हूं।

जो लोग मेरी निन्दा किये, मेरे ऊपर दोषारोपण किये, मैं नहीं कह सकता कि मेरे मन में उनके लिए क्षण मात्र के लिए घृणा न आ गयी हो, परन्तु यह मेरा प्रयत्न है कि मैं उनके प्रति सहृदय रहूं। जब-जब मेरे ऊपर अपमान-निन्दा के काले बदल आये तब-तब मुझे अपने जीवन में अद्‌भुत प्रकाश, साहस और धैर्य मिले। आज से बहुत पूर्व ही मुझे अनुभव हो गया है कि प्रतिकूलता मेरी परम प्रिया एवं मोक्ष प्रदायिका है।

जीवन में हानि और अभाव के खटक नहीं रहे तथा मन सदैव प्रसन्नता एवं तृप्ति में भरा है, विशेष क्या कहूं।

446. प्रश्न—'श्री' माया को कहते हैं फिर वैराग्यवान सन्तों के नाम में उसका विशेषण क्यों लगाया जाता है?

उत्तर—श्री का अर्थ शोभा भी है। ऐसे स्थल पर अर्थ है सद्‌गुण रूपी शोभायुत।

447. प्रश्न—तन, मन तथा धन सद्‌गुरु को अर्पित करने के बाद शिष्य के पास क्या बच रहता है?

उत्तर—कुछ न बच रहना ही तो शिष्यत्व है; परन्तु जब ऐसा योग्य पूर्ण ज्ञान-वैराग्ययुत सद्‌गुरु मिल जाये।

448. प्रश्न—एक वृक्ष में सभी फूल-फल एक ही प्रकार के होते हैं, फिर एक ही माता-पिता के सब बच्चे एक ही गुण-कर्म के क्यों नहीं?

उत्तर—वृक्ष केवल जड़ है, इसलिए एकरूपता है; परन्तु मनुष्य चेतन है। यह अविनाशी चेतन अपने-अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न गुणों वाले होते हैं। चेतन जीवों में स्वतंत्र कर्म करने की क्षमता होने से उनके शरीर, बुद्धि, गुण आदि में भेद हो जाते हैं।

449. प्रश्न—वैरागी दुखी क्यों?

उत्तर—दुख दो प्रकार का होता है एक मानसिक तथा दूसरा शारीरिक। शारीरिक दुख ज्वरादि तो सबको हो जाते हैं; परन्तु चिंता, शोक, घृणा, ईर्ष्या-द्वेषादि रूप मानसिक दुख ज्ञानी पुरुष को नहीं होता और इस प्रकार दुख जिसको हो वह वैरागी नहीं।

450. प्रश्न—अज्ञानसुषुप्ति और ज्ञानसुषुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रकरण भेद से शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। वैसे देह-गेहादि पंचविषयों में आसक्त होकर कल्याण-साधना से दूर रहना अज्ञानसुषुप्ति है और शास्त्रीय तथा बौद्धिक ज्ञान में उलझकर सत्यविवेक एवं सत्यरहनी से दूर रहना ज्ञानसुषुप्ति है।

451. प्रश्न—स्मरण तथा संस्कार में क्या अन्तर है?

उत्तर—मन तथा इन्द्रियों के प्रत्यक्ष व्यवहार का अन्त:करण पर पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब ही संस्कार है और उनमें से कुछ का सामने आ जाना (ख्याल हो जाना) स्मरण है।

452. प्रश्न—आज का युवा वर्ग अध्यात्म से दूर क्यों भागता है?

उत्तर—उसे वह विषय पढ़ाया नहीं जाता, अत: अज्ञान के कारण भागता है। फिर सबके लिए ऐसा नहीं है, कितने युवक अध्यात्म मार्ग में अग्रसर हैं।

453. प्रश्न—समाज में साधुओं से इतनी घृणा क्यों होती जा रही है?

उत्तर—मूढ़ मानव में घृणा, द्वेष, मोह आदि के अलावा है ही क्या! समझदार किसी से घृणा नहीं करता है, सब से शिक्षा लेता है।

वैसे साधुतारहित केवल साधु-वेष धारण करने वालों को देखकर लोगों में अश्रद्धा हो, तो वह स्वाभाविक है। सच्चे साधु भी हैं, उनकी संगत करनी चाहिए।

454. प्रश्न—अधिक जप करने का क्या फल है?

उत्तर—आज तक जप किये, अब सत्संग तथा स्वाध्याय द्वारा जड़-चेतन, सत्य-असत्य आदि के निर्णयी बनिये। जीवन को विचार एवं विवेक प्रधान बनाइये। क्षमा, दया, सन्तोष, शील, सत्य आदि का निरन्तर स्मरण ही सच्चा जप है, जिसका फल अमोघ शांति है।

455. प्रश्न—धन, पुत्रादि प्रारब्ध से मिलते हैं कि पुरुषार्थ से?

उत्तर—प्रारब्ध में पुत्र का मिलना न हो, तो नहीं मिल सकता। परन्तु धनादि पुरुषार्थ से मिलता है। प्रारब्ध की बलिष्ठता होने से धन की वृद्धि होना स्वाभाविक है, परन्तु पुरुषार्थ निरर्थक नहीं जा सकता।

456. प्रश्न—कुछ कबीरपंथी लोग यादव या निम्न जाति के हाथ का पानी यह जानकर नहीं पीते कि वे मांस-शराब आदि का सेवन करते हैं, परन्तु उनके हाथ का दूध पी लेते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—आपके पास कबीरपंथी हैं इसलिए आपकी दृष्टि उन पर गयी। गैर कबीरपंथी भी ऐसा करते हैं जो शाकाहारी एवं सदाचारी हैं। स्वच्छ होते हुए नीच जाति मानकर किसी के हाथ का पानी न पीना न्याय नहीं है। जिसका आचरण ऊंचा है, वह ऊंचा है; जाति-पांति मिथ्या है। अब कोई मांसाहारी के हाथ का पानी नहीं पीता, तो वह अपने आचार की दृष्टि से ठीक करता है। दूध भी उनके हाथ का न ले तो ठीक ही है। परन्तु आचार का भी नियम सीमित होता है। जितना सहज चलाना सम्भव है, उतना चलाया जा सकता है। फिर पानी हो या दूध मांसाहारी-शराबी उनमें मांस-शराब तो मिला नहीं देता है। जितने नियम में चलकर जिनका मन स्वच्छ लगता है, उतना वे करते हैं या जितना जो चला पाते हैं उतना चलाते हैं। आखिर नियम भी तो अपूर्ण होते हैं और समय-समय पर बदलते रहते हैं।

457. प्रश्न—पानी को छानने पर उसमें से कचड़ा आदि तो निकल जाते हैं, पर जल-प्राणी उसमें जन्मते-मरते तथा मल करते हैं, तो उसे कैसे छाना जाये?

उत्तर—पानी पीया ही न जाये, यह तो सम्भव नहीं। यह प्रश्न हो सकता है कि जब जल-प्राणी के मल-मूत्र पानी में रहेंगे ही, तब कचड़ा भी क्यों छाना जाये! मेरे अपने विचार से कचड़ा जो छाना जा सकता है, छान लें, जो छाना ही नहीं जा सकता उसके लिए मजबूरी है। पानी में जल-प्राणी के मल-मूत्र रहेंगे ही यह जानकर मनुष्य ऐसा न करे कि वह अपने मल-मूत्र जान-बूझकर पानी में मिलाकर पीने लगे। उसे चाहिए जितना सम्भव हो पानी को स्वच्छ रखे, उसे छानकर पीये।

458. प्रश्न—नलों में चाम के वायसर लगे रहते हैं, उनका पानी पीयें या नहीं?

उत्तर—जिनसे बन सके न पीयें। नल में रबर का वायसर लगाकर पीयें। फिर अंतत: मनुष्य शक्ति के भीतर जितनी स्वच्छता कर सकता है, उतनी करे। मनुष्य जितने क्षेत्र में अपना आचार चला पाता है, चलाता है, जहां नहीं चला पाता, वहां वह मजबूरन बरतता है, दूसरा चारा नहीं। प्रकारान्तर से यह बात सब पर लागू है।

हवा में गंदगी भी रहती है जो शरीर में लगती है, परन्तु जानबूझकर कोई गंदगी नहीं लगाता। गंदी गली का कचड़ा हवा के साथ उड़कर अंगों में पड़ जाता है, परन्तु कोई समझदार गंदी गलियों में नहीं लोटता। हांकते हुए भी कभी-कभी मक्खी भोजन पर बैठ जाती है, परन्तु जान-बूझकर कोई सदाचारी अपने साथ बैठाकर अपनी थाली में सूअर को नहीं खिलाता और सूअर से मक्खी कम गंदी नहीं। सूक्ष्म विचार करने पर संसार की समस्त वस्तुएं अशुद्ध हैं और उनसे बचा नहीं जा सकता। अतएव शक्ति चले तक गंदगी का त्याग करते हुए सदाचार का पालन करें। कबीरदेव कहते हैं "खाने-पीने की वस्तु, यहां तक शरीर के जन्म का कारण ही अशुद्ध और छूत वाला है। छूत से वही मुक्त है जो विषयासक्ति रूपी माया से रहित है।"

छूतिहिं जेंवन छूतिहिं अँचवन, छूतिहिं जगत उपाया।
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित, जाके संग न माया॥

(बीजक, शब्द 41)

459. प्रश्न—कबीरपन्थ में बच्चों को बचपन में कंठी धारण करा देते हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—उचित है, इससे उन पर भक्ति-भावना के ही संस्कार पड़ेंगे। हां, उन्हें समझदार होने पर अपने बोध के अनुसार किसी विवेकी गुरु से विधिवत दीक्षा लेनी चाहिए। असली गुरुदीक्षा तो वही है जो समझ-बूझकर ग्रहण की जाती है।

460. प्रश्न—जीव को मुक्ति मिलने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—जीव सारे जड़ दृश्यों से सर्वथा पृथक है। सारे संसार का, यहां तक शरीर का सम्बन्ध स्मरण मात्र है। जब ख्याल भूल जाता है तब पास की वस्तु भी खो जाती है। हम नित्य सुषुप्ति अवस्था में संसार तथा शरीर को सर्वथा भूले रहते हैं। दुख किसी को प्रिय नहीं और बाहरी वस्तुओं से जीव को दुख मिलता है। जो अनुकूल प्राणी-पदार्थ हैं उनमें भी हमें शांति नहीं मिलती। क्योंकि संसार की चाहे जितनी अनुकूलता हो, प्रतिकूलता में बदलती है, स्मरणों का कारण बनती है और स्मरणरहित होकर ही शांति मिल सकती है। संसार में जितना भी

सम्बन्ध है मानना मात्र है और मान्यताएं तो बदलती ही रहती हैं। अतएव जीव का नित्य सम्बन्ध किसी से भी नहीं है। वह वासना छोड़कर आज ही सबसे मुक्त हो जाता है। सबके राग से छूट जाना ही आज प्रत्यक्ष मोक्ष है। मोक्ष को समझने के लिए अपने आप में भी भक्ति, वैराग्य एवं साधना की योग्यता अर्जित करना पड़ता है। कक्षा एक का लड़का एम० ए० का विषय नहीं समझ सकता।

461. प्रश्न—जीव का घर क्या है?

उत्तर—उसका अपना चेतन स्वरूप। अपना असली घर वही है जो कभी अपने से पृथक न हो। बाहर के घर पृथक हो जाते, छूट जाते हैं। परन्तु अपने आत्मा से हम स्वयं अलग नहीं हो सकते। मैं को छोड़कर मैं कभी नहीं रहता। सुषुप्ति अवस्था में किसी की आवाज सुनकर मैं ही जागता और उसे उत्तर देता हूं। अतएव जीव का सम्बन्ध केवल जीव से ही है। उसका बाहर का सारा सम्बन्ध झूठा है। अतएव जीव का घर उसका अपना चेतन स्वरूप ही है ''नित पारख प्रकाश जो, सोई निज घर जान।'' (पंचग्रंथी)

462. प्रश्न—हम कैसे कह सकते हैं कि अन्य खानियों में वासना नहीं होती?

उत्तर—जीवन-निर्वाह के धंधे एवं विषयों की वासनाएं तो सब खानियों में होती हैं, परन्तु विशेष पाप-पुण्य की वासना मनुष्य से भिन्न खानियों में नहीं बनती, क्योंकि वहां भले-बुरे का अधिक ज्ञान नहीं है।

463. प्रश्न—निज स्वरूप के दर्शन कैसे हों?

उत्तर—निज स्वरूप के दर्शन नहीं होते। निज स्वरूप तो द्रष्टा है। द्रष्टा दृश्य में कैसे आ सकता है? अपने आप को सबका द्रष्टा समझकर और सारे दृश्यों से लौटकर अपने आप में आ जाना ही निज स्वरूप के दर्शन हैं। इसके लिए अनासक्ति, वैराग्य, स्वरूपज्ञान तथा महापुरुषों की सेवा की जरूरत है।

464. प्रश्न—मानव या पशु के शरीर में फोड़ा या रोग हो जाने पर उनमें कीड़े पड़ जायें तो दवाई करनी चाहिए कि नहीं?

उत्तर—मानव या पशु के शरीर में फोड़ा या रोग हो जाने पर उनमें कीड़े पड़ जायेंगे तो दवाई करनी ही पड़ेगी। जिस पशु को तुम पाल रखे हो उसकी सेवा करना कर्तव्य है। न सेवा कर सको तो न रखो। हां, अपने शरीर में रोग हो, कीड़े पड़ें तो उसमें चाहो दवाई न छोड़ो। इसी प्रकार खेत की फसल में तुम चाहो दवाई छोड़ो या न छोड़ो, स्वतन्त्र हो। जो अपना व्यक्तिगत है, उसमें स्वतन्त्र हो।

* * *

465. प्रश्न—मानसिक तनाव क्यों होता है?

उत्तर—अविवेक के कारण और तथ्य को न समझ पाने से मानसिक तनाव होता है। शरीर की नश्वरता, मलिनता, जड़ता और दुखरूपता का ज्ञान न होने से तथा काम-भोग के भयंकर परिणाम की अन्तर दृष्टि न होने से हम कामवासना के मानसिक तनाव में पड़ते हैं। हमारा अन्ततः किसी प्राणी से कोई सम्बन्ध न होने से हमें किसी से राग और द्वेष नहीं करना चाहिए। विवेक न होने से प्राणियों में अहंता-ममता बनाकर हम राग-द्वेष के मानसिक तनाव में पड़ते हैं। वर्तमान में खाना-पीना और दूसरे की सेवा में खर्च करना धन का सही उपयोग है। इस बात को न समझकर लोभ के विषय में तनाव होता है। कोई दूसरा व्यक्ति हमारी आध्यात्मिक हानि नहीं कर सकता है। यदि हमें कोई बुरा कहता है, हमारा विरोध करता है, हमारा अपयश फैलाता है तो निश्चय हम से उसके प्रति कोई गलती हो गयी होगी, या उसे हमारे सम्बन्ध में कुछ व्यर्थ भ्रम हुआ होगा, या वह ईर्ष्या के वश होगा। सब प्रकार वह क्षमा का पात्र है। यदि हमने उसके प्रति कोई गलती की है तो उसके मन में हमारे प्रति प्रतिकार की भावना होना स्वाभाविक है। यदि वह भ्रम या ईर्ष्या के वश है तो अबोध है और इस प्रकार किसी प्रकार से कोई हमारी बुराई करे तो वह क्षम्य है। जब हमारी कोई आध्यात्मिक हानि कर ही नहीं सकता, तब हम किसी से वैर या मानसिक तनाव क्यों रखें! अतएव अविवेक मिटकर विवेक की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर मानसिक तनाव मिट जाता है।

466. प्रश्न—शरीर में मन बलवान लगता है और वह हमें विपथ में ले जाता है। क्या इस शरीर में मन से भी कोई बलवान है?

उत्तर—मन से बलवान जीव है जो चेतन स्वरूप है और वही तुम हो। अर्थात तुम मन से भिन्न और उससे बलवान हो। तुम दृढ़ संकल्पपूर्वक लग जाओ तो मन को अपने वश में कर सकते हो।

467. प्रश्न—हम आप लोगों की तरह बनना चाहते हैं, परन्तु परिवार के लोग हमें बनने नहीं देते?

उत्तर—तुम्हारी उन्नति के मार्ग में कोई दूसरा रोड़ा है यह समझना गहरी भूल है। तुम जहां पर रहते हो, वहीं परिवार की सेवा करते हुए मन को निर्मल बनाओ। इसके लिए सद्ग्रंथों का अध्ययन, सत्संग एवं सद्विचार साधन हैं। फिर साधु-संग भी करो।

468. प्रश्न—मनुष्य का मुख्य कर्तव्य स्वरूपज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति ही है या संसार से अनाचार की समाप्ति करना भी?

उत्तर—जो व्यक्ति स्वरूपज्ञान प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जायेगा उसके जीवन से अनाचार का अन्त हो ही जायेगा और उसके आदर्श एवं प्रेरणा से दूसरे के अनाचारों का अन्त होगा। अनाचार अन्त करने का यही रास्ता है न कि केवल लेक्चरबाजी।

469. प्रश्न—हर सम्प्रदाय के लोग अपने मतप्रवर्तक को भगवान मानकर उनके तथा अन्य अनेक कल्पित देवी-देवताओं की आड़ में अधर्म भी करते हैं। इस काम से उनकी अन्तरात्मा क्यों नहीं रोकती?

उत्तर—अन्तरात्मा की आवाज को सुनने के लिए विनम्रता, निष्पक्षता तथा निर्मलता की आवश्यकता है।

470. प्रश्न—हराम की कमाई हराम में ही चली जाती है कि कहीं काम में भी आ जाती है?

उत्तर—हराम की कमाई करो ही मत। यदि किसी ने पहले कर ली है तो उसे अच्छे काम में लगा दे।

471. प्रश्न—इसका पता कैसे लगे कि कौन बदला दे रहा तथा कौन ले रहा है? अपने कर्मों का बदला जीव को चौरासी में ही मिलता है कि मनुष्य तन में आकर?

उत्तर—तुम मन, वाणी तथा कर्मों से किसी को दुख मत दो। यदि किसी द्वारा तुम्हें दुख मिले, तो उसे अपने ही बुरे कर्मों का फल समझो। अपने कर्मों का फल मिलेगा चाहे देर चाहे सबेर, चाहे नर तन में और चाहे अन्य योनि में।

472. प्रश्न—सुखद आहार-विहार क्या है?

उत्तर—सात्विक और सन्तुलित आहार तथा मन को एकाग्रता देने वाला सदाचार।

473. प्रश्न—मनुष्य व्यर्थ खर्च कब करता है?

उत्तर—जब पाप की कमाई करता है।

474. प्रश्न—इस जीवात्मा को तो केवल इस जगत की सीमित जानकारी होती है, जहां तक उसकी परिच्छिन्न वृत्ति पहुंचती है। समस्त जानकारी किस तत्त्व को है, वह हमारे लिए क्या करता है, कहां है?

उत्तर—अल्पज्ञ हो या बहुज्ञ, यह देहधारी जीव ही ज्ञाता है। अनन्त ब्रह्मांड के कण-कण का कोई ज्ञाता होगा, यह निरी कल्पना है। सूखा, दाहा, पाप, ताप और द्वन्द्व से पिसते हुए संसार को देखकर सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान की

कल्पना अपने आप ध्वस्त हो जाती है। जड़-तत्त्वों के अनादि गुण-स्वभावों एवं उनके नित्य विधानों एवं नित्य जीवों के कर्म संस्कारों के अनुसार जड़-चेतनात्मक सृष्टि अपने आप चल रही है। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने आप चेतन स्वरूप को जड़ प्रकृति से पृथक समझकर, विषय-मोह से अपने आपको छुड़ाये, व्यर्थ बातों के सोचने में समय न बिताये।

475. प्रश्न—पानी नहीं बरसने से देश सूखे से परेशान है। क्या कोई शक्ति नहीं है जो पानी बरसा दे?

उत्तर—जिस शक्ति से पानी बरसता है वह जड़-प्रकृति है। उसको ज्ञान नहीं है। उसकी अपनी स्वाभाविक योग्यता से पानी बरसता है। यदि पानी बरसाने वाला कोई द्रष्टा चेतन हो, तो वह ऐसा निर्दय नहीं हो सकता। जिस सूखे से जनता की दशा देखकर एक कसाई भी पिघल जाता है, वह कैसे नहीं पिघलता? पंडित, मौलवी तथा पादरियों को यह ज्ञान आज तक नहीं हुआ कि पानी बरसने का कारण जड़-प्रकृति है, कोई चेतन सत्ता नहीं; और पानी बरसाने के लिए ये हवन, प्रार्थना करते और नमाज पढ़ते जाते हैं।

476. प्रश्न—आत्मचिंतन में मन का भाव रहता है कि अभाव। चिंतन तो मन ही से होता है?

उत्तर—आत्मचिंतन में मन का भाव रहता है, परन्तु वह शुद्ध, शांत, सरल और सुखद होता है। उसके ऊपर एक दशा ऐसी होती है, जब आत्मचिंतन भी न करके केवल मन का द्रष्टा बनकर उसे एकदम संकल्परहित कर दिया जाता है। यहां पर मन का अभाव रहता है।

477. प्रश्न—जीव के पैर-पंख हैं नहीं। वह कैसे दूसरे जन्म में जाता है?

उत्तर—वासना द्वारा।

478. प्रश्न—हम विषयों से मुड़कर अन्तर्मुख क्यों नहीं होते?

उत्तर—विषयों का अनादि अभ्यास है और अन्तर्मुख का अभ्यास नया है। दूसरी बात, पूरी लगन का अभाव है। तीसरी बात, पूरी लगन होने पर भी मन के अन्तर्मुख होने में कुछ समय तो लगेगा ही। चौथी बात, प्रपंच तथा संसारियों से हटकर समय-समय से साधु संगत की आवश्यकता है। खूब सद्ग्रंथ भी पढ़ो और साधु संग करो। साधु का मतलब केवल वेषधारी नहीं, किन्तु साधना-सम्पन्न है।

479. प्रश्न—शुभाशुभ दोनों कर्म बन्धन हैं क्योंकि शुभ कर्म में भी उसका आभास तो रहता ही है, तो क्या शुभ कर्म भी त्याग देना चाहिए?

उत्तर—साधारण मनुष्य तो अशुभ कर्मों का त्याग कर दे, इतना ही बहुत है। बिना कर्म किये जीवन चल नहीं सकता। कर्मरहित कोई हो भी नहीं सकता। कुछ-न-कुछ सबको करना है। यदि व्यक्ति शुभ नहीं करेगा तो उससे अशुभ होगा। अतएव अशुभ कर्म छोड़कर शुभ कर्मों में जीवन व्यतीत करना है।

अब रही बात कि 'शुभ-कर्मों की भी वासना बनेगी, जो बन्धनप्रद होगी।' अहंकार और विषय-भोगों की कामना का त्याग कर देने पर शुभ कर्मों की वासना नहीं बनेगी। स्थूल मैथुनक्रिया से लेकर पूजा-प्रतिष्ठा पाने तक की लालसा विषय-भोगों की कामना है। विवेकवान इसका त्याग कर देता है और किसी शुभकर्म में उसको अहंकार नहीं रहता। अतएव शुभकर्मों को करते हुए भी वह उनके बन्धनों में नहीं पड़ता। शुभ कर्मों का आभास (प्रतीत) मात्र बन्धन हो जाये, तो शरीर और संसार का आभास जीवन भर रहता है। फिर कोई मुक्त हो ही नहीं सकता। विवेक द्वारा अनासक्त होकर ही बन्धनों से छुटकारा है। शरीर रहते कोई आभास एवं प्रतीत को नहीं मिटा सकता।

480. प्रश्न—किसी भी मनुष्य को गुरुमुख क्यों, कब और किससे होना चाहिए? शिष्य और गुरु के कर्तव्य क्या हैं?

उत्तर—आध्यात्मिक खोज एवं स्व-स्वरूप ज्ञान की जब व्यक्ति में जिज्ञासा होती है, तब वह स्वयं सच्चे गुरु की खोज करता है। वह, जिसके द्वारा पूर्ण आध्यात्मिक सन्तोष मिलता है, उसे गुरु स्वीकार कर लेता है। समर्पण भावना शिष्यत्व है और यथार्थ ज्ञान तथा दिव्य रहनी में सम्पन्न होना गुरुत्व है।

गुरु बोधिक निज थीर पद, डोले कतहूँ नाहिं।
आपु सुखी औरे सुखी, सद्गुरु कहिये ताहि॥

(पंचग्रन्थी, गुरुबोध, दोहा 62)

481. प्रश्न—कबीर एक उच्चकोटि के संतपुरुष थे। वे निराकार की उपासना कर सके, साधारण जनता तो साकार की ही उपासना कर सकती है। क्या निराकार-उपासना का उपदेश समाज को गति दे सकता है?

उत्तर—कबीर देव निराकार-निर्गुण नहीं, साकार-सगुण के उपासक थे। निराकार-निर्गुण का तो कुछ अर्थ नहीं होता। निराकार-निर्गुण रोटी-भात से पेट भरने वाला नहीं। रहा, सगुण-साकार के नाम पर लोग केवल जड़ पत्थर या अष्ट धातु की मूर्ति मात्र मान लेते हैं, जो भ्रम है। वस्तुत: यह प्राणिजगत जो चैतन्य मूर्ति है, सगुण-साकार है, इसकी सेवा करना, इसके प्रति मन में करुणा और प्रेम रखना—साकार-सगुण की उपासना है। मानव में जो ज्ञान सम्पन्न और

पवित्र हैं उन्हें हम संत कहते हैं। वे कल्याणार्थियों के महान अनुशास्ता, प्रेरक और रक्षक हैं। उनमें श्रद्धा तथा सेवा-भावना रखना प्रत्यक्ष साकार एवं सगुण उपासना है। व्यक्ति का अपना आत्मस्वरूप चेतन है। वह ज्ञानाकार तथा ज्ञानगुण सम्पन्न होने से एक प्रकार साकार तथा सगुण ही है। अत: स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति साकार-सगुण उपासना ही है। इस प्रकार प्राणि मात्र के प्रति करुणा, निर्मल संतों के प्रति श्रद्धा एवं स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति—कबीर-उपेदश की यही उपासना-पद्धति है, जो एकदम व्यावहारिक और समाज के लिए गतिप्रद है।

482. प्रश्न—ध्यान किसे कहते हैं, ध्यान किसका और कब करना चाहिए, ध्यान करने से क्या लाभ है, ध्यान करने की विधि क्या है?

उत्तर—मन का निर्विषय, संकल्प-शून्य हो जाना ध्यान है। किसी महापुरुष का ध्यान करने का मतलब यह है कि पहले एकाएक मन निर्विषय तथा संकल्पशून्य हो नहीं सकता, इसलिए पहले एकाग्रता के लिए किसी महापुरुष का भी ध्यान ठीक है, परन्तु यह है एक विषय का ग्रहण ही, भले वह शुद्ध विषय है।

प्रात: और सायं ध्यान करने का अच्छा समय है। प्रात: अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैसे जब समय मिले ध्यान करना चाहिए। ध्यान अर्थात एकाग्रता की प्राप्ति सर्वोच्च सुख है। जो व्यक्ति ध्यान परायण हो जाता है उसका मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है। उसे एकाग्रता एवं शांति की प्राप्ति होती है। वह सन्तुलित मन वाला हो जाता है और ऐसा व्यक्ति भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों सुखों का भागी होता है। अर्थात एकाग्रता का अच्छा प्रभाव शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। आरम्भिक साधना में किसी वैराग्यवान सन्त-पुरुष का ध्यान करना चाहिए या जिसको जो इष्ट हो। वैसे सच्चा ध्यान संकल्पों का अन्त है। इस विषय को विस्तार से समझने के लिए 'ध्यान क्या है' पढ़ें।

* * *

483. प्रश्न—धर्म साहेब के अनुयायियों तथा पारख सिद्धान्त में क्या भेद है? कबीर साहेब तो एक थे, उनके चार मुख्य अनुयायी—श्री धर्म साहेब, श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब तथा श्री जागू साहेब के अनुयायियों में मतभेद क्यों?

उत्तर—संसार का स्वभाव है विभिन्नता। एक वादरायण के ब्रह्मसूत्र का भाष्य शंकर, रामानुज, माधव, बल्लभ भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं। एक शंकराचार्य के अनुयायी ही भिन्न विचारों वाले हैं। उनके अद्वैतवाद में आज से

चार सौ वर्ष पूर्व ही तैंतालीस (43) मत हो गये थे, जिन्हें आप अप्पयदीक्षित के सिद्धांतलेश संग्रह नामक ग्रंथ में देख सकते हैं।

सद्‌गुरु कबीर के श्रुतिगोपाल साहेब आदि उक्त चार शिष्य मुख्य माने जाते हैं और चारों की परम्परा में पारख सिद्धान्त के विचारक रहते थे। धर्म साहेब भक्तिपक्ष को लेकर समाज को ज्यादा प्रभावित किये। उनके अनुयायी भी चाहे जिस प्रकार से सही, भक्ति, महिमा और उपासना का पक्ष लेकर समाज को सर्वाधिक प्रभावित किये और विपुल ग्रंथों की रचना किये। इतना होने पर भी पारख सिद्धान्त की वहां वरीयता रही और कबीरमंशूर जैसे महिमापरक विशाल ग्रन्थ में भी एक प्रकरण पारख सिद्धान्त का साफ-साफ रखा गया। अतएव पारख सिद्धान्त पूरे कबीरपंथ में व्याप्त और कबीरपन्थ का सार है। उसका कबीरपन्थ की किसी शाखा से विरोध नहीं, किन्तु उन सभी शाखाओं में वह पनप कर बढ़ा है। श्रुतिगोपाल साहेब का कबीरचौरा काशी, भगवान साहेब का धनौती मठ, फतुहा, पावा, विद्दूपुर, आदि पारख सिद्धान्त के गढ़ रहे ही, जहां से प्रेरणा पाकर गुरुदयाल साहेब, रामरहस साहेब, मेंही साहेब, राघव साहेब, कुंजल साहेब आदि पारखी संत होते रहे। धर्म साहेब की परम्परा में भी पारखी संत आज तक होते आये हैं।

पारख किसी की बपौती नहीं है। जीव का स्वरूप ही पारख अर्थात ज्ञान है। जो सब की पारख करके उसे त्याग दे और ज्ञानस्वरूप में स्थित हो जाये वही पारखी। अतएव कबीरपन्थ क्या पारख सिद्धान्त पर मनुष्य मात्र का अधिकार है। कोई पारखी कहलाकर भी यदि पारख ज्ञान न धारण करे तो वह पारखी नहीं।

484. प्रश्न—इसाई, मुसलमान, पारसी, जैन, बौद्ध आदि अपने एक देवता, खुदा आदि को मानते हैं, परन्तु हिन्दुओं में अनेक देवताओं के मानने वाले लोग हैं। कोई शिव को मानता, कोई राम को, कोई कृष्ण को मानता, कोई हनुमान को, कोई काली को मानता, कोई दुर्गा को। ऐसा क्यों?

उत्तर—सभी परम्पराओं से हिन्दू परम्परा बहुत पुरानी है। इसने काल की एक लम्बी अवधि देखी है। भिन्न-भिन्न काल में उदय हुए महापुरुष एवं काल्पनिक देवता इसमें समाहित होते चले गये हैं। हिन्दू समाज सदैव से ही लोचदार रहा है। इसकी सर्वग्राही दृष्टि सबको अपने में समेटती रही। आपको आश्चर्य होगा कि ऋग्वेद (8/85/13-16) के अनुसार यमुना नदी के तट पर रहने वाला दस सहस्त्र सेनाओं का मालिक कृष्ण आर्यों-वैदिकों का विरोधी था जिसका आर्य पुरुष इन्द्र से युद्ध हुआ था। पीछे वह कृष्ण आर्यों का परम देवता परब्रह्म परमेश्वर हो गया। हिन्दुओं का मूल ग्रन्थ ऋग्वेद देवताओं के

नामों का एक बृहत शब्दकोश है। सर राधाकृष्णन ने लिखा है—

"मानव-मस्तिष्क रूपी कारखाने में देवमाला के निर्माण की पद्धति ऋग्वेद में जैसी स्पष्ट देखी जाती है वैसी अन्यत्र नहीं मिल सकती (भाग 1, पृ० 65)।" रूप बदल करके उसका असर हिन्दू धर्म में आज भी है। हिन्दुओं को तैंतीस कोटि देवता पूजने को जब कम पड़ गये, तब उसने मुसलमानों के हसन-हुसैन, गाजी मियां आदि को भी पूजना शुरू किया।

हिन्दू समाज धर्म को लेकर कट्टरपंथी और जिद्दी नहीं है। वह मुलायम और नमनशील है। यह उसकी विशेषता है। परन्तु इस प्रकार जगह-जगह सर पटकने वाला होने से वह दिग्भ्रमित भी है। वैसे सभी संप्रदायों की अधिकतम जनता एक या अनेक देवता मानकर भ्रांति में ही सर पटकती है। इस भ्रांति से मुक्त होने के लिए जड़-चेतन का ठीक ज्ञान प्राप्त करने की महान आवश्यकता है और इसके लिए विवेकियों का संत्सग करना चाहिए।

485. प्रश्न—दामाखेड़ा गद्दी की स्थापना कब हुई? कबीरपंथ में अलग-अलग गद्दियां क्यों? इसमें प्रथम कौन है? मुख्य आचार्य कौन?

उत्तर—विक्रमी संवत 1960 के बाद श्री उग्रनाम साहेब ने दामाखेड़ा में अपना स्थान कायम किया था। अलग-अलग गद्दियां पंथ के विस्तार का सूचक हैं। सद्गुरु कबीर मुख्य आचार्य हैं और पूरा कबीरपंथ उनका अनुयायी। आश्चर्य है हर शाखा वाले अपने-अपने स्थान के प्रथम पुरुष को आचार्य मानकर सद्गुरु कबीर को भूल जाते हैं। अतएव सद्गुरु कबीर आचार्य हैं और पूरा कबीरपंथ उनका अनुगामी।

486. प्रश्न—इंसान को सच्चा सुख कब प्राप्त होता है?

उत्तर—जब उसके मन में स्वच्छता और संतोष होते हैं।

487. प्रश्न—दुनिया का सबसे बड़ा धर्म क्या है?

उत्तर—वह बरताव दूसरे के साथ न करना जो अपने को बुरा लगता हो।

488. प्रश्न—इष्ट के प्रति श्रद्धा और भय क्यों होते हैं?

उत्तर—जिनके आचरण तथा उपदेशों से जीवन में प्रेरणा मिलती है, उनमें श्रद्धा होना स्वाभाविक है। श्रद्धा की नहीं जाती, अपितु हो जाती है। जहां अधिक श्रद्धा होती है, प्रेम का उभाड़ आ जाता है। यदि श्रद्धालुओं में भय न हो तो वे इष्ट के प्रति अधिक प्रेम में पड़कर अमर्यादित व्यवहार भी करने लगते हैं, अत: भय चाहिए, परन्तु वह भय विनयशीलता एवं शिष्टाचार है, न कि डर।

489. प्रश्न—कुछ दिन साधुवेष में एवं ज्ञानमार्तंड सद्गुरु के पास रहकर भी कोई-कोई क्यों गिर जाते हैं?

उत्तर—जो लोग भावुकता में घर से निकल जाते हैं, वे साधु-मार्ग में आकर वैराग्य, भक्ति, ज्ञान आदि का पुरुषार्थ नहीं करते अत: धीरे-धीरे उनका सांसारिक चिन्तन होते-होते पतन हो जाता है। इसलिए पक्का होकर घर से निकलना चाहिए। साधु दशा में आकर वैराग्य का अभ्यास करना चाहिए। इतने पर भी यदि वैराग्य से न रह सके तो घर लौट जाना अच्छा है। साधु समाज में रहकर गंदा बनना अच्छा नहीं। जो साधु-दशा से घर में लौट गये हों, उनसे घृणा मत करो। उनसे प्रेम करो। वे भक्तिपथ में चलें। मैं तो ऐसे व्यक्ति से अधिक प्यार करता हूं।

490. प्रश्न—मन की सूक्ष्म गतियों को किस प्रकार पहचानें?

उत्तर—प्रात: शांत समय में बैठकर मन को देखें।

491. प्रश्न—जो व्यक्ति पहले बाल-बच्चों में फंस चुका है, परन्तु पीछे वैराग्य हो गया और साधु-दशा से रहने लगा, तो क्या वह इसी जीवन में मुक्त हो सकता है?

उत्तर—पहले कोई क्या रहा है इससे मतलब नहीं है किन्तु आज वह कैसे है, इससे मतलब है। शुरू से विवाहरहित लोग भी ढीले मन के तथा कमजोर वैराग्य के होते हैं और पहले के विवाहयुत रहकर पीछे से वैराग्य करने वाले भी उच्च वैराग्य से रहने वाले होते हैं जैसे महात्मा बुद्ध, भर्तृहरि, श्री काशी साहेब, श्री लाल साहेब आदि। जिसका मन आज पूर्णरूपेण राग-रहित हो गया वही मुक्त है और हर व्यक्ति अपने मन को रागरहित करने में स्वतंत्र है।

492. प्रश्न—कबीरपंथ के उपदेशक संत-महंतों का कहना है कि नारियल मोरने (फोड़ने) का कार्य सिर्फ नारियल फोड़ने का मन्त्र पाने वाले पंजाधारी साधु एवं महंत ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं, यदि दूसरा कोई फोड़ेगा तो उसे कोटिन-कोटि जीव मारने का पाप पड़ेगा। यह सत्य है या झूठ?

उत्तर—किसी भी क्रांतिकारी महापुरुष के पीछे सब प्रकार के लोग उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाते हैं। उनमें से लचर लोग उनके सत्यपथ पर न चल पाने से नये-नये मनगढ़ंत अयुक्त फार्मूले निकालते हैं और यह सब इसलिए करते हैं कि साधारण लोगों को भूलभुलैया में रखकर उन पर किसी तरह से हावी रहा जाये। यह काम संसार के सभी महापुरुषों के पीछे उनके कुछ अनुगामियों ने किया है। कबीरपंथी कहलाने वालों में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। प्रश्न ऐसे साधारण विषय पर है जिसे सभी समझ सकते हैं। कबीरपंथ तो अभी पांच सौ वर्षों का है और नारियल उसके पहले भी तोड़े और खाये जाते थे। तो क्या पहले के लोग एक नारियल तोड़कर करोड़ों जीव मारने के पाप में ही फंसते रहे? मन्त्र पढ़ लेने से नारियल तोड़ने में जीव-हत्या नहीं

होती तो मन्त्र न पढ़ने से उसमें कैसे जीव-हत्या हो जायेगी? महंत और साधु के अलावा लोगों द्वारा नारियल तोड़ने से उन्हें जीवहत्या का पाप लगता है—यह बिलकुल झूठी बात है। अत: कोई भी नारियल तोड़े और खाये, कोई अड़चन नहीं।

यदि पूजा के समय महंत एवं साधु ही नारियल तोड़ें—ऐसी वे मर्यादा बनाकर चलना चाहें, तो कोई आपत्ति नहीं। पारख सिद्धान्त में तो इसके विषय में कोई नियम नहीं। यहां तो पूजा-पाठ के समय यदि नारियल चढ़ते हैं तो उन्हें विशेषतर गृहस्थ-भक्त ही फोड़ते और बांटते हैं।

493. प्रश्न—मृतक का दाह-संस्कार करना चाहिए कि नहीं और किसी के मर जाने पर छूत लगती है कि नहीं?

उत्तर—जलाना, गाड़ना और पानी में फेंक देना—मृतक की ये तीन गतियां की जाती हैं। जब जहां जो करने में सुविधा हो वह काम ठीक है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि लाश को गाड़ देने से, बाद में उसका जीव लाश के पास आकर भटकता है और यदि लाश जला दी गयी है तो जीव उदास होकर चला जाता है। वह वहां नहीं भटकता। इसलिए भारतीय परम्परा में बहुधा गृहस्थ की लाश को जलाते हैं और साधुओं की लाश को प्राय: गाड़ देते हैं। उसके पीछे यह धारणा है कि साधु का जीव मोह-रहित होता है, इसलिए वह पुन: लाश के पास भटकने नहीं आता। परन्तु ये धारणाएं मिथ्या लगती हैं। क्योंकि कर्मी जीव शरीर छोड़कर दूसरे शरीर के निर्माण में लगता है, वह लाश के पास भटकने नहीं आता। अत: देश-काल के अनुसार लाश को गाड़ना, जलाना या नदी में फेक देना—कुछ भी किया जा सकता है।

अब रही किसी के मरने पर घर में छूत लगने की बात। तो लाश गंदी होती ही है। उसे घर के बाहर ले जाकर उसकी अंत्येष्टि कर देने पर घर को लीप-पोत एवं धोकर साफ कर ले और उसे ले जाने वाले स्नान करके कपड़े धो लें। बस, छूत समाप्त है। अब जो पंडितों द्वारा मृतक के घर एवं कुल-गोत्र भर में 12-13 दिनों तक छूत लगाकर और उनसे महापात्र-कर्म, तेरही, सोरही एवं नितकुम आदि करवाते हैं, वह सब भूलभुलैया का काम है। किसी के घर में कोई मर गया तो उसे दुनियवी रीति-रिवाज में पड़कर उजड़ जाना पड़े, यह अच्छा नहीं है।

मृतक के घर वालों का यह कर्तव्य है कि मृतक के उपार्जित धन का एक उचित भाग किसी लोकमंगल के कार्य में लगावें। परन्तु धर्म के पुरोहितों द्वारा उनके धन का गलत ढंग से शोषण करना अनुचित है।

*　　　　*　　　　*

494. प्रश्न—जाति-प्रथा और छुआछूत क्यों नहीं मिटायी जाती?

उत्तर—जो संस्कार हजारों वर्षों से मनुष्य के मन में घर कर गये हैं, वे केवल कानून या ज्ञानोपदेश से तत्काल नहीं मिटाये जा सकते, किन्तु कानून और ज्ञानोपदेश का असर धीरे-धीरे पड़ते-पड़ते क्रमशः ही मिटाये जा सकते हैं। स्वयं सोचो, क्या अपनी संतान की शादी दूसरी जाति में करने की हिम्मत रखते हो? ऊंची जाति के कहे जाने वाले लोगों की बातें ही छोड़ो, जिनको छोटी जाति के कहते हैं उनमें से क्या हर अपने से छोटी जाति के व्यक्ति के साथ बैठकर भोजन करना चाहता है, चाहे वह शुद्ध ही क्यों न हो। अतएव जाति-पांति और छुआछूत का भूत क्रमशः ही दूर हो सकता है और वह भी सार्वभौमिक दूर होना उसी प्रकार असम्भव है जैसे पूरे विश्व के लोगों का पूरा सदाचारी हो जाना।

495. प्रश्न—महापुरुषों के नाम लेकर उनकी जय बोलाई जाती है। उसका अर्थ क्या है?

उत्तर—जय शब्द का प्रयोग जब हम बड़े पुरुषों के नाम के साथ करते हैं तब उसका अर्थ होता है प्रशंसा, महिमा।

496. प्रश्न—कबीरपंथी लोग कंठी क्यों पहनते हैं, कंठी न पहनी जाये तो क्या नुकसान है? क्या कंठी न पहनने से कबीर साहेब का ज्ञान नहीं धारण किया जा सकता?

उत्तर—कंठी दया का प्रतीक मानकर कबीरपंथ में कंठी पहनी जाती है जैसे वैष्णवों में अहिंसाव्रत पालन करने के लिए कंठी पहनी जाती है। कंठी कबीरपंथ में भक्ति का एक चिह्न मान ली गयी है। वैसे दया, अहिंसा एवं भक्ति का आचरण बिना कंठी पहने भी हो सकता है। कंठी कबीरपंथ का मुख्य धर्म नहीं है और न तो उसे पहने बिना कबीर साहेब के ज्ञान को धारण करने में कोई अड़चन ही हो सकती है। कंठी एक वेष है। शुद्ध वेष धर्म में सहायक है, यदि कोई उसका दुरुपयोग करे तो उसकी बात अलग है। कंठी, माला, तिलक, जनेऊ, काषाय (गेरुवे) वस्त्र आदि सब पंथ, सम्प्रदाय आदि के चिह्न हैं। वास्तविक धर्म एवं ज्ञान हृदय की धारणा एवं आचरण की वस्तु है। रहा, जो जिस पंथ एवं सम्प्रदाय में दीक्षित होता है, वह वहां के वेष को स्वीकार करता है। जब बहुत-सी फैशन की वस्तुएं धारण करने में अड़चन नहीं पड़ती, तो शुद्ध वेष कंठी धारण में क्या अड़चन है?

497. प्रश्न—मृत्यु जीवन का अन्त है कि नये जीवन की तैयारी?

उत्तर—वर्तमान जीवन का अन्त है और भविष्य जीवन की तैयारी। किन्तु ज्ञानी पुरुष की मृत्यु, अनंत जीवन की शुरुआत है।

498. प्रश्न—वासना को जीत लेने वाले पुरुष की देह छूटने पर क्या दशा होती है?

उत्तर—विदेह-मोक्ष। यह गुणातीत दशा है। इसकी ज्यादा व्याख्या सम्भव नहीं है। इतना ही कह सकते हैं कि यह जड़प्रकृति से भिन्न, असंग, दुखहीन एवं सदैव के लिए परम शांति दशा है। इसके लिए देह रहते-रहते सभी प्रकार के विकारों से रहित होना चाहिए।

499. प्रश्न—जीव को राम क्यों कहा जाता है?

उत्तर—क्योंकि वह प्रकृति में रमण कर रहा है।

500. प्रश्न—जिसको हम भूलना चाहते हैं, वह बारम्बार मन में क्यों आता है?

उत्तर—क्योंकि उसको तुम निषेधात्मक महत्त्व देते हो। अत: जिसे भूलना चाहो, उसको किसी प्रकार महत्त्व न दो।

501. प्रश्न—स्वप्न असत्य है, फिर देखते समय सत्य क्यों लगता है?

उत्तर—क्योंकि जागृति नहीं रहती। इसी प्रकार जो यथार्थ ज्ञान में जगा नहीं है, उसे मोह-माया के सारे सम्बन्ध सत्य लगते हैं। जाग जाने पर झूठे हो जाते हैं।

502. प्रश्न—अभ्यासकाल में मन एकाग्र हो जाता है, परन्तु उससे उठने पर चंचल हो जाता है। सदैव मन वश में रहे, इसके लिए क्या उपाय है?

उत्तर—विषयों से वैराग्य चाहिए। वैराग्य के लिए सारासार विवेक चाहिए। विवेक के लिए स्वाध्याय, सत्संग एवं सद्‌विचार चाहिए। इन सबके लिए लगन चाहिए।

वैराग्य के बिना अभ्यास अधूरा है। अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध:। अभ्यास और वैराग्य से मन सदैव वश में रह सकता है।

503. प्रश्न—नामजप क्या है, उसका फल क्या है?

उत्तर—अपनी श्रद्धा के अनुसार लोग भिन्न नाम जपते हैं ॐ, राम, कृष्ण, अल्लाह, गुरु आदि। कोई भी पवित्र अभ्यास मन को एकाग्र करने में सहायक है। अंतत: सब नाम काल्पनिक हैं। जो सब नामों की कल्पना करता है, उस अपने आपको पहचानो। मन के विकारों को छोड़ो और अपने आप शुद्ध चेतन स्वरूप में ठहरो। यही सबसे बड़ा जप है।

504. प्रश्न—पापकर्म कर लेने के बाद यदि कोई गुरु की शरण में जाता है, तो क्या वह उसके कर्म के फल से बच सकता है?

उत्तर—गुरु-शरण में जाने का फल है वर्तमान में मन की पवित्रता तथा आध्यात्मिक उन्नति, और वह होती है। कर्म-फल-भोगने की चिंता हमें नहीं होनी चाहिए।

505. प्रश्न—मेरे पिताजी और गुरुजी दो रास्ते मुझे सुझा रहे हैं, जो परस्पर विरोधी हैं। मैं किस रास्ते पर चलूं, क्योंकि दोनों पूज्य हैं?

उत्तर—जो रास्ता आपको पुनीत, कल्याणकर और हितकर दिखे, उस पर चलें।

506. प्रश्न—देह छोड़कर दूसरी देह धरने के बीच समय में जीव को सुख मिलता है कि दुख?

उत्तर—वह समय देहरहित होने से न सुख है और न दुख। परन्तु देहधारण करने के सारे दुखों के बीज को वह लेकर रहता ही है, अत: वह कल्याणदशा का समय नहीं है।

507. प्रश्न—श्री धर्म साहेब विरक्त हो गये थे, परन्तु उनकी परम्परा में कितने गृहस्थ महंत गुरु बनकर दूसरे को मुक्त करने की ठेकेदारी लिए घूमते हैं और कहते हैं केवल वंश-परम्परा से ही लोगों का कल्याण है, धर्म साहेब सबसे बड़े गुरु थे। क्या समझा जाये?

उत्तर—श्री धर्मसाहेब विरक्त हो गये थे—यह बात सुनी जाती है। वे बड़े प्रतिभाशाली थे। उनके द्वारा प्रचार-क्षेत्र बढ़ा। उनके पीछे उनकी परम्परा में कुछ ऐसे लोग हुए जो गृहस्थ गुरु की प्रणाली चलाये और यह भी गढ़कर रख दिये कि कबीर साहेब ने बयालिस वंश चलाने को कहा है। पीछे कबीर साहेब के बीजक को नजरअंदाज करके गुरु कबीर और धर्मदास के संवाद के नाम पर कई पुस्तकें रची गयीं, जिनमें ज्ञान का अंश कम अपितु अतिशयोक्ति-पूर्ण महिमाओं का प्राबल्य किया गया। और इतना ही नहीं, परम तेजस्वी श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब तथा श्री जागू साहेब की कीमत घटाकर आंकी गयी और बताया गया कि केवल धर्म साहेब ही गुरुत्व के अधिकारी हैं। उनकी परम्परा में गये बिना कल्याण नहीं। वंश-परम्परा को अपनी प्रचार-सफलता का इतना जोश हो गया कि वह कुछ समय के लिए अन्य सब को हीन समझने लगी। उन वाणियों का असर आज भी उनके कुछ लोगों में है।

परन्तु आज श्री धर्म साहेब की परम्परा में जो विवेकवान सन्त-महंत हैं वे ऐसा नहीं मानते। वे उक्त चारों गुरुओं का समान आदर करते हैं।

केवल श्री धर्म साहेब की परम्परा ही नहीं, ब्राह्मण, वेदांती, वैष्णव, जैन, बौद्ध, इसलामी, इसाई आदि हर सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाओं में कुछ ऐसे

वैराग्यहीन एवं विवेकरहित गद्दीधारी होते रहे हैं जो केवल अपनी परम्परा को ही मुक्तिदाता घोषित करते रहे हैं। पंथ की दृष्टि से श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री धर्म साहेब, श्री भगवान साहेब तथा श्री जागू साहेब समान आदरणीय परम गुरु हैं। इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं। ये महापुरुष आपस में भी अपने को छोटा तथा दूसरे को बड़ा मानते रहे होंगे। जो पद में बड़े भी रहे होंगे, वे भी दूसरों से अपने को अहंकारपूर्वक बड़ा नहीं मानते रहे होंगे। फिर हम यह कहने के अधिकारी कहां हैं कि उनमें अमुक बड़ा है और अमुक छोटा। हम सबके लिए सब समान महान हैं।

जहां तक आध्यात्मिक गुरु का प्रश्न है, उसे ब्रह्मचारी, विरक्त एवं त्यागसम्पन्न होना चाहिए। श्री धर्म साहेब की शाखा में भी अच्छे-अच्छे विरक्त संत-महंत होते रहे और आज भी होते हैं। हम आशा करते हैं कि उनमें रहने वाले गृहस्थ गुरु भी विरक्ति का पथ अपनायेंगे, जिससे गुरुत्व सही दिशा में चरितार्थ हो।

* * *

508. प्रश्न—ज्ञानी के संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण का अभाव कैसे होता है?

उत्तर—प्रारब्ध भोगकर, संचित ज्ञान-वैराग्य के बल से और क्रियमाण दिव्य रहनी से समाप्त हो जाते हैं और ज्ञानी का तीनों कर्मों से छुटकारा हो जाता है।

509. प्रश्न—कहते हैं बिना देखे, सुने और भोगे स्वप्न नहीं होते; किन्तु मैं अनेक ऐसे सपने देखता हूं जिनके विषय में न कभी देखा, न सुना और न भोगा, फिर ऐसा क्यों?

उत्तर—जो सामान पेटी में कभी नहीं रखा गया, वह उसमें से कैसे निकल सकता है? देखे, सुने तथा भोगे हुए विषयों के स्वप्न होते हैं, भले वे बदलकर बिगड़े हुए रूप में आयें।

510. प्रश्न—स्व-स्वरूप, पारख, अस्तित्व, सारशब्द, निःअक्षर, निःशब्द, निःतत्त्व—क्या एक ही वास्तविकता के बोधक हैं?

उत्तर—स्व-स्वरूप का अर्थ है अपना स्वरूप, व्यक्ति का अपना वास्तविक स्वरूप चेतन है। पारख का अर्थ है 'ज्ञान' वह चेतन का ही गुण है। अस्तित्व का अर्थ है 'सत्ता'। सत्ता जड़ और चेतन दोनों की है, अतएव सत्ता मात्र कह देने से केवल चेतन का ही बोध नहीं होता, जड़ का भी होता है। सारशब्द का

अर्थ है—'निर्णयवचन'। वह चेतन स्वरूप नहीं हो सकता। नि:अक्षर और नि:शब्द ध्वनिरहित के परिचायक हैं। इनका अर्थ यह किया जा सकता है कि अपना चेतन स्वरूप अक्षर एवं शब्द से रहित है। 'क्षर' का अर्थ 'नाश' होता है, उसमें 'अ' उपसर्ग लगा देने से अर्थ 'अविनाशी' हो जाता है। उसका अर्थ नाशवान बनाने के लिए उसमें पुन: 'नि:' उपसर्ग की आवश्यकता नहीं, अपितु 'अ' हटा देने पर 'क्षर' स्वयं नाशवान रह जायेगा। अतएव नि:अक्षर का अर्थ शब्दातीत ही करना चाहिए। नि:तत्त्व का अर्थ शून्य है। अपने चेतन स्वरूप के अर्थ में कम-से-कम हम लोग इस शब्द का प्रयोग नहीं करते। अतएव केवल शब्दों के चक्कर में न पड़कर वास्तविकता की परख होनी चाहिए।

511. प्रश्न—क्या कबीर साहेब इस संसार से सदेह सतलोक गये, यानि उनका मरा हुआ शरीर यहां नहीं पाया गया?

उत्तर—कबीर साहेब प्रारब्ध समाप्त होने पर शरीर छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में शांत हो गये। अन्य कहीं सतलोक नहीं है। अपना चेतनस्वरूप ही सतलोक है। कबीर साहेब का शरीर अंतत: फूल हो गया, यह कहना भक्तों की अतिशयोक्ति है। वैसे मृत शरीर जल जाने पर जो अस्थि रह जाती है उसे फूल कहते हैं।

512. प्रश्न—कबीर साहेब का प्रथम शिष्य कौन था?

उत्तर—इसका पता नहीं। कबीर साहेब के बहुत शिष्य थे। उनमें किनकी दीक्षा पहले हुई थी—इसका कोई मूल्य नहीं है। सब समान श्रेष्ठ एवं आदरणीय हैं।

513. प्रश्न—विद्या का शुद्ध अर्थ क्या है?

उत्तर—अज्ञान का अन्त तथा आन्तरिक सद्गुणों का विकास।

514. प्रश्न—प्यार क्या है?

उत्तर—स्वार्थ त्याग। जो व्यक्ति जितना अपना स्वार्थ छोड़ सके, वह उतना जगत को शुद्ध प्यार दे सकता है।

515. प्रश्न—जो किसी पर विश्वास नहीं करता उसका क्या होता है?

उत्तर—उसका जीवन कटु हो जाता है।

516. प्रश्न—मथुरा जिले के गोवर्धन के निकट पलसी गांव में एक स्त्री अपने मृतक पति की जली हुई चिता की राख पर बैठी और उसने अपने ऊपर गंगाजल छिड़क लिया, बस अपने आप वह जल गयी। जब वह चिता पर बैठी थी, उसे एक साधु उपदेश देकर चला और कुछ दूर में गायब हो गया। यह चमत्कार कैसा है?

उत्तर—बिना आग तथा ज्वलनशील पदार्थ के संयोग के अपने आप आग नहीं लग सकती। साधु गायब नहीं हो सकता। यह सब बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई बात है।

517. प्रश्न—शांति कहां है, घर में या बाहर?

उत्तर—शांति त्याग में है। घर में रहे या बाहर, मन के विकारों को त्यागने से ही शांति मिलेगी।

518. प्रश्न—कभी-कभी सत्य बोलना महंगा क्यों हो जाता है?

उत्तर—महंगा माल ही उत्तम होता है।

519. प्रश्न—सत्य और असत्य में क्या अन्तर है?

उत्तर—सत्य भावात्मक है और असत्य अभावात्मक। सत्य से ही कुछ काम हो सकता है, असत्य से किसी का भला नहीं हो सकता।

520. प्रश्न—जीव के बन्धनों का स्वरूप स्वतंत्र है या परतंत्र?

उत्तर—परतन्त्र। सारे बन्धन जीव के अधीन हैं। वह चाहे तो उन्हें तोड़ सकता है और चाहे उन्हें पाल सकता है।

521. प्रश्न—तुलसी का पौधा कहां रखना चाहिए?

उत्तर—निवास स्थान के पास, क्योंकि उसकी हवा फायेदमंद है। उसकी पत्ती रोज खायी जाये तो अच्छा है।

522. प्रश्न—श्रीराम व श्रीकृष्ण ईश्वर थे या नहीं। यदि नहीं थे, तो तुलसी, सूर, मीरा, सबरी किसकी भक्ति करके अविचल पद पाये? प्रहलाद और ध्रुव भी बहुत ऊंचे उठे।

उत्तर—श्रीराम और श्रीकृष्ण मानव थे। मानव के आकार में पैदा हुए संसार के सारे महापुरुष वसिष्ठ, व्यास, नारद, सनकादि, अंगिरा, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, जरथुस्त्र, कनफ्यूशियस, शकंराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, कबीर, नानक आदि सब मानव थे। मानव से बढ़कर तो कुछ है ही नहीं। महाभारत भी कहता है 'न मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित्'—मनुष्य से बढ़कर कुछ नहीं। पवित्र मानव आराध्य और उपास्य हो जाता है। उसी की उपासना करके अन्य मनुष्य आगे बढ़ जाते हैं।

वस्तुतः मनुष्य अपने उत्तम चरित्र के कारण ही ऊंचे उठते हैं। उसमें उपासना एवं भक्ति का अवलम्ब जिसका भी माने। ईश्वर और अवतार—दोनों को बिलकुल न मानते हुए भी वैदिक कपिल, कणाद, जैमिनि तथा अवैदिक

बुद्ध और महावीर बहुत ऊंचे उठ गये। ऊंचे उठने के लिए आवश्यकता है अपने आप को पहचानना तथा अपने को सारी कमजोरियों से हटा लेना।

523. प्रश्न—बीजक के अनुसार जीव ने अपनी खुशी एवं आनन्द के अहंकार में पड़कर पहले शरीर धारण किया, यह कहां तक सच है?

उत्तर—जीव का देह धरना-छोड़ना प्रवाह रूप अनादि है। उसने अमुक समय में पहले आनन्द के अहंकार में पड़कर देह नहीं धारण किया। बीजक मूल में ऐसी कोई बात नहीं है। श्री पूरण साहेब की टीका में ऐसा कुछ वर्णन लगता है, परन्तु उसको समझ लेने पर भ्रम नहीं रहता। बीजक पारख प्रबोधिनी व्याख्या कबीर पारख संस्थान इलाहाबाद से मंगाकर पढ़ें, शंकाएं मिट जानी चाहिए।

524. प्रश्न—मेरे वतन के आसपास बहुत बड़ी संख्या में कबीरपंथी सज्जन हैं। उनकी अनेक बातों में परस्पर विभिन्नता है, जैसे शादी-ब्याह में उनके भिन्न-भिन्न अनेक संस्कार विधान हैं। सब अपने विधान को अच्छा कहते हैं। उनमें किसका सच मानें, एकरूपता कैसे आये?

उत्तर—इसके विषय में कबीरपंथी गृहस्थों को पहल करना चाहिए और उनको इन सब बातों में एकरूपता लाना चाहिए। वैसे अपने-अपने विधान-संस्कार को अच्छा कह सकते हैं, परन्तु दूसरे के विधान-संस्कार को बुरा कहने का किसी को अधिकार नहीं है। हां, कोई निश्चित ही गलत रूढ़ि है, तो उस पर विचार किये बिना समाज का सुधार नहीं हो सकता है।

विभिन्नता संसार का स्वभाव है। वैदिक युग में ब्राह्मणों की भिन्न शाखाओं के यज्ञ विधानों में कुछ-न-कुछ अन्तर था। यहां तक वसिष्ठ के यज्ञ-विधान का विश्वामित्र मखौल करते थे। उपनिषदों के भिन्न विचार जगजाहिर हैं, जिससे ऋषि वादरायण को ब्रह्मसूत्र में एकता दिखाने की चेष्टा करनी पड़ी। परन्तु उनके चेले उसी ब्रह्मसूत्र को लेकर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिंत्य भेदाभेद आदि अनेक मत स्थापित करके एक दूसरे को नास्तिक तक कहते रहे और आज भी कहते हैं। संन्यासियों में भिन्न शाखा वाले भिन्न संस्कार विधान रखते हैं। इसी प्रकार वैष्णवों की दशा है। एक हिन्दू-समाज में शादी-विवाह, पूजा-उपासना आदि में नामालूम कितने भेद हैं। इसी प्रकार दूसरे में भी समझा जा सकता है। देश, काल, समाज, महापुरुष की विभिन्नता से विभिन्न विचारों की उर्मियां संसार-समुद्र में उठती रहती हैं। जहां तक सम्भव हो एकता का प्रयत्न करना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरणों को सामने रखकर अनेकता रहने देना उचित नहीं है। इसके लिए सभी कबीरपंथी भाइयों को इकट्ठा होकर एक उचित संस्कार-विधान चुन लेना चाहिए। पहले कहा गया कि इसके लिए विशेष

गृहस्थ सज्जनों को पहल करना चाहिए।

525. प्रश्न—कुछ कबीरपंथी मरणोत्तर काल में शव को जलाते हैं और कुछ जमीन में गाड़ते हैं। जलाने वाले उसके बाद, बारह दिनों तक घड़ा भरना, बाल बनवाना आदि विविध क्रिया-कलाप करते, सूतक मानते तथा अन्तत: तेरही करते हैं और गाड़ने वाले यह सब कुछ न करके बारह दिन पर या किसी एक दिन साधु-गुरुजनों को भोजन कराते हैं। इनमें क्या ठीक है?

उत्तर—जलाना या दफनाना जब जिस देश और काल में वहां के लोग उचित समझें वैसा कर देना ठीक है। यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि शव को जलाने या दफनाने से जलाने या दफनाने वाले को न कोई पाप पड़ता है और न उसे सूतक लगता है।

रहा, किसी के मर जाने के बाद भोज-भण्डारा करने की बात, इसके मूल में है मृतक के पूर्व के कमाये हुए धन का कुछ अंश परोपकार में लगाने का भाव। आज भी कितने लोग मृतक कर्म के रस्मी चक्कर में पड़कर परेशान हो जाते हैं और वे कर्ज लेकर रस्म पूरी करते हैं। कितनी जातियां हैं जो किसी के मर जाने पर बिरादरी भर जुटकर कई दिन उससे कच्चे-पक्के भोजन लेकर उसे दुखी कर देते हैं और कितने लोग हैं जो अच्छे धनी-मानी हैं, परन्तु वे मृतक माता-पिता के पैसे-धन आदि को तो आपस में बांट लेते हैं और उनकी स्मृति में कोई दान-पुण्य, परोपकारादि नहीं कर पाते। ये दोनों बातें गलत हैं। मृतक के अर्जित धन के एक उचित भाग को, पीछे वाले का कर्तव्य है कि वे परोपकार तथा लोकमंगल के कार्य में लगायें।

* * *

526. प्रश्न—कितने साधु एवं महंत अपने वेष के साथ उत्तम चरित्र से संयुक्त हैं और कितने वेष के ही साधु-महंत हैं। अत: वेष का महत्त्व है कि चरित्र का?

उत्तर—महत्त्व चरित्र का है। अच्छे चरित्र के साथ साधु-वेष का भी महत्त्व है। साधु-वेष साधना में सहायक है, पवित्र-भाव उत्पादक है। यदि उसका दुरुपयोग किया जाये तो गलत है।

527. प्रश्न—जो कुछ करता है वह ईश्वर करता है, जो कुछ कर्म होते हैं, उनका कर्ता जीव ही स्वतंत्र है—ये दो कथन शास्त्रों में मिलते हैं। सच क्या है?

उत्तर—पहला कथन केवल भावुकतापूर्ण है, दूसरा वास्तविक है।

528. प्रश्न—कई पत्र-पत्रिकाओं में भूत-प्रेत की सच्ची घटनाएं छपती हैं। भूत-प्रेत, स्थूल-सूक्ष्म किसी रूप में नहीं होते—यह कैसे माना जाये?

उत्तर—अपने स्वार्थ और अज्ञान के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं अखबारों के सम्पादक तथा लेखक सच्ची घटना के नाम पर झूठी, जालसाजी और धोखेधड़ी की बातें करते, लिखते और छापते हैं। पढ़ और अपढ़ अधिकतम जनता अंधी है। न उसे कारण-कार्य-व्यवस्था का ज्ञान है और न तात्त्विक दृष्टि है। जड़-चेतन निर्णय तथा विवेक से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भूत-प्रेत-योनि नाम की कोई चीज नहीं है। जीव देह छोड़ने के बाद जब तक दूसरी स्थूल देह नहीं धारण कर लेता, तब तक वह केवल सूक्ष्म शरीर से किसी के सामने प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतएव भूत-प्रेत-योनि एकदम कल्पित, असत्य एवं झूठी है।

अविवेकी आदमी दृष्टि-दोष, भ्रम एवं भय-वश भूत-प्रेत मान लेता है तथा चतुर स्वार्थी लोग भूत-प्रेत का हौवा खड़ा कर समाज को बेवकूफ बनाते हैं।

529. प्रश्न—क्या आप भूत-प्रेत की घटनाओं को झूठी साबित करने की चुनौती दे सकते हैं?

उत्तर—संसार अपार है। किसके-किसके पीछे हम उनकी कल्पित घटनाओं को झूठी साबित करने के चक्कर में पड़ेंगे। तुम स्वयं समझने की चेष्टा करो। जैसा समझ पड़े वैसा मानो।

530. प्रश्न—क्या प्रतिभा अर्जित की जा सकती है?

उत्तर—प्रतिभा नये सिरे से अर्जित नहीं की जा सकती। जिसमें प्रतिभा के अंकुर हैं और किसी कारण-वश एवं अनुकूल वातावरण न पाने से वह दबी हुई है, तो अनुकूल वातावरण पाकर उद्घाटित हो जाती है। जिसे अपनी सुप्त प्रतिभा जगाने का शौक हो, वह अपने जीवन को सांसारिक झंझटों में न डालकर सरल, सहज, संयत और निष्प्रपंच रखे। उसे चाहिए कि वह एकांत-प्रेमी, एकाग्र, स्वाध्यायरत, गम्भीर-चिंतक हो तथा लेख व भाषण में अपने विचारों को सुनियोजित ढंग से प्रकट करने का अभ्यास करे या जिस दिशा में अपनी प्रतिभा का उद्घाटन करना चाहता हो, उधर एकजुट से लगनपूर्वक अभ्यास करे।

531. प्रश्न—किसी शुभ-संकल्प को कार्य रूप में बदलने के लिए दृढ़ तत्परता कैसे आये?

उत्तर—जिस कर्म में जितना लाभ निश्चय होगा, उसके पूर्ण करने में उतनी ही दृढ़ता एवं तत्परता होगी। अत: लाभ निश्चय ही तत्परता का मूल है। जिसे

पैसा कमाने में लाभ निश्चय हो जाता है, वह अपने परिवार को छोड़कर जीवन भर परदेश में पड़ा रहता है।

532. प्रश्न—जीभ की स्वादासक्ति कैसे जीती जाये?

उत्तर—पहले स्वादासक्ति से रहित होकर जो स्ववशता और स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त होता है उसका लाभ निश्चय होना चाहिए। फिर जिस पदार्थ—मिठाई, खटाई, तिताई आदि में अपने मन में ज्यादा लोलुपता हो, उन पदार्थों को सामने प्राप्त होते हुए भी उन्हें कभी-कभी ग्रहण न करे, कभी उनमें थोड़ा ले, कभी एकदम त्याग दे। इस प्रकार विचार तथा त्याग द्वारा उनकी आसक्ति कुछ दिनों में समाप्त हो जायेगी।

533. प्रश्न—किसी डांवाडोल स्थिति में सहायता के लिए किसकी याद करे—भगवान, ईश्वर, सद्‌गुरु या अन्तरात्मा की, क्यों और किस प्रकार?

उत्तर—भगवान, ईश्वर, देवी-देवादि मनुष्य के मन की कल्पित धारणाएं हैं। यद्यपि इस धारणा से भी मनुष्य के दुखी मन को मनोवैज्ञानिक तथ्यानुसार कभी-कभी सन्तोष मिलता है, तथापि इससे मनुष्य अन्धकार में अधिक भटकता है। वह आत्मविश्वास छोड़कर सदैव हवा में तैरते रहना चाहता है। यदि व्यक्ति को सच्चे सद्‌गुरु मिल गये हैं, तो उनकी आदर्श-स्मृति से निश्चित ही अपना मनोबल ऊंचा उठता है।

वस्तुत: आत्मज्ञान, आत्मविश्वास एवं आत्मसंयम से ही हम सभी स्थितियों में पूर्ण विजयी हो सकते हैं। अपने पूर्व या आगे के कर्मों के फल हमें भोगने ही होंगे। हमें दृढ़तापूर्वक प्राप्त परिस्थिति का विश्लेषण करना चाहिए। साहसपूर्वक किसी भी स्थिति से निपटने के लिए तैयार रहना चाहिए। सारे भगवान या देवता मिलकर भी हमारा उद्धार नहीं कर सकते। हमारा उद्धार हमारे अपने उच्च कर्मों से ही सम्भव है। किसी परिस्थिति के आने पर कभी गिड़गिड़ाओ मत। आदमी मानसिक दुर्बलता एवं अविवेक-वश ही किसी प्रतिकूल दशा में डांवाडोल होता है। विवेक से समझ लेने पर समस्या नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। वीर बनो, सिंह बनो। तुमसे बड़ा कोई भगवान नहीं। याद रखो, सारी समस्याओं के समाधान के साधन हैं—आत्मज्ञान, आत्मविश्वास एवं आत्मसयंम।

534. प्रश्न—क्या कोई ऐसी अदृश्य शक्ति है जो इस अखिल ब्रह्माण्ड का संचालन करती है और वह सर्वज्ञ तथा सर्वत्र व्याप्त है?

उत्तर—द्रव्य और गुण अभिन्न होते हैं। विश्व में दो जाति के द्रव्य मूल हैं—जड़ और चेतन। उनमें उनके गुण भी विद्यमान हैं। एक सृष्टि है जड़-

चेतनात्मक और दूसरी है केवल जड़ात्मक। प्राणियों की योनियों का जहां तक विस्तार है तथा ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र है—जड़-चेतनात्मक है और इसके अतिरिक्त पर्वत, नदी, झरना, असंख्य निर्जीव ग्रह-उपग्रह आदि—केवल जड़ात्मक हैं। अतएव ये असंख्य भौतिक ब्रह्मांड, जड़ द्रव्यों की अपनी अनादि सिद्ध शक्ति से चलते हैं। ये भौतिक द्रव्यों से अभिन्न हैं। इस अनन्त ब्रह्मांड की गतिविधि के मूल में किसी सर्वत्र व्याप्त सर्वज्ञ की कल्पना करना भौतिक द्रव्यों की वास्तविकता से अनभिज्ञता का फल है। जब हम असमीक्षात्मक बुद्धि के प्रवाह में बहने लगते हैं, तब स्वत: सिद्ध, स्वचालित जड़ द्रव्यों के ऊपर दैवी प्रेरणा की भोली कल्पना में उतर आते हैं। चूंकि हम सोच करके काम करते हैं, इसलिए सोचते हैं कि बादल, बिजली, असंख्य ब्रह्माण्ड भी सोचकर काम करते हैं। सर्वत्र व्याप्त, सर्वज्ञ के नाम पर ही तो दुनिया के बड़े-बड़े ईश्वरवादी मत लाखों-लाखों को तलवार-बन्दूक के घाट उतारते रहे हैं; परन्तु वह सर्वज्ञ आज तक इन घटनाओं का पता नहीं पाया, अन्यथा अपने एजेंटों—मुल्ला, पादरी, पंडितों को अवश्य सुधारा होता। आप नहीं जानते कि सर्वज्ञ ईश्वर के नाम पर ही मुसलमानों ने लाखों गैर-मुसलमानों को काट डाला, इसाइयों ने लाखों गैर-इसाइयों को जिन्दा जला दिया, तलवार से काटा तथा बन्दूक से उड़ाया, हिन्दुओं ने भी ऊंच-नीच की भावना फैला कर दूसरों को सताया। अतएव किसी सर्वज्ञ की धारणा एक व्यामोह है।

535. प्रश्न—जो पापकर्म दृश्य में आते हैं उनका फल तो न्यायिक जांच द्वारा मिल जाता है, लेकिन अदृश्य को कौन देता है?

उत्तर—कणाद ऋषि कहते हैं कि जन्मांतर में कर्मफल भोग 'अदृष्ट' से होता है। अदृष्ट का मतलब है कर्मफल देने की अदृश्यशक्ति। ऋषि जैमिनि इसी को 'अपूर्व' के नाम से पुकारते हैं। सार यह है कि जीव जब मानव देह में कर्म करते हैं, तत्काल उनके संस्कार उनके सूक्ष्म मन में अंकित हो जाते हैं और अपनी उचित योग्यता प्राप्त कर जैसे बीज से वृक्ष स्वयं होते हैं, वैसे कर्म-बीज से प्रारब्ध-फल जीव को स्वयं मिल जाते हैं। इस ढंग से कर्मक्षेत्र में कारण-कार्य की स्वत: व्यवस्था है। लहसुन-प्याज खाने पर उनकी अपनी दुर्गंधित डकार मनुष्य को स्वयं आती है तथा आम आदि सुगंधित पदार्थ खाने से वैसी डकार।

536. प्रश्न—जीव दूसरे शरीर में कैसे प्रवेश करता है?

उत्तर—कर्म-संस्कार-वश तथा माता-पिता के सम्बन्ध में वह दूसरे शरीर के रचनास्थल गर्भ में प्रवेश करता है; रस, गंधादि में जाकर अयोनिज शरीर भी धारण कर लेता है। जैसे बीज से वृक्ष होते हैं, वैसे सूक्ष्म कर्मों से देहों की प्राप्ति होती है।

537. प्रश्न—जीव का व्यास कितना है?

उत्तर—यह कल्पना के परे की बात है। जीव निश्चित ही व्यापक नहीं है। यदि व्यापक हो, तो दो नहीं हो सकते। क्योंकि एक की व्यापकता में दूसरे की उपस्थिति बाधक होगी। प्रत्यक्ष जड़-चेतन भिन्न हैं। चेतन जीव असंख्य हैं, अतएव जीव व्यापक नहीं, किन्तु अणु परिमाण हैं, बस इतना ही कहा जा सकता है, मापा नहीं जा सकता है।

538. प्रश्न—मन पर विजय कैसे हो?

उत्तर—जिस दिन इसके लिए व्याकुलता हो जायेगी, यह काम सिद्ध होने लगेगा। सद्ग्रंथ खूब पढ़ो तथा साधु संगत और ध्यानाभ्यास करो।

539. प्रश्न—सोहं और सारशब्द क्या है?

उत्तर—'सोहं' का अर्थ है 'वह मैं हूं'। अर्थात जिसको मैं खोजता हूं वह मैं स्वयं हूं। सारशब्द कहते हैं निर्णय वचन को।

540. प्रश्न—आत्मा अमर, अज, अनादि, शाश्वत एवं अविनाशी है—इस कथन की पुष्टि कैसे हो?

उत्तर—जड़ प्रकृति में चेतना नहीं है। अतएव चेतना गुण स्वतन्त्र आत्मा एवं जीव का ही है। जो दूसरे से सर्वथा भिन्न हो, वही स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र है, वह शाश्वत है। जो शाश्वत है वह अज, अनादि एवं अविनाशी है।

*　　　　*　　　　*

541. प्रश्न—कल्याण-इच्छुक को शादी करना चाहिए कि नहीं?

उत्तर—जब कल्याण की पूरी इच्छा जग जायेगी, तब इस तरह प्रश्न करने की गुंजाइश ही नहीं रह जायेगी। शादी और कल्याण से कोई मतलब ही नहीं है। यदि आदमी आत्मकल्याण एवं विश्व-कल्याण करना चाहता है, तो उसे शादी से बहुत दूर रहना चाहिए। स्वतन्त्रता से ही कल्याण का कार्य सम्पादित हो सकता है। शादी तो परतन्त्रता है।

542. प्रश्न—जब जीव जागृत रूपी है, तब सुषुप्ति में वह किस अवस्था में रहता है?

उत्तर—जीव सुषुप्ति में भी जागृत रूपी है। वह उस समय भी ज्ञाता रूप ही है। इसीलिए सोकर उठने पर व्यक्ति कहता है कि मैं गाढ़ी नींद में सुख से सोया। यदि जीव गाढ़ी नींद के आनन्द में रहकर उसका अनुभव न किया होता,

तो जागकर कैसे उस आनन्द का वर्णन करता? अतएव जीव सब समय ज्ञानरूप है।

543. प्रश्न—आत्मज्ञान, अन्तर्ज्ञान एवं आत्मानुभूति किस साधन से होती है? कुछ लोग कहते हैं कि छठीं इन्द्रिय, कुछ लोग कहते हैं कि तीसरे नेत्र से वह ज्ञान होता है। सत्य क्या है?

उत्तर—छठीं इन्द्रिय तो मन ही है जो पांच ज्ञानेन्द्रियों से परे है। तीसरा नेत्र ज्ञान है। इन्द्रियों के बाद मन ही एक ऐसा साधन है जिससे अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है। मन के तरंग-रहित हो जाने पर अपने आप (आत्मा) का अनुभव होता है। इसके विषय में किसी विवेकी एवं साधना सम्पन्न पुरुष के पास जाकर समझना चाहिए।

544. प्रश्न—कामवासना पर विजय कैसे मिले?

उत्तर—काम-वासना एवं क्रिया की मलिनता एवं दुखरूपता की याद करो, ब्रह्मचर्य के सुख का निश्चय हो, शरीर की नश्वरता एवं सारहीनता का ख्याल रखा जाये, सद्ग्रन्थ खूब पढ़ा जाये, भोजन सादा एवं हलका किया जाये। साधु संगत करता रहे और विवेक-विचार में मन सदैव रमा रहे और इन सबके साथ कुसंग (स्त्री तथा स्त्रीलम्पट पुरुषों की संगत) का त्याग हो, तो कामवासना पर विजय अवश्य मिलेगी।

545. प्रश्न—एक धनवान, पढ़ा-लिखा और दानी व्यक्ति और दूसरा अनपढ़, निर्धन और गुरुभक्त व्यक्ति—इन दोनों में मोक्ष की राह पर कौन अग्रसर है?

उत्तर—गुरुभक्ति का मूल्य ज्यादा है, परन्तु जब यथार्थ स्वरूपबोधपूर्वक यथार्थ सद्गुरु की भक्ति हो। सार तो यह है कि पढ़-अपढ़, धनी-निर्धन कोई भी हो जो व्यक्ति शुभ मार्ग में जितना भी चलता हो उसका उसे अहंकार न हो, वही मोक्ष-पथ पर है। साधक वही है जो न अपने गुणों का अहंकार करता है तथा न दूसरे को तुच्छ देखता है। जो जितना ही निर्मान हो वह उतना ही मोक्ष पथ में अग्रसर है।

546. प्रश्न—जब परखता है तब पारखी, अन्यथा शुद्ध पारख चेतन मात्र—इसका अर्थ क्या है?

उत्तर—जीव देह में रहकर इन्द्रिय तथा मन द्वारा दृश्य-भास-पांच विषयों को जानता, परखता है; अतएव उसका नाम पारखी व द्रष्टा हैं, परन्तु जब समाधि या विदेहावस्था में उसके सामने देह, इन्द्रिय, अन्त:करण, मन, पांच विषय नहीं रहते, तब वह कुछ नहीं परखता। तब वह शुद्ध चेतन मात्र रहता

है। यही इसका अभिप्राय है।

547. प्रश्न—विविध मत के लोग यथा—जैन, बौद्ध, वेदान्ती, वैष्णव आदि अपने-अपने सिद्धान्तानुसार साधना की प्रगाढ़ता से चलकर क्या मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर—संसार के भोगों से लेकर कल्पित स्वर्ग एवं ईश्वर प्राप्ति आदि समस्त कामनाओं से सर्वथा निवृत्त हुआ व्यक्ति चाहे जिस मत का हो जीवन्मुक्ति का प्रत्यक्ष सुख भोगता है। जो बंधा है, जिसमें बंधा है—इस भेद को भलीभांति जानकर तथा विजाति बन्धनों से सर्वथा छूटकर चाहे जिस मत का व्यक्ति हो, जीवन्मुक्त हो जाता है।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए यथार्थ रहनी तथा यथार्थ बोध—दोनों की आवश्यकता है। जड़ से भिन्न चेतन अस्तित्व का ज्ञान तथा जड़ासक्ति त्यागकर स्वस्वरूप चेतन में स्थिति—मोक्ष का स्वरूप है। जो कुछ भिन्न है, उससे अपने आपको निकाल लेना ही तो मोक्ष है और यह दृष्टि प्राप्त पुरुष चाहे जिस मत का हो, मुक्त है। सत्य-स्वरूप नित्य है। अत: स्वरूपज्ञान प्राप्त करके कभी भी किसी देश-काल में व्यक्ति मुक्त होते रह सकते हैं। सत्य या मुक्ति पर किसी मत विशेष का एकाधिकार नहीं है।

किसी मत का व्यक्ति यह कहने का अधिकारी नहीं है कि दूसरे मत वाले मुक्त नहीं हो सकते। यदि सभी मत वाले अपनी-अपनी साधना से मुक्त होते हों, तो किसी सिद्धांत का अपना क्या नुकसान है? किसी भी मत का राग-द्वेष-निवृत्त व्यक्ति प्रत्यक्ष मोक्ष-सुख भोगता है। अब शरीर छूटने पर वह विदेहमुक्त होगा कि नहीं, यह देखने का विषय नहीं है। अत: इसके लिए किसी के मोक्ष को नकारा भी क्यों जाये?

हां, अपने समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि दृश्य से अपना द्रष्टा चेतनस्वरूप की सर्वथा भिन्नता है और पर से सर्वथा निवृत्त होकर स्वस्वरूप में पूर्ण स्थित होना ही मोक्ष है।

हर व्यक्ति को तथ्य को उदारता से समझना चाहिए तथा स्वयं यथार्थता के धरातल पर उतरना चाहिए।

548. प्रश्न—यदि कोई हमसे नफरत करे तो हम क्या करें?

उत्तर—सहन और क्षमा ही सुख का रास्ता है।

549. प्रश्न—संत की पहचान क्या है?

उत्तर—शील, संतोष, क्षमा, दया, ज्ञान, वैराग्य आदि से सम्पन्न संत होते हैं। संत की पहचान उनकी पवित्र रहनी है।

550. प्रश्न—गुरु बड़ा है कि परब्रह्म परमात्मा?

उत्तर—गुरु प्रत्यक्ष बोधदाता और सत्प्रेरणा का स्रोत है। जीव से पृथक परमात्मा तो एक कल्पना का विषय है। तुम्हें निर्गुण-निराकार परमात्मा से कुछ मिलने वाला नहीं, किन्तु सगुण, साकार, सचैतन्य सद्‌गुरु से ही बोध प्राप्त होगा।

551. प्रश्न—पारख-समाधि में बाह्य विषयों का ज्ञान रहता है या नहीं?

उत्तर—सारे विषयों का सम्बन्ध संकल्पों से ही है और संकल्पों का सर्वथा अन्त ही पारख-समाधि है। अतएव पारख-समाधि में केवल गहरी शांति रहती है।

552. प्रश्न—मनुष्य का विचार स्थायी क्यों नहीं होता?

उत्तर—निर्णय लेने की क्षमता एवं विवेक की कमी के कारण ऐसा होता है। जीवन में वही कुछ कर सकता है जो दृढ़ निश्चयी है।

553. प्रश्न—जीव का स्वरूप क्या है तथा वह पुनः शरीर कैसे धारण करता है?

उत्तर—जीव का स्वरूप ज्ञान एवं चैतन्य है। वह कर्म संस्कारों के वशीभूत होकर उसी प्रकार पुनः शरीर धारण कर लेगा, जैसे इस वर्तमान शरीर को एक दिन धारण कर लिया था। एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करने में कितनी देर लगती है, इसके नाप-जोख की कोई जरूरत नहीं है और न नापना-जोखना सम्भव ही है। पहले पिता के वीर्य में मिलकर माता के रज द्वारा गर्भ को प्राप्त होता है, यह मानने में कोई अड़चन नहीं दिखती। यह सब आंख से देखने की चीज नहीं, इसलिए अनुमान के आधार पर ही कहा जा सकता है। जीव सत्य है, उसका पुनर्देह धरना सत्य है। जो पानी की बूंद हमारे सामने अभी थी, वह भाप बनकर आकाश के किस स्थान पर स्थित है, हम नहीं बता सकते। परन्तु वह है अवश्य और समय से पुनः बूंद बनकर पृथ्वी पर आ जायेगी।

554. प्रश्न—यदि कोई भक्त बीमारी में इंजेक्शन एवं टेबलेट लेता है जिसमें अशुद्ध पदार्थ पड़ा हो सकता है, तो यह पाप है कि नहीं?

उत्तर—जिसका न मन हो वह ऐसी दवाई का सेवन न करे। यदि कोई करता है, तो इसके लिए विशेष उधेड़बुन करने की जरूरत नहीं।

555. प्रश्न—संसार में ज्ञानियों में सिरमुकुट कौन है? यदि कबीर साहेब को मानता हूं, तो लोग कहते हैं यह भी एक पक्ष हुआ, फिर क्या मानूं?

उत्तर—सत्य का पक्ष तो लेना ही पड़ेगा। कबीर साहेब की बात भी निष्पक्षता से विचारिये। संसार में चाहे कोई कितना ही बड़ा हो, जो ज्ञान आप में समायेगा, वही आपका कल्याण करेगा।

* * *

556. प्रश्न—क्या कबीर साहेब अपना रूप बालक का बना लेते थे और उनके ऊपर कथित बावन कसनियां क्या सत्य हैं?

उत्तर—जवान और बूढ़ा शरीर बालक का नहीं बन सकता। जिस समय शरीर की जो अवस्था रहती है, उस समय वही रहेगी। कबीर साहेब के विषय में कथित बावन कसनियां अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। धार्मिक कहलाने वालों में से अधिकतम लोग अपने गुरु की मिथ्या महिमा कहने में झूठ बोलने में उदार होते हैं। राम, कृष्ण, ईसा, मूसा, मुहम्मद, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक आदि जो दुनिया के श्रेष्ठ मनुष्य हुए, उनको दुनिया का कर्ता-हर्ता, ईश्वर, अनन्त ब्रह्माण्ड नायक जब कह दिया गया, तब उनके लिए जितना अतिकथन किया जाये सब चल जाता है। ध्यान रहे, सर्वत्र कारण-कार्य की एक शाश्वत व्यवस्था है। उसके बाहर कुछ भी नहीं होता। सब कुछ प्रकृति-संगत होता है। अन्यथा कभी कुछ नहीं होता।

कबीर साहेब के ऊपर कसनियों के कथन का सार यही है कि उनको शासक तथा पुरोहितों द्वारा कष्ट देने की चेष्टा की गयी, परन्तु वे उसमें खरे एवं उत्तीर्ण रहे। अन्तत: विपक्षी हार मानकर शांत हुए और कबीर देव का ज्ञान भारत में छा गया। कबीर देव निश्चित ही सच्चे ज्ञानी और उच्चतम संत हुए।

557. प्रश्न—कबीर साहेब की फोटो में दाढ़ी दिखायी गयी है, फिर पारखी संत दाढ़ी का विरोध क्यों करते हैं?

उत्तर—सरकार ने जो कबीर साहेब की फोटो छापी है, उसमें ज्यादा दाढ़ी नहीं है। कहीं-कहीं उनका ऐसा भी चित्र है कि बिलकुल दाढ़ी नहीं है। इसका मतलब कबीर साहेब कभी दाढ़ी रखाये रहे होंगे और कभी मुड़ा दिये होंगे, जैसा आज भी संत-जन करते रहते हैं।

दाढ़ी रखायी जाये या मुड़ायी जाये कोई फरक नहीं पड़ता, कल्याण तो मनुष्यता एवं विवेक-वैराग्य के आचरण में है। समय के अनुसार बाहरी चीजों में परिवर्तन आता है। किसी दिन हिन्दू की चोटी का महत्त्व बहुत था। आज शिक्षित हिन्दुओं में चोटी प्राय: उड़ती जा रही है, किन्तु उनके हिन्दू होने में कोई सन्देह नहीं है। बहुत बड़े-बड़े बाल न रखना स्वच्छता एवं सरलता की दृष्टि से अच्छा ही है, इसलिए पारखी संत दाढ़ी-बाल ज्यादा नहीं बढ़ाते। वे

समय-समय पर मुड़ा देते हैं। ऐसा करने से कबीर साहेब के प्रति श्रद्धा में कमी होने का अन्दाज नहीं लगाना चाहिए।

558. प्रश्न—कबीर साहेब सांसारिक लोगों से विचित्र टोपी पहनते थे, फिर पारखी-सन्त वैसा क्यों नहीं पहनते?

उत्तर—कबीर साहेब के चित्र में जिस प्रकार की टोपी दिखायी गयी है, वैसी टोपी यदि पहनते भी रहे हों, तो भी आज वैसा न पहनने से कोई अकाज नहीं है। वैसे यह आज-कल महंतों की टोपी है और हो सकता है कभी महंतों द्वारा ही यह टोपी कबीर साहेब के चित्र में आरोपित कर दी गयी हो। कबीर साहेब के चित्र की दाढ़ी और टोपी चाहे पारखी सन्त ग्रहण करें या न करें उनके ज्ञान तथा आचरण को वे ग्रहण करते हैं और इसी में कल्याण है।

559. प्रश्न—कबीर साहेब की फोटो में तीन अंगुली खड़ी दिखाने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर—यह उपदेश करने की मुद्रा है। उपदेश की मुद्रा में हाथ का अंगूठा और तरजनी उंगली की तोंद (अग्रभाग) सटी होती है, इसलिए अन्य तीन उंगलियां—मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा खड़ी हो जाती हैं।

560. प्रश्न—तत्त्व स्वचालित कैसे जबकि वे जड़ हैं?

उत्तर—यह महाभ्रम है कि तत्त्व जड़ होने से उनमें स्वयं क्रिया नहीं हो सकती, प्रत्युत उनमें जितनी क्रिया है सब किसी विराट चेतन की देन है।

तत्त्व जड़ हैं, यह ठीक है, और इसलिए उनमें चेतना नहीं है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सब चेतनाहीन हैं। परन्तु उनमें क्रिया तो स्वभावसिद्ध ही है। हवा, पानी, आग आदि में स्वाभाविक क्रिया है इसीलिए उनकी योग्यता से पानी बरसता है। उनमें चेतना न होने से अतिवर्षण तथा अवर्षण भी उनके द्वारा होकर जनता को बहुत पीड़ा हो जाती है। यदि जड़तत्त्वों की स्वभावसिद्ध क्रिया न होकर वे किसी चेतन से प्रेरित होते तो वह चेतन उचित समय पर वर्षा करता और वर्षा की मात्रा भी उचित रखता। अतएव पृथ्वी आदि जड़तत्त्व स्वचालित हैं, यह तो बहुत सहज बात है। आज विज्ञान का छोटा छात्र भी इसे जानता है कि जड़तत्त्व स्वयं क्रियाशील हैं।

561. प्रश्न—किसी वस्तु को कैसे कहें कि अनादि है?

उत्तर—कोई वस्तु शून्य से नहीं आयी है। संसार में जितनी वस्तुएं हैं कारण रूप से नित्य एवं अनादि हैं और कार्यरूप से नाशवान एवं क्षणिक हैं। जीवों की देहें, घर, घड़ा, वस्त्र, वृक्ष-वनस्पति आदि कार्य पदार्थ हैं और इनका

बनना-बिगड़ना बना रहता है, परन्तु ये भी अनादि से बनते-बिगड़ते आये हैं और अनन्त काल तक बनते-बिगड़ते रहेंगे। और ये कार्य-पदार्थ जिनमें बनते-बिगड़ते हैं, वे मूल जड़तत्त्व अनादि तथा अनन्त हैं। अतएव संसार में जिन वस्तुओं की सत्ता है उन सबका सारस्वरूप अनादि है। सत का ही अस्तित्व है और सत अनादि है। इन बातों को किसी विवेकवान पारखी संत से मिलकर आमने-सामने वार्तालाप में ठीक से समझो और उसकी पुष्टि के लिए सद्ग्रन्थ भी पढ़ो।

562. प्रश्न—जब मनुष्य-शरीर के अलावा पशु, पक्षी, कृमि-कीटादि कर्म-भूमि नहीं हैं, तो वहां के जीवों से कोई नये कर्म न बनने से क्या वे शरीर छूटने पर मुक्त हो जाते हैं?

उत्तर—मुक्ति ज्ञान एवं वैराग्य का फल है, जो मनुष्य शरीर में सम्भव है। इतर खानियों में जीव अपने कर्मफल-भोगकर कभी-न-कभी मानव शरीर में आता है और यहीं से पुरुषार्थ करने पर छुटकारा होता है।

563. प्रश्न—विवेकी का कर्तव्य क्या है?

उत्तर—स्व और पर का कल्याण करना।

564. प्रश्न—अन्तर्मुख कैसे हों?

उत्तर—स्वस्वरूप को पहचानकर।

565. प्रश्न—मरते समय तक क्या चुभता है?

उत्तर—अपना पाप, प्रबल मोह और द्वेष।

566. प्रश्न—बन्धनों में कौन है?

उत्तर—जो आसक्त है।

567. प्रश्न—आसक्ति क्या है?

उत्तर—प्राणी-पदार्थों में मन का प्रबल आकर्षण।

568. प्रश्न—विषय-वासनाओं को महात्मागण दुखरूप कहते हैं, परन्तु संसार का बहुमत इसे सुखरूप सिद्ध करता है तथा उसमें लिप्त रहता है। फिर क्या मानें?

उत्तर—सत्य ज्ञान के लिए बहुमत की आवश्यकता नहीं होती। वैसे संसार का बहुमत भी यही है कि विषय-भोग दुख उत्पन्न करते हैं।

569. प्रश्न—जीव देह-विकास का कारण है या देह की बुद्धि के साथ जीव पूर्णता की ओर अग्रसर होता है?

उत्तर—देह में जीव है, तभी देह विकसित होती है और देह जितनी विकसित होती है उतना ही जीव को ज्ञान का साधन मिलता है। जीव एकरस है। मन की पूर्णता के लिए शरीर साधन है, किन्तु शरीर के विकास के लिए जीव की उसमें विद्यमानता अनिवार्य है।

570. प्रश्न—क्या विभिन्न देह धारण करने से जीव की ज्ञान-वृद्धि होती है?

उत्तर—जन्म-जन्मांतरों के संस्कार जीव के साथ अवश्य रहते हैं। इसीलिए तो एक ही माता-पिता के अनेक बच्चे अनेक प्रकार के होते हैं। कोई प्रतिभा का धनी और कोई महामूर्ख। यह होते हुए भी हमें ज्ञान-वृद्धि के लिए आज पुरुषार्थ करना चाहिए।

571. प्रश्न—जीव-जीव में भेद है कि सब जीव समान हैं?

उत्तर—सब जीव मूलत: एक समान हैं। देहोपाधि एवं कर्म-भिन्नता से सबकी योग्यताओं में भिन्नता है।

572. प्रश्न—उष्मज खानि का शरीर वासना से ही कैसे बन जाता है?

उत्तर—वासना ही से समस्त खानियों की देहें बनती हैं। फर्क इतना है कि जहां योनिज खानि में माता-पिता के रज-वीर्य भूमिका हैं, वहां अयोनिज खानि के रस, गंध आदि पदार्थ भूमिका हैं। देह धरने में वासना के साथ पदार्थ लगते हैं, वे दोनों जगह हैं।

573. प्रश्न—जीव को जाग्रत और एकरस कैसे जानूं?

उत्तर—जीव चेतन रूप एवं ज्ञानरूप है, इसलिए वह जाग्रत है। जीव के मौलिक स्वरूप में कभी कोई परिवर्तन न होने से वह एकरस है। जितना परिवर्तन है, वह मन और शरीर के क्षेत्र में है।

574. प्रश्न—मन चंचल रहता है, स्थिर कैसे करें?

उत्तर—वैराग्यवान साधु और गुरु की उपासना, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय और विवेक जाग्रत करके मन को स्वच्छ बनाओ। जितना मन स्वच्छ होता जायेगा उतना वह स्थिर होगा।

575. प्रश्न—कबीर का अर्थ क्या है?

उत्तर—कबीर नाम के भारत में एक महान संत हुए हैं जो सर्वविदित हैं। कबीर का शाब्दिक अर्थ 'महान' है। कबीर का सैद्धान्तिक अर्थ चेतन है। क = काया, बीर = जीतने वाला, इस प्रकार काया-मन को जीतने वाला जितेन्द्रिय कबीर है।

576. प्रश्न—पुरुषार्थ क्या है?

उत्तर—पुरुष + अर्थ = पुरुषार्थ। 'पुरि शेते पुरुष:' शरीर रूपी पुर में शयन करने वाला चेतन पुरुष है। उसका अर्थ, अर्थात प्रयोजन पुरुषार्थ है। जीव का मुख्य प्रयोजन—दुखों से छुटकारा एवं परम शांति की प्राप्ति है। पुरुषार्थ का अर्थ प्रयत्न भी है।

577. प्रश्न—जीव अखंड है या मनुष्य?

उत्तर—जीव का अर्थ शुद्ध चेतन है और वह अखण्ड है। मनुष्य का अर्थ है जीवधारी मनुष्य शरीर। शरीर तो अखण्ड नहीं हो सकता, किन्तु शरीर में रहने वाला शुद्ध चेतन ही अखण्ड है।

578. प्रश्न—लक्ष्य और लक्ष्य को प्राप्त करने वाला एक है या दो?

उत्तर—यदि लक्ष्य भौतिक है, तो निश्चित है दो हैं और यदि लक्ष्य आध्यात्मिक है, तो एक है। लक्ष्य को प्राप्त करने वाला चेतन है और लक्ष्य चेतन की अपने आप में स्थिति ही है।

579. प्रश्न—जीव परीक्षक है। क्या वह परीक्षा से पृथक है?

उत्तर—जीव का स्वरूप ही ज्ञान है, अत: देहोपाधि से परीक्षक है, किन्तु वह जिसकी परीक्षा करता है उससे भिन्न है।

580. प्रश्न—जीव को चतुष्टय से ही बोध होगा या चतुष्टय छोड़कर?

उत्तर—तार और बल्ब के बिना विद्युत का प्रकाश नहीं हो सकता, यद्यपि विद्युत तार और बल्ब से सर्वथा पृथक है। इसी प्रकार जानने-जनाने का व्यापार चतुष्टय अन्त:करण के बिना नहीं हो सकता, यद्यपि जीव चतुष्टय अन्त:करण से सर्वथा पृथक है।

581. प्रश्न—जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति एक है या भिन्न?

उत्तर—भिन्न। शरीर रहते हुए शोक से सर्वथा रहित होना, जीवन्मुक्ति है और देह छूट जाने पर पुन: देह धारण न होना विदेहमुक्ति है।

582. प्रश्न—मोक्ष की प्राप्ति के लिए विवेक की प्रधानता है या वैराग्य की?

उत्तर—दोनों की।

* * *

583. प्रश्न—हिन्दू-जाति में आचार के आधार पर नहीं, जाति-पांति के आधार पर छुआछूत की मान्यता बहुत है। कबीरपंथी भी इस गलत रूढ़ि का

सर्वथा त्याग नहीं कर पाते। इसके लिए क्रांति क्यों नहीं की जाती?

उत्तर—हिन्दू धर्म के मूलग्रंथ वेदों में छुआछूत की कोई चर्चा नहीं है। उपनिषदों और महाभारत तक में छुआछूत का पता नहीं है। पुरोहितों की क्षुद्र धारणा से लिखी गयी मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रन्थों में छुआछूत के तुच्छ विचार हैं। कबीर साहेब के ख्याल से जाति के नाते कोई अछूत नहीं। उन्होंने अपने बीजक ग्रंथ में छुआछूत का खुलकर कड़ा विरोध किया है।

हिन्दू समाज में छुआछूत की धारणा महाकोढ़ है। इसका सर्वथा विनाश होना ही चाहिए। आदमी कितना दंभी, पाखंडी और मिथ्याभिमानी है कि वह बकरे, मुरगे और कुत्ते के बच्चे को तो गोद में रखकर खेला लेगा, परन्तु दूसरी जाति के पवित्र मानव को छूने में पाप मानता है। इतना ही नहीं, वह गन्दी तम्बाकू खा लेगा, बीड़ी, सिगरेट, शराब पी लेगा और इतना ही क्या, वह मछली, बकरा, कबूतर भी खा लेगा, परन्तु पवित्र मनुष्य को जो केवल भिन्न जाति का माना हुआ है, छूने में पाप समझेगा। छुआछूत के पाखण्ड से हिन्दू समाज का घोर पतन हुआ है, परन्तु वह अभी भी अपने इस पाप से मुक्त नहीं हो पाया है। ये मिथ्याभिमानी जीव जो जाति के आधार पर दूसरे से अपने को पवित्र समझते हैं, इनके हृदय में अन्धकार के सिवा और क्या है? पवित्र व्यक्ति अछूत कहां, वह चाहे जिस जाति का हो।

कबीरपंथी भी इसका सर्वथा त्याग नहीं कर पाते। इसका कारण है कि कबीरपंथ के जितने नर-नारी हैं सब हिन्दू समाज के ही हैं जिनमें सभी वर्ग के लोग हैं। उन सबकी समझ इस विषय में एकदम परिमार्जित नहीं हो पायी है। इसके अतिरिक्त उनको रोटी-बेटी का सम्बन्ध उन्हीं हिन्दुओं में करना रहता है, इसलिए भी उनकी रूढ़िगत मान्यताओं के अनुसार उन्हें चलना पड़ता है।

कबीरपंथी सन्त जो इस जातिगत छुआछूत की निस्सारता को समझते हैं, उनमें भी प्राय: लोक-समाज की जकड़बन्दी के कारण सर्वत्र अपनी समझ को व्यावहारिक रूप नहीं दे पाते।

इस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि हजारों वर्षों का कोढ़ शीघ्रातिशीघ्र एकदम नहीं समाप्त हो सकता। हम सब सही दिशा में निरन्तर पुरुषार्थ करते चलें। यह पाखण्ड टूटकर रहेगा। निरन्तर टूट रहा है। रहा-सहा कुछ दिनों में टूट जायेगा। यह अलग बात है कि कुछ राजनेता नामधारी इसे पुन: पनपाते हैं।

584. प्रश्न—वर्ण-व्यवस्था किसने बनायी और शूद्रों को किसने अछूत घोषित किया?

उत्तर—हजारों वर्ष पूर्व पेशे की दृष्टि से समाज के लोगों ने वर्ण-व्यवस्था बनायी और उस समय उसका उद्देश्य ठीक रहा होगा, परन्तु आज तो वह केवल सड़कर बदबू पैदा कर रही है। आज वर्णव्यवस्था कहां है? सभी वर्ण के लोग सभी काम कर रहे हैं। शूद्र को ही नहीं, हिन्दू समाज में सब एक-दूसरे को अछूत मानते हैं जो अज्ञान की उपज है।

585. प्रश्न—कबीरपंथ के बहुत-से सन्त-महंत पारख सिद्धांत से विमुख क्यों हैं? वे सब पारख सिद्धान्त क्यों नहीं ग्रहण करते?

उत्तर—वेदों का ज्ञानकांड उपनिषदें ही वेदों का अन्त भाग होने से वेदान्त हैं। उपनिषदों में द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिंत्य-भेदाभेद आदि अनेक दार्शनिक सिद्धान्त पैदा हुए। आश्चर्य का विषय है कि कबीर साहेब के मुख्य ग्रंथ बीजक में उक्त सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का आरोपण विद्वानजन करते हैं। यद्यपि, बीजक पारख सिद्धान्त का मौलिक ग्रन्थ है, तथापि सन्त, महंत एवं विद्वानजनों ने उसमें नाना भिन्न दार्शनिक सिद्धान्त की जगह बना रखी है। अतएव ऐसी अवस्था में हमें यह समझना चाहिए कि संसार में सभी मनुष्य एक ही सिद्धान्त के अधिकारी नहीं होते। सभी मनुष्य अपने भिन्न विचार रखने के लिए स्वतंत्र हैं। जैसे समस्त वेदांती वेदांत के विषय में अपनी भिन्न धारणा रखने के लिए स्वतंत्र हैं, वैसे समस्त कबीरपंथी कबीर साहेब को अपनी श्रद्धा और समझ के अनुसार समझने की चेष्टा करते हैं और उसमें वे स्वतंत्र हैं। पारखी संतों-भक्तों को यह नहीं मानना चाहिए कि जो कबीरपंथी संत-महंत या भक्त पारख सिद्धांत को ज्यों-का-त्यों नहीं स्वीकारते, वे गलत हैं। कबीरदेव ने भी कहा है—

कहहिं कबीर जिन जैसी समुझी, ताकी गति भइ तैसी।

(बीजक, शब्द 78)

कबीर साहेब के बहुत-से विचार—अहिंसा, शुद्धाहार, वर्ण तथा वर्गहीन शुद्ध मानवता, सदाचार आदि सभी कबीरपंथी एक समान मानते हैं। यदि स्वरूपज्ञान के विषय में भिन्न शाखा वाले कुछ भिन्न विचार रखते हों तो उसे सहना ही पड़ेगा। फिर देश-विदेश में फैला कबीरपंथ का इतना विशाल जनसमूह जिसमें सभी योग्यता के लोग हैं, सबका दार्शनिक सिद्धांत सर्वथा एक कैसे हो सकता है?

संतोष का विषय यह है कि कबीर साहेब के सिद्धान्त 'पारख' को स्वीकार करने वाले कबीरपंथ की सभी शाखाओं में सन्त-भक्त होते आये हैं। कबीरपंथ की विविध शाखाओं में रहने वाले महान सन्त श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब, श्री प्रयाग साहेब, श्री काशी साहेब, श्री

महाराज राघव साहेब तो धुरन्धर पारखी सन्त थे ही, काशी कबीर चौरा, धनौती, विद्दूपुर, फतुहा पारख सिद्धान्त के गढ़ रहे हैं। यहां तक कि वंश परम्परा में उत्तम पारखी संत-भक्त होते रहे। आज भी कबीरपंथ की करीब सभी शाखाओं में पारखी संत एवं भक्त पारख विचार में लीन हैं।

586. प्रश्न—कर्म भोग कर नष्ट होता है या ज्ञान से?

उत्तर—सामान्य बात यह है कि जीव जितना कर्म कर लेता है उनका फल उसे भोगना पड़ता है। अर्थात भोग करके ही नष्ट होता है, जैसे कबीर देव ने कहा है—

सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नौ खण्ड।
कहहिं कबीर सब भोगिया, देह धरे को दण्ड॥

(बीजक, साखी 295)

अब बात आती है ज्ञान की पूर्ण स्थिति की। जिनकी पूरी स्वरूपस्थिति हो गयी है, वे प्रत्यक्ष ही जीवन्मुक्त हैं, अत: उनको केवल प्रारब्ध भोग भोगना है। आगे जब उनके लिए देह रचना ही नहीं होगी, तो किसी प्रकार कर्म भोगने की क्या बात है! इसके लिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

तौ लौं तारा जगमगै, जौ लौं उगै न सूर।
तौ लौं जीव कर्मवश डोलै, जौ लौं ज्ञान न पूर॥

(बीजक, साखी 205)

इस साखी से साफ है कि पूर्ण ज्ञान की स्थिति जब तक नहीं होती है तभी तक जीव कर्म-वश भटकता है। ज्ञान की पूर्ण स्थिति हो जाने पर वह कृतार्थ रूप है।

587. प्रश्न—सूर्य और चन्द्रग्रहण को क्या छुआछूत मानना चाहिए?

उत्तर—बिलकुल नहीं।

588. प्रश्न—बधिक शिकार को खदेड़ता है। हमने शिकार को देख लिया। पीछे बधिक के पूछने पर उसे हम क्या बतावें?

उत्तर—हमें शिकार को नहीं बताना चाहिए। इसमें झूठ बोलना पड़े तो कोई बुरा नहीं।

589. प्रश्न—स्कूली पुस्तकों का किस तरह अध्ययन करें जिससे हम सफल विद्यार्थी बनें?

उत्तर—शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करो, विद्यार्थी जीवन में विवाह मत करो, कुसंग न करो, सिनेमाबाज एवं दुर्व्यसनी मत बनो, माता-पिता की सेवा करो,

गुरु की मर्यादा मानो और खूब लगन से पढ़ो। सफल विद्यार्थी होने की यदि पूर्ण चेष्टा है, तो अपने आप अध्ययन में प्रवीण हो जाओगे। भूखे को भोजन करने की ट्रेनिंग नहीं देनी पड़ती।

590. प्रश्न—मन्त्र क्या है और उसका प्रभाव क्या है?

उत्तर—मन्त्र कहते हैं राय को, विचार को तथा कुछ शब्दों के समुच्चय को जिससे कोई विचार प्रकट होता है। इसका प्रभाव भी प्रत्यक्ष है। शकुनि ने दुर्योधन को मन्त्र एवं राय दिया जुआ खेलने के लिए और इस मन्त्र को युधिष्ठिर ने स्वीकारा और इसका फल पतन हुआ। कैकेयी ने दशरथ को मन्त्र दिया श्रीराम को देश निकाला का, इसका फल जो हुआ प्रत्यक्ष है। श्री तुलसीदास की पत्नी ने उन्हें मन्त्र दिया चाम से हटकर राम-भजन का और उसका फल प्रत्यक्ष है। याज्ञवल्क्य, नारद, सनत्कुमार, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द आदि ने संसार को जो अपने-अपने मन्त्र एवं राय दिये उनकी प्रतिक्रियाएं जगत में प्रत्यक्ष हैं। हां, झाड़-फूंक, टोना-टामर के मन्त्र बिलकुल झूठे हैं।

591. प्रश्न—मोक्ष तथा सत्लोक वास में क्या अन्तर है?

उत्तर—मोक्ष स्वरूपस्थिति है। चेतन की सत्ता नित्य होने से जीवन्मुक्त पुरुष का शरीर छूट जाने पर वह चेतन विदेहमुक्त होकर अपने आप स्थित है। जीवन्मुक्ति की व्याख्या हो सकती है, विदेहमुक्ति की नहीं।

सत्लोक काल्पनिक है। वह कुछ नहीं। हां, स्वरूपस्थिति ही सत्लोक है, यह बात ठीक है।

592. प्रश्न—हम गुरु के दोष जानते हैं कि उनकी संगत से संक्रामक रोग मुझे लगेगा, फिर ऐसे गुरु को त्यागने में क्या दोष लगेगा?

उत्तर—गुरु की शरण एवं संगत कल्याण के लिए है। यदि गुरु स्वयं दोषलिप्त है, तो शिष्य को उससे सावधान होना ही पड़ेगा। गुरु उपास्य होता है और जब गुरु दोषलिप्त है तो उसकी उपासना सम्भव ही नहीं। अतः ऐसी संगत से हटकर अच्छे संतों की संगत एवं उपासना करना अत्यन्त आवश्यक है। श्री रामरहस साहेब ने कहा है—

जेहि बिधि काज जीव कै होई। लाज मिटाय करै पुनि सोई॥

(पंचग्रंथी)

593. प्रश्न—पारखी का लक्षण क्या है?

उत्तर—जो हंस के समान नीर-क्षीर का निर्णय करता हो, अर्थात जो सभी पक्ष छोड़कर सत्य-असत्य की परख करता हो, जो व्यवहार में दयावान हो,

किसी के साथ कठोर व्यवहार न करता हो, जिसमें नम्रता हो, सबको यथायोग्य आदर देता हो; जो चंचलता छोड़कर अपने पद में—अपने स्वरूप में स्थिर हो—उसने ही पारख को समझा है। यथा—

नीर क्षीर निर्णय करे, हंस लक्ष सहिदान।
दयारूप थिर पद रहे, सो पारख पहिचान॥

(बीजक, पाठफल, साखी 7)

594. प्रश्न—उद्दण्ड एवं अकर्मण्य छात्रों को रास्ते पर कैसे लावें?

उत्तर—अपने स्वभाव में गम्भीरता रखो और अपना सब आचरण शुद्ध रखो। तत्पश्चात बच्चों को धमका-डराकर प्यार के बल पर रास्ते पर ला सकते हो।

* * *

595. प्रश्न—यज्ञोपवीत द्विजाति क्यों पहनते हैं?

उत्तर—नंगे बदन से यज्ञ करना मना था। गरमी में भी यज्ञ होता था। लोग उस समय कंधे पर बिना कोई कपड़ा डाले यज्ञ में बैठने लगते थे। अत: ऋषियों ने नियम किया कि यदि कोई ब्राह्मण यज्ञ में कन्धे पर 'उत्तरी' (ओढ़ना) नहीं रखा है, तो वह कन्धे में सूत डाल ले। इसलिए यज्ञ से संस्कारित करके सूत कन्धे में डालने लगे। इसीलिए उसका नाम पड़ा यज्ञोपवीत। पीछे वह कर्मकांडी ब्राह्मणों का मुख्य चिह्न हो गया। फिर जो यज्ञ करने एवं कराने के अधिकारी हुए उनको यज्ञोपवीत दिया जाने लगा। यह यज्ञ का एक चिह्न है, जो आज केवल रस्म हो गया है।

596. प्रश्न—कपिलमुनि के मन्दिर का पानी तीन दिन गंगासागर के स्नान के समय क्यों हट जाता है?

उत्तर—प्राकृतिक कारण से, किसी दैव के चमत्कार से नहीं, जैसे पूर्णिमा को समुद्र में प्राकृतिक कारण से ज्वार आता है।

597. प्रश्न—क्या कबीर साहेब की पत्नी लोई या कमाल-कमाली आदि बच्चे थे?

उत्तर—बिलकुल नहीं। यह सारा भ्रम बाहरी लेखकों ने फैलाकर कबीर साहेब के व्यक्तित्व को धूमिल करने की चेष्टा की है। कबीर साहेब के मूल ग्रन्थ बीजक, उनके मूल स्थान कबीरचौरा काशी तथा फैले हुए विशाल

कबीरपंथ से यही सिद्ध होता है कि कबीरदेव परम वैराग्यवान, त्यागी, बालब्रह्मचारी विचरणशील महात्मा थे। वे भारत तथा अन्य देशों तक में भ्रमण करते हुए काशी में रहा करते थे।

598. प्रश्न—कबीरपंथी होने के नाते खुशी या गमी के मौके पर किस ग्रन्थ का पाठ कब तथा किस विधि से करना चाहिए?

उत्तर—कबीर साहेब के मुख्य ग्रंथ बीजक का पाठ सुविधानुसार करना चाहिए। उसके साथ संतों की सेवा तथा असहायों को दान करना चाहिए।

599. प्रश्न—कबीर साहेब के मन्दिर में उनकी मूर्ति रखनी चाहिए या उनका ग्रंथ?

उत्तर—मूर्ति कदापि नहीं रखनी चाहिए। ग्रंथ रखना ठीक है; परन्तु ग्रंथ की पूजा नहीं होनी चाहिए, अपितु ग्रंथ की कथा व पाठ होना चाहिए।

600. प्रश्न—इस अनादिकाल के जगत में बन्दीछोर सद्‌गुरु कबीर के पहले जीव मुक्त होते थे या नहीं?

उत्तर—मुक्ति पर किसी का एकाधिपत्य नहीं है। इस अनादिकाल के जगत में जब जिसको यथार्थ स्वरूप का बोध होकर सारी विषयासक्ति छूट गयी, तब वही मुक्त हो गया। सत्य को देश और काल की सीमा से परे रहने दो। उसको किसी अमुक देश, काल एवं केवल व्यक्ति विशेष में ही मत जकड़ दो। गुरुदेव कबीर स्वयं कहते हैं, "कहहिं कबीर सत सुकृत मिलै, तो बहुरि न झूले आन।" (बीजक, हिण्डोला 1) अर्थात सत्य—स्वरूपज्ञान तथा सुकृत—दिव्य रहनी जिसको जब प्राप्त हुई वह भवबन्धनों से मुक्त हुआ।

601. प्रश्न—सद्‌गुरु कबीर का चारों युगों में संसार में अवतार लेकर आना, जो केवल पारख सिद्धान्त को छोड़कर सब कबीरपंथी मानते हैं, क्या सत नहीं है?

उत्तर—भक्त लोग बड़े भयंकर होते हैं। कबीर साहेब का मुख्य मौलिक ग्रन्थ बीजक है, उन्होंने उसमें शुरू रमैनी में ही कहा है—

तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण बियापै मोहू॥

अर्थात हम-तुम सब मनुष्य एक ही खून से एक ही प्रकार पैदा हुए हैं। अर्थात कबीर साहेब अपने आप को एक मनुष्य मानते हैं। वे बीजक में अवतारवाद का डटकर खंडन करते हैं, तो पीछे उनके लाखों भक्त उन्हीं को अवतार घोषित करने को तुले हैं और जो कबीर साहेब को अवतार न माने उसको खरा-खोटा कहने पर भी आमादा हैं, यही है साम्प्रदायिकता।

महाराज राम तथा महाराज कृष्ण नहीं जानते थे कि हम किसी परमात्मा के अवतार हैं, अनन्त ब्रह्मांड नायक हैं और संसार के कर्ता-धर्ता हैं। चारों वेदों में, छहों शास्त्रों में तथा जिन पर स्वामी शंकराचार्यादि विद्वानों ने टीकाएं लिखी हैं प्रामाणिक प्राचीन उपनिषदों में कहीं एक लाइन भी अवतारवाद की नहीं है। लेकिन पीछे से भयंकर भक्तों ने श्रीराम और श्रीकृष्ण को प्रचण्ड अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया और इन महापुरुषों को अवतार न मानने वालों को गाली भी दी, वेद विरोधी भी कहा, जबकि अवतारवादी स्वयं घोर वेद-विरोधी हैं, क्योंकि ऊपर बताया गया कि चारों वेदों में कहीं अवतारवाद नहीं है।

बुद्ध और महावीर नहीं जानते थे कि हम किसी लोक से आये हैं और कोई अवतार हैं, परन्तु उनके अनुयायियों ने उन्हें कैसा बनाया है, यह सर्वविदित है। यही बात ईसा तथा मुहम्मद पर है। वस्तुतः अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद एक साम्प्रदायिकता है जो मनुष्य के क्षुद्र-हृदय की देन है और जिसके पीछे केवल कटुता है। अपने अवतार तथा पैगम्बर को न मानने वालों को हर मतवादी नास्तिक, काफिर एवं नापाक कहते हैं।

602. प्रश्न—स्वस्वरूप की पहचान कैसे हो?

उत्तर—स्वरूपबोध प्राप्त संतों की संगत करो, स्वरूपज्ञानपरक सद्ग्रन्थों को पढ़ो और विचारो कि सबका जानने वाला कौन है। जो सबको जानता है, वही अपना स्वरूप है। अर्थात भीतर जो ज्ञानज्योति जल रही है, वही अपना स्वरूप है।

603. प्रश्न—स्वरूपस्थिति कैसे हो?

उत्तर—अपना चेतन स्वरूप सारे दृश्यों से पृथक है। दृश्य-विषयों में मोह करके ही मन उनमें चिपका है। विवेक द्वारा जब उनका मोह क्षीण हो जायेगा, तब मन अनासक्त होकर अपने आप शांत हो जायेगा।

साधक को चाहिए कि वह एकांत में बैठे और मन को देखे कि वह क्या कर रहा है। मन को देखते समय यही उद्देश्य हो कि मन शांत हो जाये और मन को शांत करने के लक्ष्य से उसे देखते-देखते अवश्य उसके शांत हो जाने पर एक गहरी शांति होती है और यही स्वरूपस्थिति है। मन के सर्वथा लीन हो जाने पर वहां कोई चित्र नहीं रहता। वहां मात्र चेतन-सत्ता रहती है। अतः वहां केवल गहरी शांति है। यह स्वरूपस्थिति का स्वराज्य है। यही गुणातीत अवस्था है। यहीं पहुंचकर सारे अभावों का अन्त है। वह शेष समय निर्मल मन से स्वरूपभाव में रहता है।

604. प्रश्न—ऋग्वेद में श्रीकृष्ण की चर्चा शूरवीर के रूप में तथा वसिष्ठ की चर्चा है कि वे उर्वशी अप्सरा से पैदा हुए। तो वसिष्ठ त्रेता में हुए और

श्रीकृष्ण द्वापर में, फिर ऐसा कौन ऋषि था जो त्रेता से द्वापर तक की बात लिखता रहा?

उत्तर—लाखों-लाखों वर्षों की, युगों की कल्पना सर्वथा निराधार है। तीन-चार हजार वर्षों का ठीक से इतिहास नहीं मिलता, फिर यह कई लाख वर्षों के एक-एक युग का निर्धारण और हिसाब-किताब कौन रखता रहा? अत: चारों युग एकदम काल्पनिक हैं।

विद्वानों की धारणा है कि आज से पूर्व पांच हजार वर्ष से लेकर तीन हजार वर्ष पूर्व तक ऋग्वेद के मन्त्र अनेक ऋषियों द्वारा बनते रहे। इस प्रकार कम-से-कम दो हजार वर्षों तक नाना ऋषियों ने जो मंत्र रचे, उन्हें पीछे से संग्रहीत किया गया और उसी का नाम ऋग्वेद है। अतएव आज से तीन हजार वर्ष पूर्व तथा पांच हजार वर्ष के भीतर राम, कृष्ण, वसिष्ठ आदि सब का जीवन काल है। जब आदमी लोहा बनाना सीखा, वह काल आज से पूर्व साढ़े तीन हजार वर्ष के लगभग है। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि श्रीराम ने जिस धनुष को जनकपुर में तोड़ा था, वह लोहे की पेटी में बन्द था। अतएव इस ऐतिहासिक दृष्टि से भी श्रीराम का जीवनकाल आज से पूर्व साढ़े तीन हजार वर्ष के पहले नहीं ले जा सकते।

605. प्रश्न—उर्वशी अप्सरा से वसिष्ठ जी पैदा हुए ऐसा ऋग्वेद में लिखा है, यह तो ठीक है, परन्तु उनके पिता दो बताये गये मित्र तथा वरुण। दो पिता कैसे हो सकते हैं?

उत्तर—उर्वशी अप्सरा थी। वह उन्हीं दिनों मित्र और वरुण दोनों के यहां जाती और रहती थी। इसी बीच में जो उसे गर्भ रहा, वही वसिष्ठ जी हैं। उर्वशी को यह स्वयं पता नहीं था कि मेरा गर्भ मित्र से है या वरुण से। अत: ऋषियों के पूछने पर उसने मित्र तथा वरुण दोनों के नाम लिए कि दोनों में से किसी का हो सकता है। ऐसी स्थिति में ऋग्वेद में ऋषि ने मित्र और वरुण—दोनों के नाम मन्त्र में उद्धृत कर दिये 'उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या।' (ऋग्वेद 7/33/11)

आप हनुमान चालीसा में यही संदिग्धावस्था हनुमान जी के पिता के विषय में पायेंगे। वे तुलसीदास जी के वचनों में शंकर-सुवन हैं, फिर केशरी-नन्दन भी हैं और तीसरे पवन-सुत हैं। बात धुंधलके में रही होगी इसलिए ऐसा कहा गया है।

606. प्रश्न—वेदव्यास तथा पराशर के पिता कौन थे?

उत्तर—वेदव्यास के पिता पराशर तथा माता केवटकन्या मत्स्यगंधा प्रसिद्ध हैं। पराशर की माता श्वपाका अर्थात श्वान पकाकर खाने वाली भंगिनि कही

जाती है। उनके पिता शक्ति हैं, जो वसिष्ठ के पुत्र माने जाते हैं। इस प्रकार वसिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर और पराशर के पुत्र वेदव्यास कुल चार पीढ़ी। एक पीढ़ी पचीस वर्ष की मानी जाती है। अत: ये चारों सौ वर्ष के भीतर हुए। वसिष्ठ के समय में श्रीराम तथा वेदव्यास के समय श्रीकृष्ण। सौ वर्ष में सब।

607. प्रश्न—कामादि दुर्गुण तथा दयादि सद्‌गुण कहां से पैदा होते हैं?

उत्तर—दोनों मन से। मन शुद्ध हो जाने पर दुर्गुण न पैदा होकर केवल सद्‌गुण पैदा होते हैं।

608. प्रश्न—मनुष्य-शरीर मुक्ति का दरवाजा है, परन्तु कितने कोढ़ी, पागल, गर्भ में या बालकपन में मर जाने वालों को कल्याण-साधना का अवसर नहीं मिलता, फिर उनका कल्याण कब होगा?

उत्तर—आप इन बाधाओं से मुक्त हैं। आप अपने कल्याण की चिन्ता करें। जो आज असमर्थ हैं, उनको जब चांस मिलेगा, किसी जन्म में तब वे अपना उद्धार कर लेंगे। आज जो समर्थ हैं, वे अपने कल्याण का पुरुषार्थ करें।

* * *

609. प्रश्न—क्या झूठ बोलना पाप है? मैं व्यापारी हूं। कभी मेरा पीछा चोर भी करता है। उसे उलटा बताना पड़ता है।

उत्तर—झूठ बोलना, झूठी धारणा रखना, झूठ का व्यवहार करना—यही तो सबसे बड़ा पाप है। इसीलिए तो कबीर साहेब ने कहा है—''साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप।'' (बीजक, साखी 334)

रहा, चोर-बदमाशों से झूठ बोलकर अपना माल बचा लेना कोई पाप नहीं है। हां, पाप वहीं हो सकता है जब चोर-बदमाश तुम्हें पीटने लगें, तब तुम माल बताओ और तब माल दे देने पर भी वे तुम्हें पीटते रहें कि तुम और छिपाये होगे।

यदि तुमसे व्यवहार रखने वाले लोग तुमसे झूठ बोलकर सब व्यवहार करने लगें तो तुम दस दिन में परेशान होकर कहीं भाग जाना चाहोगे। यदि तुम्हें दूसरे द्वारा अपने तईं सत्य व्यवहार ही प्रिय है, तो तुम समझ सकते हो कि तुमसे भी लोग सत्य व्यवहार की ही आशा रखते होंगे।

610. प्रश्न—मैं आशा-तृष्णा की डोर में बंधा हूं। इसलिए खूब दुख भोग रहा हूं। इन दोषों से कैसे बचूं? गृहस्थी में रहकर इसके लिए क्या कर्तव्य हैं?

उत्तर—"मैं आशा-तृष्णा में बंध कर खूब दुख भोग रहा हूं।" इसका पूरा अनुभव जिस समय हो जायेगा, आप उस दुख से छूटने के लिए दृढ़ प्रयत्नवान हो जायेंगे। यह जीव दुख को शत्रु मानता है। सांप-बिच्छू दुखदायी हैं—यह अनुभव होने से मनुष्य उन्हें कहां छूता है! जिसे आप गहराई से दुख जान लेंगे, उसे आप सर्वथा छोड़ देंगे। यह आप में शक्ति है। साधु संगति, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा उसके अनुसार अभ्यास करते चलें।

611. प्रश्न—बन्धन एकतरफा है कि दोतरफा? आप कहते हैं बन्धन केवल मन का है चाहे घर में रहो चाहे बाहर। परन्तु घर-गृहस्थी में रहने वाले का सभी बन्धनों से छुटकारा कैसे होगा?

उत्तर—बन्धन एकतरफा है। केवल हम भूलवश बन्धनों को पकड़े हैं। हम छोड़ दें, तो हमें कोई नहीं पकड़ सकता। बन्धन सचमुच केवल मन की मान्यता है।

जब तक वैराग्य का परिपाक न हुआ हो, तब तक घर छोड़ देने पर आदमी अधिक उलझन में पड़ जाता है। पूर्ण वैराग्य उदय होने पर जब गृहस्थी का त्याग किया जाता है और उसके बाद भी जब सावधानी से साधना निरन्तर चलती रहे, तभी वैराग्य जीवन भर एकरस चलता है। यह ठीक है कि गृहस्थी का त्याग किये बिना पूरे बन्धन नहीं कटते परन्तु यह भी सर्वथा सत्य है कि पूर्ण वैराग्य उदय हुए बिना गृहस्थी का त्याग उलटा बन्धन बनाता है। अत: जहां पर रह रहे हो, वहां पर बन्धनों को काटने का काम करते रहो।

612. प्रश्न—साधु और महंत में क्या अन्तर है?

उत्तर—साधु वह है जो आत्मकल्याण और लोककल्याण के लिए साधना करे। महन्त उसे कहते हैं जो किसी मठ का व्यवस्थापक हो। यह हो सकता है कि कोई साधु और महन्त दोनों हो।

613. प्रश्न—भक्त को कैसे रहना चाहिए?

उत्तर—पाप की कमाई न करे, चोरी, हत्या, व्यभिचार, झूठ, ठगी, बेईमानी, मांस, शराब, अण्डा, मछली, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, भांग, तम्बाकू आदि का त्याग रखे। अपनी कमाई के कुछ अंश यथासंभव परोपकार में लगाता रहे। साधु-संगत, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सेवा और सदाचार का पालन करते हुए स्वरूपज्ञान का विचार करता रहे।

614. प्रश्न—गुजरात में अधिकतम कबीरपंथी महन्त शादी भी करते हैं, फिर भी वे शिष्य बनाते हैं। क्या यह ठीक है?

उत्तर—कबीरपंथ में एक शाखा वंश परम्परा की है, जिसके महन्त विरक्त भी होते हैं, और गृहस्थ भी। नाना मत में गृहस्थ गुरु होते हैं, तो वैराग्य प्रधान

कबीरपंथ में भी एक शाखा गृहस्थ-गुरुओं की उपस्थित हो गयी। वस्तुतः गृहस्थ गुरुपद का अधिकारी नहीं। क्योंकि जो स्वयं विषय-वासना में लिपटा है, उसमें गुरुत्व कहां है? परन्तु संसार में सब कुछ चलता है। चलो, जिनके द्वारा भी जगज्जीवों का कुछ हित हो जाये, अच्छा है।

615. प्रश्न—संधि शब्द मन है और मन शब्द रूप है, क्या यह सत्य है? यदि नहीं तो सत्य क्या है?

उत्तर—प्रसंगवशात संधि शब्द का अर्थ है भ्रांतिपूर्ण शब्द। मन शब्द रूप है का अर्थ है कि शब्द से ही मन चलता है। पशु शब्द नहीं समझता तो उसका मन भी ज्यादा नहीं चलता। मानसिक विकारों का मूल शब्द ही है। इस प्रकार आपका कहना ठीक है।

616. प्रश्न—शब्द का सर्जक जीव है कि माया?

उत्तर—शब्द का सर्जक जीव है, परन्तु माया उसमें सहायक है। बिना माया की सहायता के जीव कुछ नहीं कर सकता। फिर भी जीव की विशेषता है।

617. प्रश्न—जीवन की धारा कितनी है?

उत्तर—मुख्य दो। एक बहिर्मुख अर्थात सांसारिकता। दूसरी अन्तर्मुख अर्थात आध्यात्मिक गहराई में पहुंचना।

618. प्रश्न—हंस किसे कहते हैं, वंश किसे कहते हैं? दोनों की रहनी क्या है?

उत्तर—हंस कहते हैं विवेकी को। एक विचार से 'अहंसः' के 'अ' और विसर्ग (:) लुप्त होकर हंस बन गया। अहम् = मैं, सः = वह। मैं वह हूं जो चाहता हूं—ब्रह्म, परमात्मा। अर्थात जिस ब्रह्म या परमात्मा को मैं खोज रहा था, वह मैं ही हूं। जो इस विवेक में पहुंच गया, वह जड़ की आसक्ति छोड़कर स्वरूप-विचार में रमता है।

वंश कहते हैं पुत्र को। घर-गृहस्थी का घेरा। उसकी रहनी है भक्तिधर्म के आचरण से चलना।

619. प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि गुरु की पोस्ट पर रहकर पत्नी के साथ रहा जा सकता है। क्या यह सत्य है?

उत्तर—वह गुरु हो सकता है। अर्थात किसी विषय का शिक्षक। परन्तु सद्गुरु नहीं हो सकता। सद्गुरु पद, निर्विषय पद है।

620. प्रश्न—आकाश शून्य है, तो वह तत्त्व कैसा, फिर शरीर को पांचभौतिक क्यों कहा जाये?

उत्तर—आकाश अवश्य शून्य है। पारख सिद्धांत में यदि पांचभौतिक कहीं लिखा हो, तो उसका अर्थ है शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध—इन पांच विषयों का समुच्चय। वैसे चार तत्त्वों के साथ पांचवां आकाश शरीर में है ही; अतएव तत्त्वदृष्टि से भी शरीर को पांचभौतिक कहा जा सकता है।

621. प्रश्न—क्या बकरी पालना पाप है?

उत्तर—पालना तो पाप नहीं है, परन्तु उसे मारना या कसाई के हाथों में बेचना पाप है। इसलिए भक्त लोग बकरी नहीं पालते।

622. प्रश्न—क्या शूद्र का अर्थ ऊपर के अन्य तीन वर्णों की सेवा करना अथवा अछूत है, जिसे समाज घृणा की दृष्टि से देखता है?

उत्तर—वर्णव्यवस्था के अनुसार, जिसे आप चौथा वर्ण कहते हैं जैसे कुर्मी, कुम्हार, मुराव, तेली, कलवार आदि बीसियों जातियां शूद्र ही हैं और जिनको आप अछूत कहते हैं जैसे चमार, भंगी आदि वे अतिशूद्र हैं। वर्ण-व्यवस्थानुसार ये सब वेद और विद्या के अनधिकारी हैं। परन्तु यह सब मूर्खतापूर्ण धारणा है। न कोई अछूत है और न कोई शूद्र। कुछ स्वार्थियों ने यह सब जहर फैलाकर अपना स्वार्थ साधा था। परन्तु इसका परिणाम उनका तथा पूरे देश का पतन हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—यह सब कुछ नहीं। मानव मात्र एक समान हैं। उनमें जो पवित्र हो, वही श्रेष्ठ है। इसीलिए वेश्यापुत्र वसिष्ठ, धीवरीपुत्र व्यास, भंगिनीपुत्र पराशर, दासीपुत्र नारद आदि देवर्षि-ब्रह्मर्षि आदि कहलाये।

623. प्रश्न—पारख सिद्धान्त में ज्ञान और रहनी की पूजा होती है कि केवल वेष की?

उत्तर—ज्ञान और रहनी की ही पूजा पारख सिद्धान्त में मान्य है। यदि ज्ञान और रहनी सम्पन्न वेष है, तो वह भी पूज्य है। सद्गुरु कबीर का निर्देश है—

कर बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय।
सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय॥

(बीजक, साखी 294)

624. प्रश्न—जब प्रारब्ध के अनुसार ही कष्ट होगा व शरीर छूटेगा, तो खतरे से सावधान रहने की क्या आवश्यकता?

उत्तर—क्योंकि खतरे से नया दुख मिल सकता है, जो प्रारब्ध में न हो।

625. प्रश्न—कभी-कभी किसी-किसी को छोटी गलती का बड़ा परिणाम भोगना पड़ता है, ऐसा क्यों?

उत्तर—कारण-कार्य की एक अटूट व्यवस्था है। उसमें अन्यथा होने की बात ही नहीं उठ सकती। हमें अन्य कोई सुख-दुख नहीं देता। हमें अपने कर्मों के ही फल भोगने होते हैं।

626. प्रश्न—कोई थोड़े दुख में कराहने लगता है और कोई भयंकर दुख में भी शांत रहता है, ऐसा क्यों?

उत्तर—हृदय की दुर्बलता और सबलता कारण है।

627. प्रश्न—जीवन की अन्तिम घड़ी दुखपूर्ण न होकर, सुख-शांतिमय हो इसके लिए क्या प्रयत्न करने चाहिए?

उत्तर—कामचलाऊ भोजन, वस्त्र, औषध और निवास का प्रबन्ध तो होना ही चाहिए। इसके अलावा आध्यात्मिक पक्ष में आवश्यक है मन का शांत रहना। यथासंभव थोड़ी और सादी वस्तुओं से गुजर करने की प्रवृत्ति, किसी से दृढ़ ममता एवं वैर न करना, सबसे मीठा वचन बोलना, मीठा व्यवहार रखना, विशेषतर जिनके साथ रह रहे हों, उनके साथ मधुरतम व्यवहार रखना, किसी के दोष-दर्शन, निन्दा एवं उखाड़-पछाड़ में न रहना, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, समय-समय से साधु-संगत करना, स्वरूपस्थिति का अभ्यास करना और समस्त इच्छाओं का त्याग करते रहना चिरशांति के साधन हैं।

* * *

628. प्रश्न—आज-कल प्राय: देखने में आता है कि बड़े-बड़े धनी-मानी एवं पापी (जुल्मी) व्यक्तियों का हार्टफेल होकर उनकी झटपट मृत्यु हो जाती है, जबकि सारी उम्र धर्माचरण में लगे हुए व्यक्ति की मृत्यु वृद्धावस्था में एवं कष्टपूर्ण होती है। ऐसा क्यों?

उत्तर—बिलकुल ऐसी बात नहीं है। आपने कुछ लोगों को देखकर ऐसी धारणा बना ली है। आज के पापी को भी यदि जीवन के किसी हिस्से में सुख है, तो वह उसके ही कभी के पुण्यकर्मों का फल है तथा धर्माचरण सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में यदि कहीं किसी हिस्से में दुख है, तो वह भी उसी के कभी-न-कभी के पाप-कर्मों का फल है। कारण से ही कार्य होता है, बिना कारण के नहीं।

629. प्रश्न—बहुत प्रयत्न करने पर भी सत्संग का संयोग नहीं मिलता, रोड़े पड़ जाते हैं। क्या करें?

उत्तर—प्रयत्न चलते रहें, तो सफलता होती है, आज नहीं तो कल।

630. प्रश्न—किसी चीज का गायब हो जाना असावधानी का परिणाम है कि पूर्वकर्म का?

उत्तर—हर घटना को पूर्व कर्मों से जोड़ना अच्छा नहीं। वर्तमान में मनुष्य को हर प्रकार से सावधान रहना चाहिए।

631. प्रश्न—मन अशांत रहता है इसलिए सिर भारी रहता है। मन कैसे शांत हो तथा मस्तिष्क कैसे स्वस्थ हो?

उत्तर—अज्ञान-वश मनुष्य अपने मन में नयी-नयी समस्याओं की रचना करता है और उन्हीं को लेकर रात-दिन अपने मन को उलझाये रखता है। मनुष्य अच्छी पुस्तकों के अध्ययन तथा संत-सज्जनों की संगत से अच्छी समझ प्राप्त कर विवेक द्वारा अपनी सारी भ्रमजनित समस्याओं का समाधान कर सकता है। जितना विवेक जगेगा, उतना मन शांत होगा और जितना मन शांत होगा, मस्तिष्क स्वस्थ होगा।

632. प्रश्न—मुझे पढ़ाई में तीव्र इच्छा है, परन्तु प्रयत्न करने पर भी इच्छित सफलता नहीं मिलती, क्या करें?

उत्तर—प्रयत्न करते चलो, सफलता मिलेगी। आत्मविश्वास, आत्मसंयम एवं आत्मज्ञान मनुष्य को महान बना देते हैं।

633. प्रश्न—आप प्रवचन करते समय भी मौन-मुद्रा में क्यों प्रतीत होते हैं? वक्तव्य देते समय आप कभी भी क्रोध, दुख, उत्साह, करुणा आदि प्रकट करने के लिए हाथों, नेत्रों आदि का इशारा नहीं करते, ऐसा क्यों?

उत्तर—मैं यह सब प्रवक्ता के दोष समझता हूं। विशेषत: आध्यात्मिक प्रवक्ता को चाहिए कि वह स्थिर आसन से बैठकर या संयोग होने पर खड़ा होकर भी स्थिरतापूर्वक वक्तव्य दे। वह हाथ, पैर, सिर, आंख, मस्तक, कमर, धड़ किसी प्रकार भी चंचल न करे और न स्वर-व्यायाम करे। आध्यात्मिक प्रवक्ता की सारी बातों में गम्भीरता होनी चाहिए। वह प्रवचन के बीच-बीच में उद्‌बोधन तथा मनोरंजन के लिए उदाहरण एवं कहानी भी दे, तो उसमें भी संयम रखना चाहिए।

634. प्रश्न—'पूरा साहेब सेइये'—सद्‌गुरु कबीर के इस वचनानुसार पूरे साहेब की पहचान कैसे हो?

उत्तर—स्वरूपज्ञान और निष्काम अन्त:करण वाले महापुरुष ही पूरा साहेब हैं। साधु-संतों की संगत करो, खोज करो, धीरे-धीरे सब पता चल जायेगा।

635. प्रश्न—''बोली हमारी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोय। हमको तो सोई लखै, जो धुर पूरब का होय॥'' (साखी 194) बीजक की इस साखी का अर्थ क्या है?

उत्तर—पूर्व कहते हैं जहां सूर्य उदित हो। अत: 'पूर्व' शब्द उजाला का प्रतीक है और उजाला का अर्थ है ज्ञान। अतएव तात्पर्य हुआ कि हमारी बात ज्ञानपरक है। इसे वही समझ सकता है जो ज्ञानपरक बुद्धि रखता है परन्तु जो केवल कर्मी उपासक होगा, वह हमारी बात नहीं समझ सकता।

इस साखी के 'पूर्व' शब्द का अर्थ बनारस लगाना बिलकुल भूल है। जैसे कि कुछ विद्वान अर्थ करते हैं—''कबीर जी कहते हैं कि हमारी बोली पूर्व की अर्थात बनारस की है। हमें दूसरा नहीं समझ सकता। हमारी बात वही समझेगा जो बनारस का होगा।''

भला बनारस पूर्व कैसे है? माना कि गुजरात तथा राजस्थान से बनारस पूर्व है, परन्तु बंगाल से तो पश्चिम है, नेपाल से दक्षिण तथा मद्रास से उत्तर है। दिशा देश-सापेक्ष होती है। अपने आप में वह कुछ नहीं। अतएव पहले वाला अर्थ ही ठीक है। यह ठीक है कि कबीर साहेब की असली वाणी वही है जो बनारस-गोरखपुर के बीच की भोजपुरी लटके में है। बीजक इसी तरह है।

636. प्रश्न—'जाका गुरु है आंधरा, चेला काह कराय। अन्धे-अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय।' (साखी 154) बीजक की इस साखी में अन्धे गुरु तथा चेला किसे कहा गया है?

उत्तर—जो अविवेक और भौतिक स्वार्थ में लिप्त हों, वे गुरु तथा चेले अन्धे ही हैं।

637. प्रश्न—कर्मों का विधाता जीव है या मन? मन तो जड़ है। यदि जीव है, तो उसे अपने कर्मों की याद क्यों नहीं रहती?

उत्तर—जीव ही अपने कर्मों का विधाता है। जब वह कर्म करता है, तब जानकर ही करता है। पीछे से कर्म भूल जाये तो भी फर्क नहीं पड़ता। जो कर्म कर लिए गये हैं, उन्हें कर्मी जीव को देर-सबेर भोगना ही है।

638. प्रश्न—जिस इन्सान के मन में शांति न हो, उसे क्या करना चाहिए?

उत्तर—जिनका मन शांत हो उनकी संगत करना चाहिए तथा ज्ञान के वचनों का मनन करना चाहिए।

639. प्रश्न—अस्थि-चर्ममय देह में प्रेम करने की अपेक्षा किसमें प्रेम करने से बन्धनों से मनुष्य छूट सकता है?

उत्तर—अपने अविनाशी चेतन स्वरूप में।

640. प्रश्न—सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का क्या अर्थ है?

उत्तर—नित्य, कल्याणरूप और पवित्र।

641. प्रश्न—क्या वैराग्य के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती?

उत्तर—इसमें भी कुछ संदेह है! राग ही जीव को विषयों में बांधता है। विषयों से विरक्त मन ही स्वरूपज्ञान एवं आत्मस्वरूप में स्थित होता है। चाहे गृहस्थी वेष में रहकर और चाहे विरक्त वेष में रहकर, अन्ततः, मन से पूर्ण विरक्त होना ही पड़ेगा, तभी मोक्ष सम्भव है। भोग-योग साथ-साथ सम्भव नहीं हैं। हां, कुछ ऐसे गुरु नामधारी अवश्य हैं जो सम्भोग में समाधि देखते हैं, परन्तु ऐसे लोगों के भ्रांत विचार को भूल ही जाना चाहिए।

मुक्ति विषय वैराग्य है, बन्धन विषय सनेह।
यह सद्ग्रन्थन को मता, मन माने सो करेह॥ (मणिमाला)

642. प्रश्न—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर अपनी गीतांजलि में लिखते हैं 'वैराग्य-साधन से जिस मुक्ति की प्राप्ति होती है, वह हमारे लिए नहीं है। अनुराग के हजारों बन्धनों में ही मुझे मुक्ति के आनन्द का अनुभव होता है।' इसका अभिप्राय क्या है?

उत्तर—रवीन्द्रनाथ टैगोर गृहस्थ थे। वे वैराग्य के विषय में क्या कह सकते हैं? एक वकील डाक्टरी के विषय में, एक डाक्टर वकालत के विषय में, एक व्याकरणाचार्य इंजीनियरिंग के विषय में क्या घोषणा कर सकता है? यहां तक कि एक राष्ट्रपति साइकिल का पंचर भी कैसे बना सकता है बिना जाने? किसी विषय में सही घोषणा उसका अनुभवी ही कर सकता है।

643. प्रश्न—यदि किसी समयविशेष में सत्य बोलने की अपेक्षा झूठ बोलने से अपेक्षाकृत ज्यादा व्यक्ति लाभान्वित हो रहे हैं, तो क्या ऐसी परिस्थिति में झूठ बोलना चाहिए?

उत्तर—महाभारत में यह कहा गया है कि हर जगह केवल शब्दों की सत्यता ही पर्याप्त नहीं है। जिससे समाज का ज्यादा हित हो, वही सत्य है। परन्तु कब कैसी परिस्थिति में इसका उपयोग करना चाहिए इसकी पहले से घोषणा नहीं की जा सकती। यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न है, इसका समाधान प्राप्त सन्दर्भ में ही करना चाहिए।

644. प्रश्न—वर्णव्यवस्था का आधार जन्म है या कर्म? यदि कर्म है तो द्रोणाचार्य ब्राह्मणकुल में पैदा होकर क्षत्रिय-कर्म किये। फिर भी उन्हें क्षत्रिय

नहीं कहा गया, क्यों?

उत्तर—द्रोणाचार्य को पूर्व ब्राह्मण नाम से लोग भले याद करते रहे हों, परन्तु वे वस्तुतः थे तो क्षत्रिय ही। धीवरीतनय व्यास, गणिकापुत्र वसिष्ठ, दासीपुत्र नारद, भंगिनिपुत्र पराशर, दासीपुत्र वाल्मीकि, लापता पिता के पुत्र सत्यकाम आदि अपने कर्म से ही ब्राह्मण, ब्रह्मर्षि आदि माने गये। आज के सन्दर्भ में तो वर्णव्यवस्था का कोई मूल्य नहीं है। जो जितना अच्छा कर्म करे, वह उतना ही उत्तम पुरुष है, फिर वह चाहे जिसके घर में पैदा हुआ हो।

* * *

645. प्रश्न—मोक्ष-प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताये जाते हैं—कर्म, ज्ञान और उपासना। इनमें सर्वश्रेष्ठ मार्ग कौन है?

उत्तर—तीनों की समान आवश्यकता है। मोक्ष ही क्या, साधारण वस्तु की उपलब्धि के लिए तीनों की आवश्यकता है। मान लो, रोटी पकाना है। इसके लिए ज्ञान चाहिए, फिर रोटी पकाने के लिए प्रेम होना चाहिए, यही यहां श्रद्धा या उपासना है और अन्त में कर्म की भी जरूरत है। रोटी बनाने की सब सामग्री इकट्ठी करके कार्य सम्पादन करना कर्म है। रोटी पकाने का ज्ञान न हो तो रोटी नहीं बन सकती। रोटी पकाने में श्रद्धा न हो तो भी वह ठीक से नहीं पक सकती तथा रोटी पकाने का कर्म न किया जाये, तो भी रोटी नहीं पक सकती। फिर मोक्ष के लिए क्या पूछना! उसके लिए कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों की महती आवश्यकता है।

हमारे जीवन में तीन हिस्से हैं—इन्द्रियां, मस्तिष्क तथा हृदय। इन्द्रियां कर्म प्रधान, मस्तिष्क ज्ञान प्रधान तथा हृदय उपासना प्रधान है। पवित्र आचरण कर्म है, स्वरूपबोध ज्ञान है तथा स्वरूपबोध में निरन्तर अनुरक्ति उपासना है। तीनों के समुचित अवधारण से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

646. प्रश्न—वर्तमान समय में हो रहे धर्मपरिवर्तन आपकी दृष्टि में?

उत्तर—आजकल हरिजन एवं आदिवासी आये दिन इसाई तथा मुसलमान हो जाते हैं। कुछ हिन्दू धर्माचार्य या हिन्दू संस्थाएं कहती हैं कि यह राजनीतिक चाल है। परन्तु मेरे विचार से यह हिन्दू समाज की कमजोरी है। दूसरे को अछूत मानना ही हिन्दू समाज का सबसे बड़ा धर्म है। आचार के नाते नहीं, केवल जाति के नाते अमुक आदमी अछूत है, इस मूर्खतापूर्ण धारणा ने हिन्दू समाज को जर्जरित कर दिया है। फिर भी हिन्दू समाज के अहंकारी लोगों की आंखें नहीं खुलतीं। अभक्ष्य सेवी तथा कुकर्म में रत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कुर्मी, मुराव, यादव आदि अछूत नहीं होते, किन्तु सदाचारी तथा भक्त हरिजन,

आदिवासी आदि अछूत माने जाते हैं। अतएव जाति के आधार पर माने गये छुआछूत का ढकोसला हिन्दू समाज से सर्वथा निकालकर ही उसका कल्याण होगा। वैसे गुरुदेव कबीर तो मानवमात्र के प्रति कहते हैं कि सब एक हैं।

647. प्रश्न—इन्द्रियां चेतन नहीं हैं, तो जीव का हुक्म कैसे मानती हैं?

उत्तर—इन्द्रियों को जीव को हुक्म देने की जरूरत भी नहीं है, प्रत्युत उन्हें अपने वश में रखना है। जैसे सूत्रधार कठपुतलियों को अपने वश में रखकर उन्हें अपने इच्छानुसार चलाता है, वैसे जीव को चाहिए कि इन्द्रियों को अपने वश में रखकर, उन्हें विवेक के अनुसार चलावे।

648. प्रश्न—मेढक को सर्प निगल रहा है। यदि मेढक पर दया करके सर्प को खदेड़ दूं, तो सर्प का आहार मारा जाता है तथा यदि उसे मेढक पकड़ने दूं, तो मेढक मारा जाता है। फिर क्या करूं?

उत्तर—सामने होती हुई हत्या यदि सम्भव हो तो बचाना अपना धर्म है। यदि सर्प से मेढक बचा लिया गया, तो ऐसी बात नहीं है कि सर्प बिना आहार के मर जायेगा।

649. प्रश्न—परिवार नियोजन के बाद उन्हीं मां के गर्भ में आने वाले बच्चे कहां जायेंगे?

उत्तर—उन्हीं मां के गर्भ में आने का कोई रिजर्वेशन नहीं है। कर्मानुसार जीव कहीं शरीर धारण करके अपने कर्म-फल-भोग भोगते रहेंगे। अधिक बच्चा पैदा करने की अपेक्षा यदि ब्रह्मचारी न बन सके, तो संतान-नियोजन करा लेना ठीक है। एक बच्चा से अधिक मत पैदा करो।

650. प्रश्न—कबीर साहेब सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे। आज उसके उलटा है क्यों?

उत्तर—कबीर साहेब सिद्धान्तहीन नहीं थे। सिद्धान्तहीन जीवन तो अस्त-व्यस्त होता है। हां, यह आप कह सकते हैं कि कबीर साहेब के कुछ अनुगामी कबीर साहेब के सिद्धान्त को न समझ पाते हों और समझ करके भी न आचरण कर पाते हों, तो अलग बात है। सभी अनुगामी अपने मूल आचार्य के पथ पर पूर्णतया कहां चल पाते हैं?

श्रीकृष्ण महाराज का गीतोपदेश कितना ऊंचा है, यह किसी से छिपा नहीं है। परन्तु श्रीकृष्ण महाराज के बच्चे और नाती-पोते शराब पी-पीकर और उद्दंडतापूर्वक युद्ध कर-करके अपना मूलतः विध्वंस कर लिए, यह आप महाभारत में पढ़ सकते हैं। कम-बेश सभी मतों की ऐसी बातें हैं। फिर कुछ

कबीरपंथी कबीर साहेब के आज्ञानुसार बिलकुल न चल पाते हों, इसमें क्या आश्चर्य है?

651. प्रश्न—कबीर साहेब काठ की माला में विश्वास नहीं करते हैं, परन्तु आज कबीरपंथ में वह अनिवार्य है, ऐसा क्यों?

उत्तर—कबीर साहेब ने कहा है कि माला पहनने मात्र से कल्याण नहीं होता है, इसके लिए सद्‌गुण धारण करने की आवश्यकता है। कबीर साहेब माला नहीं पहनते थे यह भी नहीं कहा जा सकता। उनके पुराने से पुराने चित्रों में, जिसे सरकार भी मानती है, माला है। फिर किसी पंथ एवं सम्प्रदाय का कोई चिह्न होता है। वैष्णव तथा कबीरपंथ में कण्ठी-माला दया का चिह्न माना जाता है। परन्तु वही सब कुछ नहीं माना जाता। सदाचरण-सद्‌गुण ही से कल्याण है।

652. प्रश्न—'सन्तो सहज समाधि भली' का अभिप्राय क्या है?

उत्तर—जीव का सहज स्वरूप है द्रष्टा, सब कुछ जानते रहना। अतएव जब विवेकपूर्वक अपने चेतन-स्वरूप से पृथक सारे जड़ दृश्यों को पृथक ही समझकर उनका साक्षी बने रहने का अभ्यास हो जाता है, तब यह सहज समाधि है। सहज-समाधि वही है, जिसमें कुछ आरोपित न करना हो। जैसा अपना स्वरूप है, वैसी दशा में रहना ही सहज समाधि है। व्यक्ति का अपना स्वरूप शुद्ध चेतन है और इसी प्रकार शुद्ध चेतन दशा में स्थित रहना ही सहज समाधि है।

653. प्रश्न—मनुष्य के मन पर किसी आकार-प्रकार रहित अदृश्य वस्तु विशेष का प्रभाव क्या सम्भव है?

उत्तर—शब्द, गंधादि अदृश्य हैं, परन्तु उनका प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता ही है। अदृश्य काम, क्रोध, लोभ, भय, शील, क्षमा, वैराग्य आदि का प्रभाव भी स्पष्ट है। फिर दृश्य का प्रभाव तो होता ही है। इसलिए खराब दृश्यों से हटकर उन दृश्यों का ही सम्बन्ध रखना चाहिए जिनसे मन निर्मल हो।

654. प्रश्न—मन का शुद्ध दिशा में परिवर्तन होने का सर्वत्र वातावरण कब बनेगा? परिवार-नियोजन की भांति ही मन-नियोजन की कोई सरल प्रणाली या नुस्खा है? युग का नव-निर्माण कब होगा? जन साधारण सुख-शान्ति का श्वास कब लेंगे?

उत्तर—न कभी ऐसा समय भूतपूर्व में था न आज है और न आगे आयेगा कि संसार के सभी लोगों का मन एकदम शुद्ध रहा है या हो जायेगा। परिवार-

नियोजन की तरह मन-नियोजन का कोई सरल नुस्खा नहीं है। आज के कुछ तथाकथित अवतारों की सनक है कि थोड़े दिनों में सत्युग अर्थात पूर्णतया पवित्र समय आ जायेगा, जिसमें संसार के सभी लोग केवल सतोगुणी होंगे। यह सब संसार के साथ छलावा है या लोगों के लिए झूठा बढ़ावा है।

हां, दुनिया के महापुरुषों का सत्पुरुषार्थ निष्फल नहीं जाता है। उनके सत्प्रयत्न से संसार में निरन्तर सुधार होता है। यदि दुनिया में समय-समय से महापुरुष, संत पुरुष न होते रहें, तो दुनिया की दशा और बिगड़ जाये। जो चाहेगा उसका सुधार निश्चित होगा। सत्संगी, सदाचारी के लिए सदैव सत्युग है।

655. प्रश्न—नियति क्या है? नियति अपने दायरे में क्या समर्थ है? नियति के संचालन होने में भी कोई विकल्प है?

उत्तर—कारण-कार्य की अटूट व्यवस्था ही नियति है, जिसको ऋग्वेद में ऋत कहा गया है, और वह अपने दायरे में समर्थ है। किन्तु दायरे के बाहर कुछ नहीं कर सकती।

प्रष्टा पूछते हैं कि नियति के संचालन में भी कोई विकल्प है? क्या आप चाहते हैं कि नियति आपके इच्छानुसार चलने लगे? नियति के संचालन के लिए बाहर से सोचने की आवश्यकता ही नहीं है। नियति अपने आप चालित है। प्रकृति में अपने नियमों के अनुसार घटनाएं होंगी और प्राणियों में उनके कर्मों के अनुसार उन्हें सुख-दुख फल होंगे।

पानी बरसने की जड़-प्रकृति की अपनी जितनी योग्यताएं हैं, उनके इकट्ठी होने पर पानी बरसता है, न होने पर नहीं बरसता है। आदमी भूलवश हवन, प्रार्थना, उपवास और पूजा के बल पर पानी बरसाने का दुराग्रह करता है। यह सब एकदम बचकानापन है। पुराने संस्कृत ग्रन्थों में लिखा हो कि यज्ञ करने से पानी बरसा या हवनकुण्ठ में से रथ, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा, नगर आदि निकले तो यह ब्राह्मणों द्वारा अपने यज्ञ-पेशे के मिथ्या प्रचार के अलावा और कुछ नहीं है। पहले जमाने में ज्यादा पानी बरसता था, क्योंकि पहले ज्यादा यज्ञ होता था—यह मानना एक अज्ञान है। वस्तुत: पहले जंगल ज्यादा था, इसलिए पानी ज्यादा बरसता था। आज भी जंगली क्षेत्र में पानी ज्यादा बरसता है। वर्षा के लिए हवन नहीं, किन्तु वृक्ष-वनस्पतियों के रोपण का विस्तार होना चाहिए। हर साल अरबों रुपये के घी-मेवे-अन्न यज्ञ के नाम पर फूंकने वाला भारत यज्ञहीन अमेरिका आदि से जब आये दिन अन्न मंगाकर खाता है, तब उसके हवन की पोलपट्टी और खुल जाती है। अतएव अधिक वर्षा, वातावरण की शुद्धि के लिए वृक्षारोपण कारण-कार्य व्यवस्था के भीतर है।

मनुष्य इच्छापूर्वक काम करता है, तो वह अपने भोलापन से यह सोचता है कि वर्षा, भूचाल, धूप, शीत आदि ब्राह्मांडिक क्रियाएं भी कोई आकाश में बैठा देवता अपनी इच्छा से करता है। वस्तुत: ब्रह्मांड की सारी क्रियाएं जड़ प्रकृति के स्वयंसिद्ध नियमों से निरन्तर होती हैं। उनको कोई देवता या चेतन नहीं करता है। इसीलिए अतिवर्षण, अवर्षण, भूचाल, पाला-ओला में अधिक धन-जन की हानि हो जाती है, क्योंकि सारी क्रियाएं निरी जड़-प्रकृति से होती हैं।

अतएव ब्रह्मांड की क्रियाओं का चेतन नियामक खोजना एक भ्रम है। हां, घट-घट में निवास करने वाले चेतन ज्ञान स्वरूप हैं।

656. प्रश्न—गज और ग्राह की कहानी कहां तक सत्य है?

उत्तर—एकदम काल्पनिक है। गज और प्रह्लाद को बचाने के लिए भगवान गरुड़ को छोड़कर दौड़ पड़े तथा खम्भा फाड़ डाले, परन्तु करीब एक हजार वर्षों से भारत में मुसलमान आकर अब तक करोड़ों गायें काटे होंगे, हजारों देवमंदिर तोड़े होंगे तथा लाखों साधु-ब्राह्मणों एवं हिन्दुओं का वध किये होंगे, परन्तु भगवान इतना चुप्पी साध लिए कि मानो वे हैं ही नहीं।

657. प्रश्न—धर्म और मोक्ष में क्या अन्तर है?

उत्तर—धर्म प्रकृति और मानसजगत के नियम हैं। इन्हें पहचानकर तदनुसार आचरण बनाना धर्माचरण है। यह मानसजगत का नियम है कि विषयों में लगने से मन में द्वन्द्व होंगे और विषयों से अपने आपको हटा लेने से मन निर्मल एवं निर्द्वन्द्व हो जायेगा। धर्माचरण का फल मोक्ष है। मोक्ष मन के क्लेशों से सर्वथा छूटकर शरीरांत में सदा के लिए शुद्ध चेतन मात्र रह जाना है।

658. प्रश्न—सब मत वाले भगवान-भगवान कहते हैं, परन्तु शास्त्रों में लिखित उचित-अनुचित बातों पर निष्पक्ष विचार क्यों नहीं करते?

उत्तर—इसमें अपने सम्प्रदाय का मोह, जड़ता, पूर्वग्रह, अविवेक एवं अनुदारता ही कारण है।

659. प्रश्न—कुछ संत कहते हैं 'नदिया एक घाट बहुतेरे' परन्तु हमें यह बात भ्रमपूर्ण लगती है?

उत्तर—'नदिया एक घाट बहुतेरे' यह वाक्य एक अंश में सत्य है सर्वांश में नहीं। मान लो, इलाहाबाद पहुंचना है, तो उत्तर से आने वाले फाफामऊ घाट से, पूर्व से आने वाले झूंसी घाट से तथा दक्षिणी से आने वाले नैनी घाट से

आयेंगे। इसी प्रकार स्वरूपविवेक तक पहुंचने के पहले जिस मत में जो व्यक्ति रहता है उसी के अनुसार उपासना एवं आचरण करता है, परन्तु उसकी यदि निष्पक्ष दृष्टि हो तो वह धीरे-धीरे सत्संग करके स्वरूपविवेक को प्राप्त हो जाता है और यह प्राप्त होने पर उसकी सही दशा आ जाती है। यदि नदिया एक घाट बहुतेरे का अर्थ कोई यह मान ले कि आदमी धर्म के नाम पर जो करता है चाहे विवेकपूर्वक और चाहे अविवेकपूर्वक, उससे ही सबका पूर्ण कल्याण हो जायेगा, तो यह गलत है।

660. प्रश्न—कुदरत और भगवान में क्या अन्तर है?

उत्तर—जड़ प्रकृति को कुदरत कहते हैं। इन्द्रियजित पुरुष ही भगवान है। आकाशीय भगवान एक कल्पना है।

661. प्रश्न—प्रारब्ध किस इन्सान पर प्रसन्न होता है?

उत्तर—प्रारब्ध कोई चेतन प्राणी नहीं है जो किसी पर प्रसन्न या नाखुश हो। प्रारब्ध एक कारण-कार्य व्यवस्था है। अच्छे कर्मों का अच्छा तथा बुरे कर्मों का बुरा प्रारब्ध अपने आप उसी प्रकार बन जाता है जैसे बीज से वृक्ष। अत: सदैव अच्छे कर्म करो।

* * *

662. प्रश्न—दीक्षा देते समय कोई गुरु जीवनोपयोगी शिक्षा देते हैं और कोई गुरु बाजा बजवाकर शिष्य के कान में धीरे से कोई मन्त्र देते हैं। अजरमणी, अमरमणी आदि पांच नाम मुझे गुरु ने सुनाया था, परन्तु उसका अर्थ मैं आज तक नहीं जानता। कृपया बतावें?

उत्तर—दीक्षा के समय जीवनोपयोगी शिक्षा देने की बड़ी आवश्यकता होती है। सब मत के गुरु कुछ-न-कुछ शिक्षा देते ही हैं। पारख सिद्धान्त में तो दीक्षा के समय शिक्षा ही विशेष दी जाती है। कुछ पवित्र भाव उत्पन्न करने वाले शब्दों का समूह रूप मन्त्र भी गुरुजन शिष्य को सुनाते हैं। उसकी भी आवश्यकता है। शिष्य को चाहिए कि गुरु के दिये हुए मन्त्र का स्मरण रखे तथा उसका अर्थ समझकर आचरण करे। अजरमणी, अमरमणी आदि नाम सब स्व-स्वरूप चेतन के विशेषण हैं। शिक्षा तो कोई भी सुन सकता है, परन्तु मन्त्र तो उसी को सुनाना चाहिए जो दीक्षा ले रहा है। अतएव मन्त्र की गोपनीयता भी ठीक ही है। तुम्हें अपने गुरु से मन्त्र का अर्थ समझना चाहिए।

663. प्रश्न—कहा जाता है संसारी जीव का शरीर छूटने पर वह प्राणवायु के सहित पुनर्जन्म को प्राप्त होता है और जीवन्मुक्त का शरीर छूटने पर उनके

प्राण प्रकृति में लीन हो जाते हैं और जीव मुक्त होकर अपने आप रह जाता है। परन्तु देखा जाता है संसारी तथा ज्ञानी दोनों के शरीर छूटने पर दोनों के प्राण लीन हो जाते हैं। तो वह प्राणवायु कौन पदार्थ है जिसके सहारे जीव पुनर्जन्म में जाता है?

उत्तर—नाक से फेफड़े तक चलने वाले स्थूल प्राण हैं। यह तो शरीरांत में सबके विलीन हो जाते हैं। जिनसे गमनागमन होता है, वे सूक्ष्म प्राण हैं। उसी को सूक्ष्म शरीर आदि कहते हैं। बोधवान का वही सूक्ष्म शरीर देहांत में नष्ट हो जाता है, जिससे उनकी पुनर्जन्म प्रक्रिया बन्द हो जाती है।

664. प्रश्न—आप काल्पनिक कथाओं का खण्डन करते हैं, परन्तु कुम्भ मेले को महत्त्व देते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर—मैंने यह कहीं नहीं लिखा और कहा है कि कुम्भ मेले में स्नान करने से पाप का क्षय होता है। कुम्भ मेला धार्मिकों का एक मेला है। उसमें सभी मत के संत-भक्त अपनी छावनी लगाते हैं। कबीरपंथी भी लगाते हैं। वहां नाना मत के लोगों को अपने विचार सुनाने तथा उनके विचार सुनने का अच्छा अवसर रहता है। इस अवसर से सबको लाभ लेना चाहिए।

665. प्रश्न—जीव पारख में कैसे ठहरता है?

उत्तर—पारख का अर्थ है ज्ञान। जहां से सबका ज्ञान होता है वह अपना चेतन स्वरूप है। अत: अपने आप में स्थित होना ही, जीव का पारख में स्थित होना है।

666. प्रश्न—सतोगुण जीव को बन्धन कैसे?

उत्तर—यदि सद्गुणों का अहंकार हो तो वे अवश्य बन्धन बन जाते हैं।

667. प्रश्न—शरीर से निकलते समय जीव दिखाई क्यों नहीं देता या किसी प्रकार का उसका आभास क्यों नहीं होता?

उत्तर—क्योंकि जीव पांचों विषयों से परे होने से वह पांचों ज्ञान-इन्द्रियों में नहीं आता।

668. प्रश्न—कोई अनुचित ढंग से धनार्जन करके फिर उसको परोपकार में लगाता है, तो उसे पाप होगा या नहीं?

उत्तर—परोपकार न करना बुरा नहीं, पर-अपकार करना बुरा है। गलत ढंग से धन कमा कर परोपकार करना कोई अर्थ नहीं रखता।

669. प्रश्न—क्या संस्कारों का प्रभाव हमारे कार्यों पर पड़ता है?

उत्तर—हमारे मन के संस्कार हमारी समस्त छोटी-बड़ी क्रियाओं पर पड़ते हैं। संस्कार जैसा कर्म वैसा।

670. प्रश्न—क्या ऐसा कोई उपाय है कि कर्म-संस्कारों का फल न भोगना पड़े या उन्हें कम किया जा सके?

उत्तर—जिन कर्मों को हम जीवन में नहीं दोहराते, उनके संस्कार क्षीण हो जाते हैं। स्वरूपज्ञानपूर्वक जो व्यक्ति पूर्ण अनासक्त हो जाता है, वह इसी जीवन में जीवन्मुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्त ही शरीरपात-पश्चात विदेहमुक्त है। जो सबसे पूर्ण अनासक्त नहीं हो पाया, वह पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। पुनर्जन्म में पहले जन्मों के कर्मों में से जिसकी योग्यता पड़ती है फल प्राप्त होते हैं। जीव जब तक आवागमन के चक्कर में है, उसे अपने किये हुए कर्मों के फल मिलते रहेंगे। परन्तु जो इस जीवन में जिन कर्मों को बुरा समझकर उनके प्रति राग छोड़ देता है और पुन: उन्हें नहीं दोहराता, उसके उन कर्मों के संस्कार कल्याण-साधना में बाधा नहीं दे पाते। अत: मनुष्य से कितने ही गलत कर्म हो गये हों, यदि वह आज उन्हें क्रमश: सर्वथा त्यागकर पूर्ण निर्दोष जीवन बना ले, तो आज ही स्वरूपस्थिति प्राप्त कर सकता है या आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर क्रमश: आज या आगे जन्मों में बढ़ता जा सकता है। सारांश यह है कि अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म जब तक जीव देह धरता रहेगा प्रारब्ध भोग में सुख-दुख देते रहेंगे, परन्तु यदि कोई आध्यात्मिक मार्ग में चलकर चित्त को शुद्ध करता है, तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति अवश्य होती है।

671. प्रश्न—कहते हैं वैराग्य से मोक्ष है, परन्तु भोजन, वस्त्र, निवास आदि लेने ही पड़ते हैं, तो राग कैसे मिटेगा?

उत्तर—राग छोड़ करके भी भोजन, वस्त्र, निवास आदि ग्रहण कर सकते हो, जैसे औषध।

672. प्रश्न—आयु की पूरी निर्धारित अवधि होती है या संयम-नियम से रहकर आयु बढ़ायी जा सकती है?

उत्तर—कर्म प्रारब्धानुसार आयु की एक निश्चित अवधि होती है; परन्तु संयम-नियम तो अत्यन्त सुखदायी हैं, उनका पालन करना चाहिए।

673. प्रश्न—स्वरूप की जानकारी तथा स्वरूप की स्थिति में क्या अन्तर है?

उत्तर—केवल समझ लेना जानकारी है और समझ के अनुसार ठहर जाना स्थिति है।

674. प्रश्न—इस नाशवान संसार में रहने का अच्छा तरीका क्या है?

उत्तर—सबसे ममता त्यागकर तथा राग-द्वेष से मुक्त होकर जीना।

675. प्रश्न—प्रारब्ध भोग अचानक आ जाता है। यदि पहले से पता होता तो कुछ उपाय कर लिया जाता। पहले से क्यों पता नहीं होता?

उत्तर—प्रारब्ध क्या है, पहले से पता नहीं हो सकता, अत: उसके लिए मत सोचिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक विकार तो पहले से मालूम हो जाते हैं, इनको मिटाने का उपाय कीजिए। जहां सोचने से काम बने, वहीं सोचना चाहिए।

676. प्रश्न—स्वरूपस्थिति कैसे प्राप्त हो?

उत्तर—चारों तरफ से मन के राग छोड़ दो। हलका भोजन लो। भोजन सात्विक हो। चिंता-फिक्र दूर कर दो। नित्य एकांत में बैठकर सोचो "मैं शरीर, इन्द्रिय, मन तथा सारे दृश्यों से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन हूं, असंग, निराधार तथा कल्याणरूप हूं।"

इस अभ्यास के बाद कुछ दिनों में काफी अनासक्ति की अवस्था आयेगी। फिर एकांत में बैठकर सारे शुभाशुभ संकल्पों को छोड़-छोड़कर अपने आप शांत रहो। अपनी सत्ता अपनी ओर लौटाते रहो। मन को बल न दो। फिर संकल्पों का अन्त होकर स्वरूपस्थ हो रहोगे।

677. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो?

उत्तर—विषयासक्ति के त्याग से स्वरूपस्थिति होती है। विषय अनेक हैं। उनमें कामवासना बलवान है। चाहे काम-वासना हो और चाहे सम्मान की वासना हो, सबका त्याग करना है। वासना के त्याग से ही मोक्ष की सिद्धि है। किन्तु बिना भोगों के त्याग किये वासना का त्याग नहीं होगा। अत: भोग-क्रिया और वासनाओं के सर्वथा त्याग से ही मोक्ष होगा। इसके लिए साधु संगत की बड़ी आवश्यकता है।

678. प्रश्न—अपने सम्प्रदाय के मद में अन्धा आदमी जो अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा तथा दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा करता है, कल्याण को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर—कल्याण-प्राप्ति का यह रास्ता ही नहीं है। चाहे कबीरपंथी हो या वैष्णव, वेदांती हो या आर्यसमाजी या अन्य सम्प्रदाय का व्यक्ति, मान और मद का त्याग करके ही कल्याण दशा आ सकती है। यदि हमारी बात सत्य है, तो उसके मद की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसके आचरण की आवश्यकता है। आदमी जितना ही सत्य के निकट पहुंचता जायेगा, उतना विनम्र होता जायेगा।

679. प्रश्न—समुद्र का जल खारा क्यों है?

उत्तर—नदियों के जल द्वारा क्षार पदार्थ निरन्तर समुद्र में गिरता है। समुद्र का पानी तो भाप बनकर उड़ता रहता है, परन्तु उसमें इकट्ठा होता हुआ क्षार पदार्थ नहीं उड़ता, इसलिए।

680. प्रश्न—बीजक में साधु, सन्त, सद्‌गुरु, महंत नाम तो आये हैं, किन्तु आचार्य शब्द नहीं आता है, तो आचार्य की पदवी मानी जाये कि नहीं?

उत्तर—बीजक तथा कबीरपंथ के किसी भी पुराने ग्रंथ में आचार्य शब्द नहीं है, परन्तु ज्ञान और आचार की शिक्षा देने वाले को आचार्य कहा जा सकता है। जो जिसको शिक्षा दे, वह उसका आचार्य है। कबीरपंथ में तथा उसके महान ग्रन्थ बीजक, पंचग्रंथी, निर्णयसार, निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन आदि में साधु, सन्त एवं सदगुरु पद का ही वर्णन है, आचार्य पद का नहीं। विद्वानों ने माना है—''जो शास्त्रों का चयन एवं उनके तात्पर्य का निर्णय करते हैं, सज्जनों को सदाचार में लगाते हैं और स्वयं सदाचार का पालन करते हैं, वे आचार्य हैं।''[1]

* * *

681. प्रश्न—मुक्ति क्या है, उसका प्रमाण क्या है?

उत्तर—मन का स्ववश होना मुक्ति है। इसका प्रमाण स्वयं का अनुभव है। स्वयं मुक्त हुए बिना मुक्ति का प्रमाण नहीं मिल सकता। जो देह में रहते-रहते स्ववश मन वाला है, वही जीवन्मुक्त है। जीवन्मुक्ति अनुभव का विषय है। विदेमुक्ति उसका फल है। जीवन्मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करो। विदेहमुक्ति अपने आप होगी।

682. प्रश्न—सत्य का क्या अर्थ है?

उत्तर—जो सदैव रहता हो। जड़ और चेतन—दोनों नित्य हैं, अत: दोनों सत्य हैं। चेतन मेरा स्वयं स्वरूप है, अत: वह परम सत्य है।

683. प्रश्न—चित् का अर्थ क्या है?

उत्तर—चेतन। दूसरे अर्थ में मन की अवस्था विशेष भी है।

684. प्रश्न—बीजक में पारख शब्द की आवृत्ति बहुत कम है। इस शब्द का उद्‌भव और विकास कब से?

---

1. **आचिनोति च शास्त्राणि आचारेस्थापयत्यपि।**
स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते॥

उत्तर—बीजक में पारख शब्द का प्रयोग जितना है, काफी है। यह शब्द बीजक के सिद्धांत की रीढ़ है। बीजक में पारख शब्द जहां आया है, प्रबल सिद्धांत पक्ष है। इसके उद्‌भव के मुख्य स्रोत सद्‌गुरु कबीर स्वयं हैं। विकास उनकी परम्परा में कबीरपंथ भर में होता रहा। इस विषय को समझने के लिए 'कबीर दर्शन' पढ़ें।

685. प्रश्न—पंचतत्त्वों में आकाश अमान्य क्यों?

उत्तर—आकाश शून्य है। संज्ञा मात्र है। उसमें न परमाणु हैं, अतः न क्रिया। इसलिए उसका कुछ परिणाम नहीं। जिसमें कोई परिणाम नहीं, वह तत्त्व कहां है! हां, यदि उसे संज्ञा मात्र तत्त्व कहा जाये तो कोई हर्ज नहीं।

686. प्रश्न—बीजक की रचना तथा नामकरण किसके द्वारा हुए?

उत्तर—बीजक के पद्य सद्‌गुरु कबीर के हृदय से निकले हैं। उसका नामकरण भी उन्होंने ही किया है। 37वीं रमैनी में लिखा है—

बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥

687. प्रश्न—ब्रह्मज्ञानी को कुछ भान नहीं रहता है ऐसा कहते हैं, क्या सच है

उत्तर—जब तक शरीर है, भान सब कुछ होगा। विवेकवान विषयासक्ति से निवृत्त होते हैं, यही उनका महत्त्व है।

688. प्रश्न—तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस में भ्रष्ट ब्राह्मणों को भी पूजने को कहा है, फिर उनके समय में काशी के पण्डित उनका विरोध क्यों किये?

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास जी ने वाल्मीकि जी की रामायण का आधार बहुत थोड़ा लिया है और अपनी स्वतन्त्र कल्पना ज्यादा की है। गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में अनेक सदुपदेश की बातें बताते हुए तथा रामपक्ष के पात्रों को सुधारते हुए तथ्यों को तोड़-मरोड़ा ज्यादा है। इसलिए उन पर काशी के पंडित नाखुश हुए थे।

689. प्रश्न—सुख क्या पदार्थ है?

उत्तर—मन की प्रसन्नता।

690. प्रश्न—दिल एक मन्दिर है, तो लोग बाहरी मन्दिर क्यों जाते हैं?

उत्तर—सबको इतना बोध कहां है।

691. प्रश्न—कौन-सी भूख सबसे तेज है?

उत्तर—पेट की भूख सबसे तेज है, वैसे जब जो लग जाये।

692. प्रश्न—सामने किसी का अमानवीय कार्य देखकर उसका विरोध करना चाहिए या चुप रहना चाहिए।

उत्तर—इसके लिए देश और काल का ज्ञान रखना पड़ेगा। सभी देश और काल में एक ही जैसी प्रतिक्रिया नहीं करते बनेगी।

693. प्रश्न—मुसलमान लोग क्यों सब काम हिन्दू से उलटा करते हैं?

उत्तर—मूलरूप से हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न परम्पराएं भिन्न देश और काल में पैदा हुई हैं और दोनों अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं तथा दोनों में जो अपनी गलतियां हैं सुधारनी चाहिए। ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। भ्रमवश विरोधी लगती हैं। जहां जान-बूझकर कुछ विरोधी बातें की जाती हैं, उसका मूल सांप्रदायिकता है। यह केवल हिन्दू और मुसलमानों में नहीं, संन्यासी नारियल के कमण्डलु को पवित्र मानते हैं, परन्तु वैष्णव उसे पंगत में नहीं ले जाने देते, जबकि वे स्वयं सड़ने वाली लौकी के कमण्डलु पवित्र मानते हैं। जबकि नारियल का कमण्डलु पानी में साल भर डाले रहो तो भी नहीं सड़ेगा।

694. प्रश्न—इस नाम-रूपात्मक दृश्य जड़ सृष्टि में कोई अव्यक्त शक्ति अवश्य है जिससे सृष्टि का नियमन होता है। इसमें आपका क्या विचार है?

उत्तर—तत्त्वों के गुण-धर्म ही उनकी शक्ति है और उसी से सृष्टि का निरन्तर नियन्त्रण चलता है। सत्ता नित्य है और सत्ता में उसकी अपनी शक्ति भी नित्य है। इससे उसकी व्यवस्था भी नित्य है जो स्वाभाविक है। कोई इसमें इच्छाशक्ति नहीं। इच्छाशक्ति जीव में है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इच्छा को पहचाने तथा उसका परिमार्जन करके कल्याण करे।

695. प्रश्न—पूर्ण सतर्कता रखते हुए भी दुर्घटना हो जाती है। क्या कारण है?

उत्तर—इसी को हम लोग पूर्वजन्म के अपने बनाये हुए कर्मों के फल (प्रारब्ध) कहते हैं।

696. प्रश्न—मृत्यु क्या है?

उत्तर—जीव और देह का वियोग।

697. प्रश्न—मृत्यु के समय क्या सचमुच जीव को लेने यमराज आते हैं?

उत्तर—वासना ही यमराज है जो जीव के साथ में है। बाहर से कोई यमराज नहीं आता।

698. प्रश्न—क्या संतकाव्य निराशावादी है?

उत्तर—जीवन से हताश करने की भावना निराशावादी होती है। संतकाव्य तो नये जीवन का श्वास फूंकता है। संतकाव्य नैतिकता के धरातल पर उपजता है जो जीवन का प्राणतत्त्व है।

699. प्रश्न—क्या संतकाव्य वैराग्य उत्पन्न कर अकर्मण्य बनाता है?

उत्तर—स्वाधीनता जीवन का चरम सुख एवं परम उपलब्धि है। जिसके जीवन में जितने अंशों में वैराग्य होगा, वह उतने अंशों में स्ववश एवं स्वाधीन होगा। दुनिया के वैराग्यवान पुरुष अकर्मण्य नहीं, आजीवन निरन्तर कर्मतत्पर रहे। उदाहरण के लिए बुद्ध, महावीर, ईसा, शंकराचार्य, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द आदि को ले सकते हैं।

700. प्रश्न—सुख-सौंदर्य का उपभोग क्यों न करें? क्यों उसकी नश्वरता की चिंता में घुलकर मरें?

उत्तर—सौन्दर्य नश्वर है। उसके उपभोग के परिणाम में वासना की वृद्धि है और वासना ही बेचैनी का मुख्य कारण है। सौन्दर्य की विनश्वरता को जो समझता है वह घुल-घुलकर नहीं मरता है। वह तो स्ववश जीवन जीते हुए सच्चे अर्थ में सुखी रहता है। घुल-घुलकर तो वह मरता है जो नश्वर चाम के मोह में आसक्त है।

701. प्रश्न—नवजात शिशु सुप्तावस्था में हंसता, रोता और आंखें उलटकर क्यों देखता है?

उत्तर—वह सुप्तावस्था में नहीं, किन्तु जाग्रत में ही हंसता, रोता तथा आंखें उलटकर देखता है। नवजात शिशु सोता अधिक है। जितने समय वह जागता है, वह भी सोये के समान लगता है। वस्तुत: उस अनुभवहीन शिशु का रोना, हंसना आदि पूर्वजन्मों के संस्कारों के बल से होते हैं।

702. प्रश्न—मनोविज्ञान क्या है? क्या मन्त्र के सहारे ब्रह्मांड में भटकती आत्मा को वश में किया जा सकता है?

उत्तर—मन को सम्पूर्ण रूप से जानना मनोविज्ञान है। मन्त्र के सहारे भटकती आत्माओं से सम्बन्ध साधने की बात धूर्तों का जाल है।

703. प्रश्न—क्या संजीवनी विद्या सत्य है? कहते हैं शुक्राचार्य इसके ज्ञाता थे। तो अपनी पत्नी को क्यों नहीं जिला लिये?

उत्तर—ऐसी कोई विद्या नहीं है कि किसी मनुष्य को अमर बनाया जा सके या मरे हुए को जिला ले। समाज के चालाक लोग जो समाज को मूर्ख बनाते हैं, वे ही कुछ ऐसी सनसनीखेज बातें कहते रहते हैं।

704. प्रश्न—हनुमान जी बिना पुल तथा नाव के समुद्र कूद गये। तो उनकी महिमा पर विश्वास करके किसी सिद्धि के लिए क्यों न उसकी पूजा की जाये?

उत्तर—यदि हनुमान जी का समुद्र लांघना ऐतिहासिक है तो यही हो सकता है कि उस समय जो भारत और लंका से व्यापारी-जहाजें चलते थे, उनमें से किसी पर बैठकर हनुमान जी लंका गये होंगे। इसी प्रकार डॉ० रांगेय राघव ने महायात्रा गाथा में स्वीकारा भी है। समुद्र कोई कूद नहीं सकता।

कई जगह हनुमान जी की आंखों में लगे रत्न चोरों द्वारा निकाल लिये गये। हनुमान जी की मूर्तियां चुरा ली गयीं। कई हनुमान-मन्दिर में तथा आस-पास होते हुए अत्याचार निरापद चलते हैं। जब हनुमान जी यह सब नहीं सुधार सकते तब उनकी पूजा करने से सिद्धि मिलेगी यह महाभ्रम है। मनुष्य को नैतिक और कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। अपने मन को एकाग्र करने के लिए कोई किसी प्रकार पूजा-उपासना करे, तो यह एक अलग बात है और इन सबका साधक के लिए महत्त्व है।

705. प्रश्न—कुछ कबीरपंथी लोग कबीर साहेब को मानव कहने में बहुत डरते हैं। वे कबीर साहेब को अलौकिक सिद्ध करना चाहते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर—इस दिशा में प्राय: हर सम्प्रदाय कमजोर है। वह अपने इष्ट को मानव से पृथक सिद्ध करना चाहता है। परन्तु मानव से बढ़कर कोई नहीं है।

706. प्रश्न—कबीर तथा कबीरपंथ का प्रामाणिक ग्रन्थ और सिद्धान्त क्या है?

उत्तर—बीजक कबीर देव की प्रामाणिक रचना तथा कबीरपंथ का वेद है। शुद्ध मानवता और स्वरूपज्ञान की स्थिति उसका सिद्धान्त है।

*   *   *

707. प्रश्न—शम और दम किसे कहते हैं?

उत्तर—मन का वश में आ जाना शम है तथा इन्द्रियों का वश में आ जाना दम है।

708. प्रश्न—साखीग्रन्थ में कुछ साखियां हैं जिनमें साधुओं को अपने हाथों भोजन बनाने का तीव्र निषेध है। इसे क्या मानें?

उत्तर—उक्त साखियां निश्चित ही कबीर साहेब की नहीं हैं, किन्तु किसी अदूरदर्शी संकुचित दिल वाले ने लिखकर वहां घुसेड़ दी हैं। उसी ग्रंथ में आचारी की अपेक्षा विचारी को श्रेष्ठ माना गया है।

709. प्रश्न—लहसुन-प्याज से वैद्यक की दृष्टि से अनेक रोग नष्ट हो सकते हैं, संतजन इन्हें खाने से क्यों वर्जित करते हैं?

उत्तर—ये उत्तेजक होते हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य को नुकसान पहुंचाते हैं। दूसरे दुर्गन्ध भी पैदा करते हैं। इसलिए साधक को लहसुन-प्याज नहीं खाना चाहिए।

710. प्रश्न—क्या साकट का संसर्ग नहीं करना चाहिए? तो दीन, जो साकट हैं उनकी सेवा कैसे करें?

उत्तर—दीन की सेवा करना चाहिए। साकट का अर्थ है कुसंग प्रेमी, इनसे बचना चाहिए। अन्यथा अपने में दोष आयेंगे।

711. प्रश्न—क्या मन्त्रशक्ति सच है? मन्त्र से झाड़ने से बिच्छू-सांप के विष उतरते हैं तथा मन्त्र से अन्य अद्‌भुत काम देखे जाते हैं, क्या मानें?

उत्तर—मन्त्र कहते हैं राय, सम्मति तथा सलाह को। मन्त्र से सांप-बिच्छू के जहर नहीं उतरते। जहां मन्त्र से जहर उतरता दिखे, समझना चाहिए कि वे सांप-बिच्छू जहरीले नहीं थे या मन्त्र का दिखावा करके झाड़ने वाले ने किसी दवाई का प्रयोग किया है। जहर द्रव्य है, जो रक्त में घुल जाता है। वह छू करने से नहीं दूर होगा।

मन्त्र से कुछ का कुछ बना देना, यह सब जालसाजी है। ऋषि-मुनियों के नाम लेकर लोगों को बेवकूफ बनाना चतुरों का घिनौना काम है। 'कबीर दर्शन' तथा 'बीजक व्याख्या' पढ़ो। समाधान हो जायेगा।

712. प्रश्न—कबीरपंथ में ऐसी शाखाएं भी हैं जो पूरा पौराणिक हैं। वे पानपरवाना देकर जीव को सतलोक भेजती हैं, नाना अन्धविश्वास पैदा करती हैं। वे कबीर साहेब के क्रांतिकारी विचार क्यों नहीं समझतीं?

उत्तर—संसार में अनेक प्रकार के संस्कारी जीव हैं। सबके विचार एक नहीं हो सकते। स्वयं सत्य की खोज करो। सत्य में स्थित होओ। दूसरे लोग भी जितना समझ सकेंगे उतना ग्रहण करेंगे। जो अन्धविश्वास में हैं उनको भी हम प्रेम के बल पर ही कुछ समझा सकते हैं। उस पर भी समझना न समझना उनके ऊपर ही है।

713. प्रश्न—पिण्ड कांचा मन्त्र सांचा क्या सच है?

उत्तर—पिण्ड (देह) तो अवश्य कांचा है यानि नाशवान है, परन्तु मन्त्र तो महा झूठ है। मन्त्र वंचकों का जाल है जिससे वे दुनिया को ठगते हैं। हां, सत्योपदेश रूपी मन्त्र ठीक है।

714. प्रश्न—शिक्षक सद्गुरु यदि राग-द्वेष में दग्ध हो, तो शिष्य अपना कल्याण कैसे करे?

उत्तर—गुरुपद एक देह में सीमित नहीं है। राग-द्वेष-पूर्ण गुरु से हटकर पवित्र गुरु एवं संत जन का आधार लेना चाहिए।

जेहि विधि काज जीव को होई। लाज मिटाय करे पुनि सोई॥

715. प्रश्न—माया को मिथ्या जानकर भी उससे हम क्यों नहीं हट पाते?

उत्तर—क्योंकि मोह प्रबल है। विषयों की आसक्ति तथा गंदी आदतें अनादि की हैं। जब माया से छूटने के लिए अखंड पुरुषार्थ किया जायेगा, तब जीव छूट भी जायेगा। ऐसा ख्याल आना इसकी शुरुआत है। यदि मन में बारम्बार बन्धनों से छूटने का भाव जगने लगे, तो धीरे-धीरे निश्चित ही उधर प्रगति होगी।

716. प्रश्न—आज के दूषित वातावरण में जहां सांस लेना दूभर हो गया है, वहां सच्चे सद्गुरु तथा सत्संग की प्राप्ति का सरल रास्ता क्या है?

उत्तर—सभी समय में अच्छाइयां-बुराइयां रही हैं। वर्तमान से असंतुष्ट रहना मनुष्य का स्वभाव-दोष है। लोगों की यह धारणा है कि पहले सब अच्छा था, आज बुरा है तथा आगे और बुरा आयेगा। परन्तु यह भ्रम है। दूध का धोया कोई युग नहीं था।

पहले आप अपने घर को देव मन्दिर तथा घर के सदस्यों को देवी-देवता समझें। फिर जो मिलें सब को देव रूप में देखें। मनुष्य से गलती होती है, दीवार से नहीं। परन्तु मनुष्य ही देवता है, आकाश तथा पत्थर में देवता नहीं है। अपना मन पवित्र बनाओ, सर्वत्र पवित्रता दिखेगी।

आज भी विवेक-वैराग्य सम्पन्न सच्चे सद्गुरु तथा संत हैं। जब उनके लिए सच्ची चाह होगी, तब वे भी मिल जायेंगे। आज भी संसार में शुद्ध सदाचारी, परोपकारी, निर्मल मन वाले तथा जीवन्मुक्त पुरुष हैं।

आज के युग में भी हम संत्सग, सद्ग्रन्थ तथा गुरु उपासनापूर्वक साधना करते हुए कृतार्थ हो सकते हैं। परमपद हमारा अविनाशी स्वरूप ही है। बस, उधर ध्यान देने तथा रहनी में रहने की देरी है।

717. प्रश्न—क्या केवल संकल्पों पर स्ववशता हो जाने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है?

उत्तर—संकल्पों पर स्ववशता स्वरूपबोध का व्यावहारिक पक्ष है। पहले स्वरूपबोध प्राप्त करना जरूरी है। स्वरूपबोधपूर्वक संकल्पों पर पूर्ण स्ववशता ही तो जीवन्मुक्ति है।

718. प्रश्न—क्या गौतम ऋषि के शाप से अहल्या पत्थर हो गयी थीं और रामचन्द्र जी के पैर के स्पर्श होते ही पुन: जीवित हो उठीं? यदि हां, तो कैसे?

उत्तर—वैदिक साहित्य शतपथ ब्राह्मण में अहल्या की चर्चा है। वहां इन्द्र को अहल्याजार कहा गया है। अहल्या को वैदिक साहित्य में रूपक मात्र माना गया है। अहल्या वह जमीन है जिसमें हल न चलाया गया हो। इन्द्र वर्षा का अधिष्ठाता देवता है। अत: दोनों का सम्बन्ध अर्थात वर्षा तथा जमीन का नाता स्वाभाविक है। दूसरे ढंग से अहल्या का अर्थ अन्धकार है। 'अह' दिन है, उसका लीन होना 'अहल्या' है। इन्द्र का अर्थ सूर्य है। सूर्य अन्धकार को पतित करता है, यही इन्द्र का अहल्या को पतित करना है।

वैदिक भाषा में जिसको रूपक माना गया है, पुराणों में उसे कथा का रूप दिया गया है। पीछे के साहित्य में अहल्या की कथा का पर्याप्त विकास हुआ है।

पहले पहल महाभारत में अहल्या को नारी का रूप दिया गया और बताया गया कि इन्द्र गौतम का रूप धारणकर अहल्या को छलने आया और अहल्या उसके छल को बिलकुल न समझ सकी तथा छली गयी। महाभारत में अहल्या का उद्धार राम से नहीं कराया गया है।

वाल्मीकीय रामायण के बालकांड के सर्ग 48 में अहल्या की कथा रखी गयी है जो पीछे की रचना है। इन्द्र गौतम का रूप बनाकर अहल्या के पास उसे छलने आता है। अहल्या इन्द्र को पहचान लेती है, परन्तु खुश होती है कि मुझे इन्द्र चाहता है। अहल्या इन्द्र को स्वीकारती है। इन्द्र जब जाने लगा, तब अहल्या के पति गौतम आते हैं। वे इन्द्र को शाप देते हैं कि तेरा अंडकोष गिर जाये। फलत: इन्द्र अंडकोष रहित हो जाता है। इन्द्र के निवेदन करने पर देवताओं ने भेड़ा का अंडकोष उखाड़कर इन्द्र में लगा दिया।

गौतम अहल्या को भी शाप देते हैं कि तू यहां कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर तप करेगी और सभी प्राणियों से अदृश्य रहकर राख में पड़ी रहेगी। जब श्री रामचन्द्र यहां आयेंगे, तब तू उनका सत्कार करेगी और विकार रहित होकर पुन: मेरे पास रहने लगेगी। कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर तप करना—अतिशयोक्ति है।

श्री राम लक्ष्मण के सहित विश्वामित्र के साथ जब जनकपुर गये हैं, अहल्या के आश्रम में जाकर राम-लक्ष्मण—दोनों अहल्या के दोनों चरणों का

स्पर्श करते हैं। राघवौ तु तदा तस्या: पादौ जगृहतुर्मुदा (वा० 1, 49, 17)। अहल्या ने राम का स्वागत किया। गौतम खुश हुए, अहल्या को स्वीकार लिए।

यहां श्रीराम की महिमा बढ़ाने के लिए अहल्या की कल्पित कथा से श्रीराम को उद्धारक के रूप में जोड़ा गया है। परन्तु यहां (वाल्मीकीय रामायण में) न अहल्या पत्थर हैं और न श्रीराम उन पर अपने पैर रखते हैं, किन्तु अहल्या एक उपेक्षिता के रूप में तप करती है। श्रीराम-लक्ष्मण अहल्या के पैर छूकर उनका नमस्कार करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अहल्या को पत्थर बना दिया है और राम के पैरों का उसमें स्पर्श कराकर उन्हें पुन: सजीव नारी बनाया है।

गौतम नारि श्रापबस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर॥
परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

भक्ति-भावना का अतिरेक मनुष्य को कहां से कहां बहा ले जा सकता है और कितनी असत्य कथाएं गढ़ा सकता है, यह धार्मिक कही जाने वाली किताबों से जाना जा सकता है।

719. प्रश्न—रामायण में वर्णित सुलोचना द्वारा अपने पति के कटे सिर से बातचीत करना कहां तक सच है?

उत्तर—बिलकुल झूठ है, यह बात न वाल्मीकीय रामायण में है और न प्रामाणिक मानस में। यह प्रक्षेप है। वैसे यह बात कहीं लिखी भी हो, तो भी तथ्यहीन है ही।

720. प्रश्न—जब सभा में द्रौपदी का चीर दुशासन खींचने लगा, तब क्या श्रीकृष्ण ने द्रौपदी का चीर बढ़ाया? बढ़ाया तो कैसे?

उत्तर—यदि कपड़ा दस हाथ का है, तो हजार भगवान के लगने पर भी वह एक सूत भी बढ़ नहीं सकता है। वस्तुत: श्रीकृष्ण की महिमा बढ़ाने के लिए यह कथा गढ़ी गयी है कि द्रौपदी की लाज बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने वस्त्रावतार धारणकर उनका वस्त्र बढ़ाया। विधर्मियों द्वारा समय-समय पर हजारों हिन्दू ललनाएं वस्त्रहीन करके बदिज्जत की गयी हैं, आज भी दुष्ट पुरुषों द्वारा असहाय अबलाएं बलात्कार का शिकार बनायी जाती हैं। वस्त्रावतारधारी भगवान कहां सो रहे हैं? वस्तुत: मनुष्य जब तक भगवान का पचड़ा छोड़कर अपने कदमों पर नहीं खड़ा होगा, मानवता नहीं जग सकती।

721. प्रश्न—मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में क्या सोचता है?

उत्तर—जिसका उसने पहले से अभ्यास कर रखा है।

722. प्रश्न—अदालत सच बोलने के लिए मुजरिम से कसम खिलाती है, परन्तु उसी अदालत में वकील झूठ-पर-झूठ बोलता है, ऐसा क्यों?

उत्तर—अदालत मुजरिम से आशा रखती है कि वह सच बोल सकता है। उसे वकील से सच बोलने की कोई आशा ही नहीं है।

723. प्रश्न—क्या मात्र सत्संग से मोक्ष मिल सकता है?

उत्तर—सत्संग ही मोक्ष-प्राप्ति के साधनों में शुरुआत है और अन्त तक उसकी आवश्यकता है।

724. प्रश्न—क्या यह सत्य है कि किसी व्यक्ति के मरते समय उसके अंग में कोई निशान लगा दे, तो अगले जन्म में यह निशान बच्चे के अंग में आ जायेगा?

उत्तर—कहना कठिन है। शरीर तो यहीं जल या सड़ जाता है, उसका चिह्न अगले जन्म के शरीर में आ जाये, यह जमता नहीं। कोई वासनागत बात होने से अगले जन्म में उसका प्रभाव शरीर पर हो सकता है।

725. प्रश्न—अकेले में मन क्यों घबराता है? मन चाहता है किसी से मिलें, बातचीत करें या किसी काम में लग जायें।

उत्तर—मन की बहिर्मुख वृत्ति होने से ऐसा ही होता है। जब अनासक्ति तथा स्वरूपस्थिति की प्रगाढ़ता बढ़ जाती है, तब न किसी से मिलने का मन होता है और न बात करने का। ऐसे पुरुष भी यदि लोगों से मिलते तथा बात करते हैं, तो उनकी लोक पर बड़ी करुणा है। ऐसे पुरुष भी लोकमंगल का काम करते हैं। जब तक कोई स्वरूपज्ञानपूर्वक अपने आप निराधार एवं असंग होकर नहीं स्थित होगा, अकेले में घबरायेगा। जब असंग स्वरूपस्थिति में निमग्न हो जायेगा, तब वह अकेले में ही आनन्दित रहेगा, बल्कि दूसरे की उपस्थिति को ही बोझ समझेगा।

* * *

726. प्रश्न—गृहस्थ साधक को व्यापार करना अच्छा है कि बुरा? क्योंकि उसमें झूठ बोलना, क्रोध करना, उधारी वसूलने के लिए तगादा करना, मिलावट करना आदि हिंसापूर्ण काम करने पड़ते हैं?

उत्तर—व्यापार करना अच्छा है। किसी ग्राहक को धोखा देने के लिए झूठ न बोलो। ग्राहक को धोखा देने से अपना आध्यात्मिक पतन तो होगा ही,

व्यापार भी बैठ जायेगा, नष्ट हो जायेगा। अन्य झूठ से भी जितना बन सके बचा जा सकता है। क्रोध करना तो व्यापार के लिए विष है। व्यापारी को कोमलभाषी होना चाहिए। ग्राहक भले क्रोध करे, व्यापारी नहीं। कहा है—'बनिया को नरम तथा राजा को गरम होना चाहिए।'

सौदा उधार दिया जायेगा, तो तगादा करना ही पड़ेगा। यह कोई हिंसा नहीं। यदि किसी की विपन्नावस्था है, तो उसको परेशान न करे। रहा, मिलावट करना, जैसे घी में डालडा मिलना, डालडा में चर्बी मिलाना, चने में कंकड़ तथा इसी प्रकार अन्य मिलावट महापाप है। व्यापार में मिलावट उसका अभिन्न अंग मानना बिलकुल गलत है। व्यापार में मिलावट सबसे बड़ा पाप है। मिलावट करनेवाला हत्यारा से भी अधिक पापी है।

ग्राहक को धोखा दिये बिना व्यापार किया जा सकता है और उसके फल में जीवन-गुजर व्यापारी कर सकता है।

727. प्रश्न—हिन्दुओं में 24 अवतारों की कल्पना की गयी, परन्तु राम तथा कृष्ण को छोड़कर अन्य अवतारों की भक्ति वे क्यों नहीं करते?

उत्तर—बुद्धकाल के बाद श्रीकृष्ण को अवतार मानने के साथ उनकी उपासना भी चल पड़ी। पीछे से श्रीराम को अवतार माना गया और कृष्ण-उपासना का प्रभाव रामोपासना पर पड़ा। लोग राम की भी भक्ति करने लगे। किन्तु अन्य अवतारों के प्रति आज तक भक्ति नहीं जग सकी। वस्तुतः राम और कृष्ण का चरित्र-चित्रण कवियों ने ज्यादा किया, इसलिए उनके प्रति भक्ति भावना बढ़ गयी। अन्य अवतार अधूरे पड़े रह गये। सब मनुष्य की ही शोभा है। वह जिसको चाहे हीरा बना दे और जिसको चाहे मिट्टी।

728. प्रश्न—सांसारिक दुखों से कैसे बचें?

उत्तर—मन की चिंता एवं मोह त्यागकर।

729. प्रश्न—ऋषि और संत में क्या अन्तर है?

उत्तर—वेदों की ऋचाओं की रचना करने वाला ऋषि कहलाता है तथा निष्काम स्थिति में संतुष्ट पुरुष संत हैं।

730. प्रश्न—मैं नर्स का काम करती हूं। प्रसूति में भी काम करना पड़ता है। स्वजन-भक्तजन कहते हैं भक्त को यह सब नहीं करना चाहिए। क्या सच है?

उत्तर—सेवा करना उत्तम काम है।

731. प्रश्न—मैं सेवा करती हूं, प्रत्युपकार के बदले लोगों द्वारा मुझे कभी-कभी कष्ट मिलता है। अदीक्षित लोग कहते हैं कि तुम भक्त तथा सत्संगी

हो इसलिए ऐसा होता है, क्या समझें?

उत्तर—कहने वाले गलत कहते हैं। अच्छे कर्म का फल अच्छा होगा। यदि कहीं कष्ट मिल रहा है, तो निश्चित कहीं अपने कर्म खोटे हैं।

732. प्रश्न—पारख सिद्धांत में आध्यात्मिक साधनाएं क्या हैं?

उत्तर—पारख सिद्धांत में विवेक, द्रष्टा और स्थिति—ये तीन साधनाएं हैं। अपने चेतन स्वरूप को देहादि से पृथक विचारना विवेक है। सारे संकल्पों को देख-देखकर त्यागते रहना द्रष्टा-अभ्यास है तथा संकल्पों के शांत हो जाने पर यही दशा का बने रहना स्थिति या सहज समाधि है। यदि उक्त स्थितियां शीघ्र न आवें तो किसी संत पुरुष का ध्यान करना चाहिए जिनमें अपनी सहज श्रद्धा हो।

733. प्रश्न—"दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज मह काहु न ब्यापा।" क्या यह सच है?

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास जी के ख्याल से महाराज श्रीराम परब्रह्म परमात्मा थे, अनन्त ब्रह्मांडनायक तथा सर्वशक्तिमान थे। जब सर्वाधार ब्रह्म ही अयोध्या पर राज्य कर रहे थे, तब उनके राज्य में दैहिक, दैविक, भौतिक ताप हो भी कैसे सकते हैं? श्रीराम का सर्वाधार ईश्वर होना एक कल्पना है, तो उसके साथ दूसरी कल्पना जुड़ गयी कि रामराज्य तीनों तापों से रहित था। गोस्वामी जी घोर कल्पनालोक के निवासी थे। उनकी रामायण उनकी प्रतिभा का चमत्कार है।

इसके अतिरिक्त हर अच्छा आदमी यही चाहता है कि संसार में कोई पाप-ताप न हो। अतएव उसकी वह कल्पना करता है। वस्तुत: संसार में कोई ऐसा समय न रहा है, न आगे आयेगा कि वह तीनों तापों से सर्वथा रहित हो। जहां सब कुछ क्षणभंगुर है, वहां ताप से सर्वथा बचा ही कैसे जा सकता है! हां, अपने मन को सबसे अनासक्त बनाकर तापों को सहने की शक्ति प्राप्त की जा सकती है। रामराज्य में सबसे अधिक पीड़ित तो महाराज श्रीराम ही थे। इसीलिए तो जब आज भी कोई किसी के सामने अपना ज्यादा दुख सुनाता है, तब सुनने वाला कह बैठता है कि क्या यार, अपनी राम कहानी शुरू कर दिये! 'राम कहानी' का अर्थ ही हो गया है दुख भरी कथा।

734. प्रश्न—क्या मांसाहारी जीव मनुष्य शरीर नहीं पा सकते?

उत्तर—पा सकते हैं, पाते ही हैं। भारत में ही अधिक आदमी मांसाहारी हैं और भारत के बाहर तो घोर मांसाहारी हैं। किन्तु विदेश में भी जीव मनुष्य जन्म लेते ही हैं। यदि शाकाहारी लोग ही आगे मनुष्य जन्म धारण करें, तो

अपने इसी संस्कार से वे आगे भी शाकाहारी ही होंगे। अतः इस सिद्धांत से तो कोई मनुष्य मांसाहारी होगा ही नहीं। परन्तु संसार में मांसाहारी ही ज्यादा लोग हैं।

बात तो यह है कि मांसाहार मनुष्य के लिए गलत है कि सही? वस्तुतः मांस गंदा होता है, जीव वध करके मिलता है, गरिष्ठ तथा रोगवर्द्धक होता है, अतएव मांस खाना सर्वथा गलत है।

735. प्रश्न—क्या आप गुरुमुख-हीन व्यक्ति का दिया हुआ भण्डारा ले सकते हैं?

उत्तर—जरूर ले सकते हैं। जब कोई व्यक्ति साधु-संतों को भण्डारा (भोजन) देता है, उनकी सेवा करता है, तभी तो वह धीरे-धीरे गुरुमुख भी होता है।

736. प्रश्न—पूर्ण प्रयास करने पर भी सफलता न मिलने का क्या कारण है?

उत्तर—हो सकता है कि मान लिया गया हो कि मैंने पूर्ण प्रयास किया है, परन्तु किया न गया हो। प्रारब्ध अथवा भाग्य भी कारण हो सकता है। सफलता-असफलता में कारण प्राणी, पदार्थ, अवस्था, परिस्थिति आदि होते हैं, परन्तु अध्यात्मवादी अपने पुरुषार्थ तथा प्रारब्ध ही उनमें कारण मानता है। यही वास्तविकता भी है। अपने ही कर्मों के फल अपने को मिलते हैं।

737. प्रश्न—मन की परेशानी कैसे दूर हो?

उत्तर—अच्छी समझ से। अच्छी समझ के लिए संतों तथा सज्जनों की संगत करो और अच्छी पुस्तकें पढ़ो। जिसे गलत समझते हो उसे छोड़ते रहो तथा जिसे ठीक समझते हो उसका अभ्यास करते रहो।

738. प्रश्न—कहते हैं प्रेम के मूल में त्याग है, ऐसा क्यों?

उत्तर—भोगी आदमी मोह कर सकता है, प्रेम नहीं। मोह में ममता है, प्रेम में समता है। मोह अपने स्वार्थ के लिए होता है तथा प्रेम दूसरे की सेवा के लिए। बिना त्याग भाव के आये न कोई प्रेम कर सकता है और न सेवा।

739. प्रश्न—संगदोष क्या है?

उत्तर—प्राणी-पदार्थों के संग से जो मोह, लोभ, काम, द्वेष, ईर्ष्या, आसक्ति उत्पन्न होते हैं, यही संगदोष है।

740. प्रश्न—संगदोष से बचने का उपाय क्या है?

उत्तर—ऐसे प्राणी-पदार्थों की संगत से बचना चाहिए अर्थात उनसे दूर रहना चाहिए जिनके संसर्ग से विकार उत्पन्न हों। अच्छे-अच्छे लोग भी संगदोष से भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव संगदोष से बचो।

741. प्रश्न—अभिमन्यु ने क्या सचमुच अपनी माता के गर्भ में ही युद्ध-विद्या सीखी थी? कहते हैं अर्जुन ने अपनी पत्नी से युद्ध-विद्या की चर्चा की थी और उस समय अभिमन्यु गर्भ में थे। उन्होंने अपने माता-पिता द्वारा युद्ध-विद्या की बात सुनकर गर्भ में ही उसे सीख ली थी।

उत्तर—यह बात असम्भव है। गर्भस्थ शिशु माता-पिता की बात न सुन सकता है न सीख सकता है। हां, अभिमन्यु के अपने पूर्वजन्मों के संस्कार तथा माता-पिता के बीजी असर उन पर हो सकते हैं।

742. प्रश्न—कहते हैं बच्चा जब माता के गर्भ में रहता है, तभी ईश्वर से भक्ति करने की बात कबूल कर बाहर आता है और यहां माया में भूलकर भक्ति नहीं करता। यह बात कहां तक सच है?

उत्तर—यह सब उपदेश करने का एक तरीका मात्र है। गर्भवास में जीव को इतनी चेतना नहीं रहती है कि वह ईश्वर की कल्पना कर सके तथा उससे प्रार्थना या भक्ति कबूल सके।

743. प्रश्न—दया, सदाचार, वैराग्य, ज्ञान आदि को उपलब्ध होकर कोई व्यक्ति सन्मार्ग में चलता है, परन्तु उसने किसी गुरु से न दीक्षा ली है न उसका कोई वेष है। क्या उसका मोक्ष हो सकता है?

उत्तर—जबानी जमा-खर्च से काम नहीं चलता। बिना दृढ़ आधार के इस दुर्गम मानसिक धारा को पार नहीं जाया जा सकता।

744. प्रश्न—मानव जीवन के लक्ष्य की पूर्ति कहां होगी गृहस्थी में या वैराग्य में?

उत्तर—हर आदमी पहले गृहस्थी में ही होता है। अतएव उसे जहां है, वहीं से सत्संग, निर्णय, विवेक, सदाचार पालन, मनोनिग्रह आदि करना चाहिए और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए। जब वह उतनी उन्नति कर लेगा जितनी कि गृहस्थी में सम्भव है, तो आगे अवश्य विरक्त हो जायेगा।

745. प्रश्न—विराट रूप दर्शन क्या है? कुरुक्षेत्र में कृष्ण ने अर्जुन को तथा मां कौसल्या को बालक राम ने अपने विराट रूप दिखाये, यह क्या है?

उत्तर—यह कहीं नहीं दिखलाया है। यह सब पंडितों ने कागज में लिख-लिखकर फैलाया है। श्रीकृष्ण अनन्त ब्रह्मांड नायक होते तो वे महाभारत युद्ध

तथा यादवों का विनाश होने ही नहीं देते। वे तो बेचारे अपने परिवार—यादवों को शराब पीने से नहीं रोक सके और परिवार के लोग घोर शराबी होकर उन्हीं के सामने कटकर मर गये।

वाल्मीकीय रामायण में कहीं नहीं लिखा है कि राम ने कौसल्या को विराट रूप दिखाया। यह सब गोस्वामी तुलसीदास जी की महिमा है, राम की नहीं। श्रीराम तो वाल्मीकीय रामायण में कहते हैं—''मैं दशरथ का लड़का राम हूं और एक मनुष्य हूं—इतना ही समझता हूं'' यथा—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्॥

(वाल्मीकीय रामयण 6, 117, 11)

प्रामाणिक वाल्मीकीय रामायण में कहीं भी श्रीराम के लिए भगवान शब्द तक का प्रयोग नहीं हुआ है।

746. प्रश्न—भक्तिमार्ग या ज्ञानमार्ग—किधर चलूं?

उत्तर—दोनों की जरूरत है। भक्ति सत्पुरुषों के प्रति श्रद्धा समर्पण एवं विनयभाव है। उसके बिना कुछ न होगा, और ज्ञान के बिना भटकना तो है ही।

747. प्रश्न—मीरा ने कृष्ण-भक्ति के प्रभाव में जहर भी पी लिया था। क्या भक्ति के प्रभाव से विष अपना प्रभाव त्याग सकता है?

उत्तर—यह सब भक्ति के प्रभाव के प्रचार के लिए कहा गया है। यह महिमा की कथा है, जो असत्य है। जहर अपना प्रभाव डालेगा ही। ऐसी-ऐसी बहुत असम्भव बातें कबीर साहेब के लिए भी लिखी हैं, जो असत्य महिमा है।

748. प्रश्न—कुछ लोग निराकार एवं शून्य को ही सर्वोच्च तत्त्व मानते हैं, क्या समझें?

उत्तर—निराकार या शून्य कोई तत्त्व नहीं है। शून्य का जानने वाला शून्य से पृथक है। सबका ज्ञाता, बोद्धा, साक्षी चेतन शून्य नहीं है। यदि वह देह सम्बन्ध रहित मुक्ति अवस्था में हो जाये तो वह शून्य नहीं हो जायेगा। जो सत्तावान है, वह शून्य कैसे हो जायेगा!

749. प्रश्न—सबसे ज्यादा दुख क्या है तथा सर्वोच्च सुख क्या है?

उत्तर—मन की उलझन सबसे बड़ा दुख है तथा मन की शांति सबसे बड़ा सुख है। गोस्वामी जी ने कहा है—

सात दीप नौ खंड में, तीन लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥

(वैराग्य संदीपनी)

750. प्रश्न—गांधीजी ने लिखा है कि बिना यज्ञ किये जो अन्न खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है, इसका क्या अर्थ है?

उत्तर—यहां यज्ञ का अर्थ है सेवा। जो बिना सेवा किये अन्न खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है। अत: सेवा करके खाओ।

751. प्रश्न—जीव कर्ता-भोक्ता है या नहीं?

उत्तर—देह सम्बन्ध में जीव कर्ता-भोक्ता है। विदेह शुद्ध जीव न कर्ता है न भोक्ता।

752. प्रश्न—किसी के मरने पर मूड़ मुड़वाना, मृतक की शांति के लिए अस्थि गंगाप्रवाह करना तथा क्रिया-कर्म करना क्या ठीक है?

उत्तर—जो जीव अपने कर्म को लेकर जा चुका है, उसके नाम पर चाहे जो कुछ करो, उसे कुछ मिलने वाला नहीं है। मृतक मनुष्य के छोड़े हुए धन में से यथासम्भव जनकल्याण में लगाना ही उसका श्राद्ध करना (श्रद्धा से किया जाने वाला काम) है। बाकी सब लोकपरम्परा है।

753. प्रश्न—किसी के मरणोपरान्त किस ग्रंथ का पाठ करें?

उत्तर—अपने-अपने धर्मग्रन्थ का सभी पाठ करते हैं। कबीरपंथियों को बीजक पाठ करना चाहिए तथा कबीरपंथ में बने हुए अनेक सरल ग्रंथ हैं, उनका पाठ करना चाहिए। यह ग्रन्थपाठ घर वालों के संतोष के लिए तथा ज्ञान के लिए है न कि मृत आत्मा के लिए।

754. प्रश्न—क्या अमुक मत के संतों-भक्तों में आपसी प्रेम कम है?

उत्तर—प्रेम और घृणा का सम्बन्ध मत-पथ से नहीं किन्तु लोगों के शुद्ध-अशुद्ध मन से ही है। कोई मत वैर करना नहीं सिखाता।

755. प्रश्न—मूर्च्छित लक्ष्मण को जगाने के लिए जब हनुमान हिमालय पर्वत खण्ड लेकर आकाशमार्ग से अयोध्या के ऊपर आये, तब भरत के बाण से वे गिर पड़े। उस समय हनुमान के हाथ का पर्वत खण्ड कहां रहा?

उत्तर—हनुमान की हिमालय यात्रा तो वाल्मीकीय रामायण में है, परन्तु उनका अयोध्या में भरत के द्वारा बाण से गिराया जाना तथा हनुमान भरत-मिलन नहीं है। यह कथा मानस में जोड़ी गयी है। वैसे हनुमान की हिमालय यात्रा भी विद्वान लोग वाल्मीकीय रामायण में प्रक्षिप्त ही मानते हैं। काल्पनिक तो है ही। 'रामायण रहस्य' में तदस्थल देखिए।

756. प्रश्न—वामन द्वारा बलि का छला जाना तथा वामन के अपने पैरों से सारी पृथ्वी नाप लेना कहां तक सत्य है?

उत्तर—पुराणों के अनुसार वामन इन्द्र के छोटे भाई हैं। बलि दैत्य-वंशी हैं तथा इंद्र देववंशी। एक पिता कश्यप की दो पत्नियों दिति तथा अदिति से क्रमश: दैत्य और देवता पैदा हुए। देवपति इन्द्र ईर्ष्यालु तथा शिथिल आचरण था और दैत्यपति बलि धर्मात्मा थे। इस कथा का इतना ही सार है कि वामन ने अपनी पार्टी के मुखिया इन्द्र की राजगद्दी के लिए बलि को धोखा दिया। तीन पग से सारा विश्व नापना आलंकारिक कथन मात्र है।

757. प्रश्न—जब परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश कर डाला, तो आज क्षत्रियों की पहचान कैसे हो सकती है?

उत्तर—महाभारत के शांतिपर्व में लिखा है कि परशुराम क्षत्रियों को मार डालते थे। उसके बाद गर्भवती क्षत्राणियां जब पुन: बच्चा पैदा करती थीं, तब उनके जवान होने पर वे पुन: उन्हें मार डालते थे। एक परशुराम क्षत्रियों की इक्कीस पीढ़ी तक बैठे रहे, यह एक कल्पना है। सार इतना हो सकता है कि परशुराम इक्कीस बार क्षत्रियों पर चढ़ाई करके उनका विध्वंस किये। यह ब्राह्मण-क्षत्रियों की लड़ाई थी, जैसे वसिष्ठ-विश्वामित्र में हुई थी। किसी की वंशावली प्राय: उच्छिन्न नहीं होती। क्षत्रिय आज भी बचे ही हैं। फिर क्षत्रियत्व एक स्वभाव है, वह किसी भी जाति में हो सकता है।

758. प्रश्न—नारियल फटने पर प्रसाद बनता है, दूध फटने पर छेना बनकर रसगुल्ला बनता है, कली फटने पर फूल बनता है, परन्तु प्रतिष्ठावान लोकप्रिय व्यक्ति का इज्जत रूपी परदा फटने पर वह क्या बनता है?

उत्तर—लज्जित बनता है। परन्तु यदि उसने पूर्ण विनम्र बनकर अपने दोषों के लिए पूर्णतया ग्लानि कर ली और उसे सर्वथा सदा के लिए छोड़कर अपने आप का वह सुधार करने लगा, तो वह भी एक उच्च मानव बन सकता है।

जो दोष करके भी उसे नहीं स्वीकारता, उसे सब दोषी कहते हैं और निरादरित करते हैं, परन्तु जो बेखटके अपने दोष पूर्णतया स्वीकार लेता है, उसे कोई कुछ नहीं कह सकता तथा वह सबका प्राण प्यारा बन जाता है।

759. प्रश्न—अपने गुण-अवगुण की पहचान कैसे हो?

उत्तर—सज्जन-संतों से अपने विषय में राय लो तथा स्वयं एकांत में अपने आप से पूछो।

760. प्रश्न—ज्ञानी की व्यवहारकाल में स्वरूपस्थिति रहती है कि नहीं?

उत्तर—ज्ञानी सब समय स्वरूपस्थिति में रहता है।

761. प्रश्न—अकबर बादशाह के समय तानसेन तथा बैजू बावरा के संगीत से संगमरमर पत्थर पिघलकर पानी बन गया। यह कहां तक सत्य है?

उत्तर—सर्वथा असत्य है। चेतन प्राणी विशेषत: मनुष्य संगीत सुनकर भावविह्वल हो सकता है, पानी वह भी नहीं बनेगा, फिर जड़ पत्थर संगीत से पानी बन जाये, यह कथन सर्वथा गप्पबाजी है।

762. प्रश्न—कबीर साहेब विरक्त संत थे। उन्होंने बीजक में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचार, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उत्थान की बातें कही हैं, परन्तु गृहस्थों के जनम, विवाह, मृत्यु इत्यादि के संस्कारों की विधि नहीं बतायी है। मैं कबीर साहेब के सिद्धान्तों को भलीभांति मानता हूं, परन्तु किस संस्कार को लेकर गृहस्थी जीवन निभाऊं? स्वामी दयानन्द भी विरक्त थे, परन्तु उन्होंने सोलह संस्कारों की विधि लिखी है। लोग कहते तथा व्यंग्य करते हैं कि तुम यदि कबीर साहेब के सिद्धान्तों को मानते हो, तो विरक्त हो जाओ। क्या उत्तर दूं?

उत्तर—कबीरपंथ में विरक्त साधु तो थोड़े हैं, गृहस्थ कबीरपंथियों की विशाल संख्या भारत तथा विदेशों में फैली है और उनका हर काम चलता है। कबीर साहेब फक्कड़मस्त परम विरक्त संत थे। उन्होंने पंथ की व्यवस्था नहीं की। उनके शिष्यों द्वारा पंथ पीछे से बना है। स्वामी दयानन्द जी ने यद्यपि कहा है कि मैं कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाने जा रहा हूं, परन्तु उन्होंने एक नवीन सम्प्रदाय की व्यवस्था की है और उन्होंने गृह्यसूत्रों तथा मनुस्मृति के आधार पर सोलह संस्कार विधि लिखकर प्रचलित किया है।

कबीरपंथ का दायरा बहुत बड़ा है। इसकी संख्या शहरों में कम, देहातों में ज्यादा है। भारत के हर प्रदेश में इसका विस्तार है, परन्तु मध्यप्रदेश, गुजरात, बिहार आदि में ज्यादा है। कबीरपंथ में कई शाखाएं हैं। जहां इनकी संख्या सघन तथा पुरानी है, वहां इनके अपने ढंग से संस्कार हैं। विवाह किसी बुजुर्ग के साक्षित्व में वर-वधू एक-दूसरे को फूल-माला पहनाकर कर लेते हैं। मृत्यु में शव को गाड़ना, जलाना तथा जलप्रवाह—तीनों प्रचलित हैं। इसके पीछे पारिवारिक भोज तथा संत भंडारा आदि भी कर लेते हैं। गुजरात में फैले 'राम कबीर' मत में उनके अपने संस्कार हैं जो ब्राह्मण-कर्म से पृथक स्वतंत्र, सरल तथा सादा हैं।

कभी-कभी विदेश से भी पत्र आता है, और भारत के विविध प्रांतों से हमारे पास बराबर पत्र आ रहे हैं कि ''आप जन्म, विवाह, मृत्यु आदि की संस्कार विधि पर एक पुस्तक लिख दें।'' मैं सोचता हूं, यह काम पंथ की सभी शाखाओं के संत-भक्त मिलकर करें तो अच्छा है। जब भारत में कबीरपंथ की

एक विशाल संख्या गृहस्थी में रहकर कबीर साहेब के सिद्धान्तों पर चल रही है, तब आपको भी उनके सिद्धान्तों पर चलने में अड़चन नहीं होना चाहिए।

763. प्रश्न—मुक्त जीव कहां रहता है? कैसे जानें कि अमुक जीव मुक्त हो गया?

उत्तर—जीते जी समस्त आसक्तियों, मानसिक ग्रंथियों से मुक्त हो जाना ही जीवन्मुक्ति है और इसका अनुभव वही कर सकेगा, जो अपने को समस्त आसक्तियों से अलग कर लेगा। विदेह अवस्था में रहने के लिए कोई स्थान-मकान नहीं है। जो स्थान बताते हैं, वे एक कल्पना की उड़ान भरते हैं। हर मूल वस्तु अपने आप रहती है। मुक्त जीव भी अपने आप रहेगा। जब जड़ वस्तु का मूल रूप नष्ट नहीं होता, तब जीव क्यों नष्ट होगा? किसी के जीवन की अनासक्त रहनी देखकर ही कोई अनुमान कर सकता है कि वह व्यक्ति शरीर छूटने पर विदेहमुक्त हो गया, अन्य कोई आधार नहीं। दूसरे की मुक्ति के विषय में जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। सब आसक्ति दूर करके अपने आप को जीते जी मुक्त करो। इसी में परम सुख है।

764. प्रश्न—ईश्वर तथा भगवान का क्या अर्थ है? प्राय: लोग कहते हैं 'भगवान जाने'।

उत्तर—ईश्वर कहते हैं स्वामी को, भगवान कहते हैं ऐश्वर्यवान को। जो बात अपनी अक्ल में नहीं आती, उसे मनुष्य कह देता है 'भगवान जाने।' यह उसका 'तकिया कलाम' है। श्री निर्मल साहेब ने कहा है "अपनी अकल में जो आता नहीं है। उसे कम अकल ने खुदाई कही है।"

765. प्रश्न—क्या चमड़ा काटने वाले व्यक्तियों को अछूत मानना चाहिए?

उत्तर—बिलकुल नहीं। जब आदमी स्नान कर लिया, तब शुद्ध हो गया। हर आदमी अपनी टट्टी धोता है, वह स्नान करके शुद्ध हो जाता है, तद्वत।

766. प्रश्न—संसार में मेरे होने की क्या सार्थकता है?

उत्तर—अपने और दूसरे का कल्याण करना।

767. प्रश्न—क्या हजरत मुहम्मद खुदा के संदेशवाहक हैं?

उत्तर—यह मुसलमानों की मान्यता है। जब खुदा ही का पता नहीं है, तब उसका संदेशवाहक दरगुजर है।

768. प्रश्न—सरल साधना क्या है?

उत्तर—बुरे विचारों की तरफ न जाना।

769. प्रश्न—इंसान खुली आंखों के रहते हुए भी ठोकर क्यों खाता है?

उत्तर—क्योंकि भीतर की आंखें ढकी हैं।

770. प्रश्न—खुशी में तो आंसू आ जाते हैं, परन्तु दुख में हंसी क्यों नहीं आती?

उत्तर—क्योंकि दुख में मन मुरझा जाता है।

771. प्रश्न—मकड़ी जाल बुनकर भी उसमें नहीं फंसती, परन्तु मनुष्य अपने बुने हुए जाल में क्यों फंस जाता है?

उत्तर—क्योंकि वह अधिक मोही है।

772. प्रश्न—साधु अपनी मां की दूध की कीमत कैसे चुकाता है?

उत्तर—अनेकों मां तथा मां के लालों को बोध देकर।

773. प्रश्न—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की उत्पत्ति कैसे, उनकी वंशावली क्या है?

उत्तर—ये क्रमशः रज, सत तथा तम गुण के प्रतिनिधित्व करने वाले कल्पित देवता हैं। यदि इन नामों के व्यक्ति कभी रहे, तो उनकी उत्पत्ति के विषय में विवेकपूर्ण समाधान कहीं नहीं है। विष्णु क्षीरसागर में सोये थे। उनकी नाभि से कमल निकला। उसमें ब्रह्मा बन गये। ब्रह्मा रोये तो रुद्र पैदा हो गये इत्यादि ऊटपटांग कल्पनाएं हैं। इतना समाधान काफी है कि यदि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव व्यक्ति थे, तो वे अपने मां-बाप से पैदा हुए होंगे।

774. प्रश्न—श्रवणकुमार के माता-पिता के नाम क्या थे तथा उनकी वंशावली क्या थी?

उत्तर—श्रवणकुमार के माता-पिता नेत्रहीन तथा बूढ़े थे, इतना ही वाल्मीकीय रामायण में लिखा है। यह भी लिखा है कि पिता वैश्य जाति के तथा माता शूद्र जाति की थीं (वा०, अयोध्या कांड, सर्ग 63, श्लोक 51)। सबके माता-पिता के नाम तथा वंशावली का पता न लग सकेगा न उसकी आवश्यकता है। हम या आप अपनी नानी की नानी का ही नाम नहीं बता पायेंगे। सब लोग अपनी नानी का ही नाम नहीं जानते या अपने पिता के पिता, परपिता तथा पितामह के नाम नहीं जानते।

775. प्रश्न—मुरगी, मछली, बकरी, सुअर के पालन का अभियान सरकार चलाती है, परन्तु शाकाहार, सदाचार का नहीं। यदि सारा विश्व शाकाहारी हो जाये, तो सरकार की योजना फेल हो जायेगी। परन्तु तब मछली, मुरगी, बकरी

आदि का उपयोग क्या होगा?

उत्तर—घबराओ मत, विश्व में शाकाहारी कम ही लोग रहेंगे और मछली, मुरगी आदि का सदुपयोग मांसभक्षी मानव करते रहेंगे। स्वयं शाकाहारी-सदाचारी बनो, संसार की चिन्ता छोड़ दो। मांसाहारी लोग कौए, बगुले, गिद्ध आदि का सदुपयोग नहीं करते, यही आश्चर्य है।

776. प्रश्न—सद्गुरु कबीर का चित्र जो पंथ में मान्य है, उसमें चित्रित वेष क्या प्रामाणिक है कि कबीर साहेब ऐसे ही भेष रखते थे?

उत्तर—कबीर साहेब प्रामाणिक थे। उनके दिव्य विचारों को लेकर अपना कल्याण करो। उनके चित्र में चित्रित भेष भी प्रामाणिक हो सकते हैं। भक्त लोग अपनी रुचि के अनुसार भी उनके चित्र में भेष बढ़ा-घटा दिये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण का जमाना पंचकेश रखने का था। उस समय प्राय: लोग दाढ़ी-मूंछ सब रखते थे; परन्तु भक्तों ने न श्रीराम-श्रीकृष्ण के चित्र में दाढ़ी-मूंछ रहने दी और न उनके चित्र को प्रौढ़ या वृद्ध रूप चित्रित किया। यहां तक कि महात्मा बुद्ध की दाढ़ी-मूंछ और बुढ़ापा उनके चित्र से खारिज कर दिये गये। क्योंकि भक्त अपने उपास्य को सुन्दर भी देखना चाहते हैं। अतएव सार लो।

777. प्रश्न—मुरदों की अन्त्येष्टि कैसे करें?

उत्तर—गाड़ना, जलाना, जल प्रवाह करना—सुविधानुसार कुछ भी किया जा सकता है, परन्तु उसके बाद कोई कर्मकांड करने की आवश्यकता नहीं। हां, मृतक के संचित धन का कुछ हिस्सा जन-कल्याण में लगाना चाहिए।

778. प्रश्न—चौका-आरती में चेतन-पूजा होती है, जड़-पूजा नहीं, तो उसे करना क्या बुरा है?

उत्तर—''जस जस परखत फीका होई। व्यापै न काल कला पुनि सोई।'' जब तक अच्छा लगे, करो, जब अच्छा नहीं लगेगा, तब अपने आप छूट जायेगा।

779. प्रश्न—शून्य मरे अजपा मरे, अनहद हू मर जाय। सुरति मरे निरति मरे, तब जिव कहां समाय?

उत्तर—इसका अर्थ यही मालूम होता है कि शून्य, अजपाजप, अनाहतनाद श्रवण, सुरति तथा निरति—ये सब चेतन जीव से अलग हैं। अत: अपने चेतन स्वरूप में स्थित होओ। तुम यदि शून्य, अजपाजप आदि नश्वर भासों में लगे रहोगे तो जीव की स्थिति कहां होगी! अत: भास छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होओ।

780. प्रश्न—यदि लोग किसी की सादगी, सहनशीलता तथा शांतिप्रियता को उसकी कमजोरी तथा उसका दब्बूपन मानते हों, तो?

उत्तर—उनकी भूल है। हम सादगी, सहनशीलता तथा शांतिप्रियता को न छोड़ें। अन्ततः हमारी विजय होगी।

781. प्रश्न—यदि सब सद्प्रयत्न करने पर भी पड़ोसी लड़ाई-झगड़े पर ही तैयार हो, तो क्या करें?

उत्तर—द्वेष और घृणा से झगड़ा नहीं शांत होगा, प्रेम का व्यवहार ही शांति ला सकता है। हम प्रेम का व्यवहार करें या तटस्थ रहें, पड़ोसी आज नहीं, तो कल समझेगा।

782. प्रश्न—यदि अधिकारी अपने मातहत से गलत काम करवाना चाहे तो मातहत क्या करे? न करने से मातहत को अनिष्ट की आशंका हो सकती है।

उत्तर—ऐसी जगह में कुछ नरम बनकर रहना पड़ता है, फिर भी यथासंभव किसी का अनिष्ट न सोचो।

783. प्रश्न—गृहस्थ को देश-विदेश की खबरों से सरोकार?

उत्तर—जरूर सरोकार रखना चाहिए, किन्तु संयमपूर्वक।

784. प्रश्न—ब्रह्म जब चेतन रूप है, तब उससे जड़तत्त्व कैसे पैदा हुए?

उत्तर—इसलिए सिद्ध है कि चेतन ब्रह्म से जड़तत्त्व नहीं पैदा हुए, किन्तु वे अनादि स्वतः हैं।

785. प्रश्न—कहा जाता है एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में मिले हैं, फिर चंद्रलोक में आक्सीजन क्यों नहीं?

उत्तर—जितने तत्त्व वहां होंगे, एक दूसरे से संयुक्त होंगे ही। जिन तत्त्वों का वहां अभाव या न्यूनता है उनकी बात ही क्या!

786. प्रश्न—मैं जब कोई काम करने की इच्छा प्रकट करता हूं, तब वह बन नहीं पाता है, क्यों?

उत्तर—इच्छाशक्ति एवं दृढ़ संकल्पशक्ति का अभाव ही कारण है।

787. प्रश्न—विष्णु ने वृन्दा से छलकर उसका सतीत्व नष्ट किया, क्या यह गाथा सच है?

उत्तर—वृन्दा के सतीत्व नष्ट होने पर ही जालंधर की मृत्यु की सम्भावना थी, यह अपने आप में एक महा गपास्टक है। महान विष्णु ऐसा बेतुका और

नीच काम करे—यह समझ में नहीं आता। पंडितों ने यह सब लिखकर जगत का क्या कल्याण किया!

788. प्रश्न—क्या क्रोधावेश में जलकर मरने वाले व्यक्ति की आत्मा भटकती रहती है या पुनर्जन्म को प्राप्त होती है?

उत्तर—सभी कर्मवशी जीव पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

789. प्रश्न—कहा जाता है ''पहले जन्म में बुरा किया था, तो आज उसका फल भोगना पड़ रहा है।'' तो क्या बुरा कर्म करने पर भी मनुष्य जन्म मिलता है?

उत्तर—मनुष्य जन्म केवल अच्छे कर्मों से ही मिलता है, यह बात नहीं है। जहां जन्म है, वहां उसके मूल में शुभाशुभ दोनों कर्म रहते हैं। यदि बुरे कर्म न होते, तो आदमी निर्बुद्धि, अन्धा, लूला, महारोगी आदि क्यों होता! हां, इस जीवन में हम सत्संग द्वारा सद्बुद्धि प्राप्त कर अपने को सुधार सकते हैं।

790. प्रश्न—मथुरा में जब सद्गुरु कबीर धर्म साहेब को दर्शन दिये, तब मरी चीटियों को जिला दिये, क्या यह सच है?

उत्तर—असंभव है। कबीर साहेब का महत्त्व उनके सच्चे ज्ञान तथा त्याग में है।

791. प्रश्न—चार्वाक शास्त्र का रचयिता क्या नास्तिक है?

उत्तर—संसार में एक व्यक्ति भी नास्तिक नहीं मिलेगा, क्योंकि नैतिकता को सब मानते हैं।

792. प्रश्न—पक्की देह का अर्थ क्या है?

उत्तर—सद्गुण-सदाचार की स्थिति।

793. प्रश्न—क्या मनुष्य होना अपराध है?

उत्तर—कौन कहता है? सच्चा मनुष्य होना ही तो पुण्य है।

794. प्रश्न—मनुष्य जब जन्म लेता है, तब खुद रोता है और वह जब मरता है, तब दूसरे को रुलाता है। फिर वह कब स्वयं हंसता तथा दूसरे को हंसाता है?

उत्तर—जब वह पवित्र जीवन जीता है।

795. प्रश्न—कोमल वाणी से काम न चले तो क्या कठोर वाणी से काम लेना चाहिए?

उत्तर—कोमल वाणी समर्थ शक्ति है। उसी से काम बनेगा। कठोर वाणी से यथासंभव बचो।

*   *   *

796. प्रश्न—गरीब तथा धनवान सेवक के लिए आपके चरणों में समान स्थान है कि अलग-अलग?

उत्तर—स्वयं अनुभव करके देखो। जब तुम किसी के चरणों में समर्पित हो जाओगे, तब तुम्हारा यह प्रश्न समाप्त हो जायेगा।

797. प्रश्न—सावधान रहने पर भी रात में कभी-कभी कुविचार आ जाते हैं। कैसे बचें?

उत्तर—कुविचारों के आने पर उनमें अपना बल न दें। वे अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

798. प्रश्न—जीभचटोरी कैसे मिटे?

उत्तर—सादा भोजन करने के अभ्यास से।

799. प्रश्न—शुभ संकल्पों में दृढ़ता कैसे बनी रहे?

उत्तर—उनमें लाभ जानकर।

800. प्रश्न—ठीक काम करने से प्रकृति मनुष्य का सहयोग कैसे करती है और गलत काम करने से वह दण्ड कैसे देती है, क्योंकि प्रकृति जड़ है?

उत्तर—जैसे सन्तुलित भोजन करने से जड़ भोजन सुख का कारण बनता है तथा असन्तुलित करने से दुख का।

801. प्रश्न—खानियों के कर्मों का विभाजन कौन करता है?

उत्तर—कर्मों के नियम, जैसे हिरन के सींग स्वयं मुड़े हुए बन जाते हैं तथा बिम्ब के अनुसार जल तथा दर्पण में स्वयं प्रतिबिम्ब बन जाते हैं।

802. प्रश्न—आत्मिक शक्तियां महान होते हुए सांसारिक रुचियों के सामने परास्त क्यों?

उत्तर—क्योंकि आत्मिक शक्तियां पूर्ण जगायी नहीं गयी हैं।

803. प्रश्न—राग, विराग तथा वीतराग में क्या अन्तर है?

उत्तर—जगत-आसक्ति राग है, उससे हटना विराग है तथा पूर्ण हट जाना वीतराग हो जाना है।

804. प्रश्न—वैज्ञानिक युग में धर्म का क्या स्थान है और धर्म का राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन में क्या उपयोग है?

उत्तर—हर युग में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सत्य ज्ञान के अनुसार जीवन बनाना ही धर्म है। ज्ञान के अनुसार आचरण नहीं होगा, तो राष्ट्र, समाज, व्यक्ति—सब का पतन है। यह बात अवश्य है कि धर्म का नाम लेकर छली लोग अपने राजनैतिक, ऐन्द्रिक एवं वैषयिक स्वार्थ को पूर्ण करने में लगे रहे तथा आज भी लगे हैं। इनका परदाफाश करना चाहिए।

805. प्रश्न—क्या दुख मिटाया जा सकता है?

उत्तर—बिलकुल, सच्चे ज्ञान को पाकर।

806. प्रश्न—इंसान धरती पर क्या लेकर आता है और जाते समय क्या ले जाता है?

उत्तर—प्रारब्ध लेकर आता है और कर्मों का बंडल लेकर जाता है।

807. प्रश्न—घर का फाटक अन्दर से खुलता है, दुकान का फाटक बाहर से तो किस्मत का फाटक?

उत्तर—मेहनत से।

808. प्रश्न—जिन्दगी में सुख-दुख चलते ही रहते हैं, फिर भी इंसान दुख पड़ने पर झुंझला क्यों जाता है?

उत्तर—क्योंकि दुख अप्रिय है और उसे सहने की पूर्व तैयारी नहीं है।

809. प्रश्न—मौत से ज्यादा सच?

उत्तर—मौत को जानने वाला।

810. प्रश्न—गाय घास खाकर दूध देती है, परन्तु सांप दूध पीकर जहर देता है क्यों?

उत्तर—गाय में दूध बनाने का स्वभाव है तथा सांप में जहर बनाने का।

इसी प्रकार सद्‌गुणी आदमी दुर्गुणी में भी सद्‌गुण ढूढ़ लेता है, परन्तु दुर्गुणी मनुष्य सद्‌गुणी में भी दुर्गुणों की कल्पना करके उन्हीं का प्रचार करता है और फल में सांप की तरह कुचला जाता है।

811. प्रश्न—कबीर जयंती पर सरकारी छुट्टी क्यों नहीं होती?

उत्तर—सरकार को इतनी छुट्टी नहीं है कि वह किसी की जयंती पर छुट्टी के लिए सोचे। यह तो अनुयायियों-भक्तों का कर्तव्य है कि वे सरकार को

प्रभावित करने का प्रयत्न करें। कबीरपंथ एकजुट होकर ऐसा कुछ करता नहीं, किन्तु करना चाहिए। मध्यप्रदेश सरकार अपने प्रदेश में कबीर जयंती के दिन सार्वजनिक छुट्टी रखती है। केन्द्र ऐसा कर दे, तो सारे भारत में हो जाये। कबीर अनुयायियों के सर्वोपरि इष्ट कबीर साहेब ही हैं। सरकार को यह ध्यान में रखकर कबीर जयंती की सार्वजनिक छुट्टी करनी ही चाहिए।

812. प्रश्न—कबीरपंथ का केन्द्र कहां है जहां से सभी शाखाओं पर नियंत्रण होता है?

उत्तर—कबीरपंथ विकेन्द्रित है। उसमें अनेक शाखाएं हैं और सब अपनी-अपनी शाखाओं के अधिपति हैं। वैसे आज के संगठन-युग में समग्र कबीरपंथ की एक संस्था, एक संगठन और उसका एक केन्द्र कार्यालय होना चाहिए।

काशी सद्‌गुरु कबीर की आविर्भावस्थली तथा कार्यस्थली रही है। वहां केन्द्र कार्यालय बनाकर पूरे कबीरपंथ का संगठन किया जा सकता है। पंथ की शाखाओं में दार्शनिक मान्यता तथा व्यवहारगत थोड़ा भेद होने पर भी सब एक जगह प्रेम से इकट्ठे हो सकते हैं और सद्‌गुरु कबीर के सार्वजनिक लोकल्याणकारी विचारों तथा सिद्धान्तों के आधार पर समाज जागरण का कार्य कर सकते हैं।

813. प्रश्न—एक गुरु के शिष्य भाई-भाई कहलाते हैं, तो एक ही गुरु से दीक्षित पति-पत्नी क्या भाई-बहन नहीं होंगे?

उत्तर—एक गुरु से दीक्षा लेकर पति-पत्नी—दोनों गुरु के शिष्य-शिष्या हैं, भाई-बहन नहीं। यदि भाई-बहन का भाव कोई रखना चाहे, तो अच्छा है, किन्तु वे दोनों ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी बन जायें। महात्मा गांधी तथा कस्तूरबा का उदाहरण प्रस्तुत कर दें।

814. प्रश्न—क्या सूक्ष्म शरीर का जीव स्थूल शरीर के जीव से सम्पर्क कर सकता है?

उत्तर—बिलकुल नहीं। केवल सूक्ष्म शरीर सम्बद्ध जीव अचेत रहता है। वह कर्म के अनादि नियमानुसार शरीर धारण करने के लिए सूक्ष्म शरीर द्वारा यथास्थान गमन करता है।

815. प्रश्न—कबीर साहेब ने गुरु का महत्त्व परमात्मा से भी अधिक क्यों बताया?

उत्तर—परमात्मा क्या है, इसका परिचय गुरु ही देता है, अतः गुरु श्रेष्ठ पूज्य है।

816. प्रश्न—साहेब ने पंडित होने की कौन-सी योग्यता बतायी है?

उत्तर—प्रेममय जीवन। 'ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

817. प्रश्न—सद्गुरु कबीर ने अपने निंदकों को निकट बसाने के लिए क्यों कहा है?

उत्तर—जिससे वे बिना पानी-साबुन के हमारे स्वभाव को निर्मल करते रहें। माता ने हमारे मल को हाथ से धोया है, किन्तु निंदक हमारे मल को अपने मुख से धोता है।

818. प्रश्न—संतों ने अच्छे मित्र के लक्षण क्या बताये हैं?

उत्तर—बुरे मार्ग से बचाना, अच्छे मार्ग में लगाना, गोपनीय बातों को छिपाना, गुणों को प्रकट करना, आपत्ति काल में त्याग न करना, समय आने पर सहायता करना—यह सन्मित्र के लक्षण हैं।[1]

819. प्रश्न—यदि जंगली सुअर या सिंह कहीं कीचड़ आदि में फंसा हो, तो हमें उसे निकालने का प्रयत्न करना चाहिए कि वहां से भाग निकलना चाहिए?

उत्तर—जैसा साहस हो।

820. प्रश्न—पेड़-पौधे जब सचेतन हैं, तब उनसे फल, सब्जी, अन्नादि लेकर खाना मांसाहार है। इससे कैसे बचें?

उत्तर—पेड़-पौधे निर्जीव हैं। उनमें चेतन नहीं है। अत: फल, सब्जी, अन्नादि खाना शाकाहार ही है, मांसाहार नहीं।

821. प्रश्न—गृहस्थी बिना कलह के कैसे चल सकती है?

उत्तर—स्वार्थ तथा अहंकार को जीतकर और सन्तोष एवं समता से बरताव करके।

*　　　　*　　　　*

822. प्रश्न—सभी देवताओं की पूरी मूर्ति की पूजा होती है, परन्तु शिव के केवल लिंग ही की क्यों?

---

1. **पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटी करोति।**
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

उत्तर—कहा जाता है भारत में आदिवासी लोग लिंग की पूजा करते थे। जब आर्यों से उनका परिचय हुआ, तब आर्य लोग लिंगपूजकों को घृणा से देखते थे और उन्हें 'शिश्नदेवा' कहकर उनका मजाक करते थे कि ये शिश्न को देवता मानने वाले कितने नासमझ हैं। 'शिश्नदेवा' शब्द ऋग्वेद का ही है जो आदिवासियों पर आर्यों का व्यंग्य है।

पीछे जब आर्यों तथा आदिवासियों की संस्कृतियां मिल गयीं, तो लिंग-पूजा आर्यों में भी आ गयी।

इतिहास के पंडितों का मत है कि शिवपूजा वैदिक नहीं है। वैदिक देव अग्नि, इन्द्र, वरुण, पूषण (सूर्य), ऊषा, सोम, पर्जन्य आदि हैं। ऋग्वेद का एक देवता रुद्र है, परन्तु वह प्राकृतिक शक्ति है, जिससे आंधी, तूफान, बिजली, बाढ़, वज्रपात, महामारी, भूकम्प आदि आते हैं। परन्तु ऐसा रुद्रशिव जो भांग-धतूरा खाता हो, गजचर्म एवं मुण्डमाला पहनता हो, श्मशान में रहता हो, राख और सांप देह में लपेटता हो, बैल की सवारी करता और उसका लिंग पूजा जाता हो—इसका पता वेदों में कहीं नहीं है।

विद्वानों का मत है कि शिवपूजा आर्यों की नहीं, किन्तु द्राविड़ों तथा भारत के आदिवासियों की है। मोहन-जोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई में शिव की समाधिनिष्ठ मूर्तियां मिली हैं, जो आर्यों के पूर्व की थीं।

पहले के आर्य शिवपूजा नहीं मानते थे। शिवपुराण में लिखा है कि ऋषियों ने शिव को शाप दिया और उनके लिंग के नौ टुकड़े हो गये। शिव पर चढ़ाये गये प्रसाद हिन्दुओं को खाने का विधान नहीं है। इससे लगता है कि शिवपूजा आर्यों में अनार्यों से आयी।

रावण हो या वाणासुर या अन्य—जितने भी असुर, दानव, नाग, द्राविड़ आदि जातियों के सदस्य थे, शिव-उपासक होते थे। आर्यों-ब्राह्मणों के वंश में लगता है कन्याओं की उपज कम थी। अतएव वे अनार्यों की कन्याओं से अपनी शादी करने लगे। कुछ उदाहरण लें—पराशर ने धीवरीकन्या मत्स्यगंधा को पत्नी बनाया। उच्च ब्राह्मण विश्रवा ने राक्षस सुमाली की सुन्दरी कन्या कैकसी से, आर्यश्रेष्ठ इन्द्र ने पुलोम दानव-कन्या शची से, सूर्यवंशीय क्षत्रिय राजा ययाति ने वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा से, वसुदेव ने असुर कंस की बहन देवकी से, भीमसेन ने हिडिम्बा नामक राक्षस कन्या से, अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से, श्रुतश्रवा ने भी नागकन्या से, ऋषि जरत्कार ने वासुकि नाग की बहन से, ऋषि मंदपाल ने एक अनार्य कन्या से तथा महर्षि वसिष्ठ ने निम्न कहे जाने वाले कुल में उत्पन्न अक्षमाला से अपने विवाह किये (मनुस्मृति 9/2/3)। यहां तक कि जिस महान भरत के नाम से हमारे देश का नाम

भारतवर्ष पड़ा है, उनके पिता दुष्यन्त थे परन्तु उनकी माता थी मेनका अप्सरा की पुत्री शकुन्तला। शाक्यमुनि महात्मा बुद्ध की वंशपरम्परा आर्य-मंगोल मिश्रित मानी ही जाती है। दशरथ की तीसरी पत्नी सुमित्रा वर्णसंकर से उत्पन्न थीं "सुमित्रा तु वर्णसंकरजा" (भट्टिकाव्य की जयमंगला टीका)। यह सूची बहुत लम्बी बढ़ाई जा सकती है।

जब इस प्रकार अनार्य कन्याएं आर्यों के घर पत्नियां बनकर आयीं, तो वे अपने पितृकुल के विश्वास, पूजापाठ भी लेकर आयीं। इसीलिए आगे चलकर आर्यों के मुख्य कृत्य नित्य हवन आदि लुप्त-जैसे हो गये और पूजा-पाठ फैल गये।

विद्वानों का मत है कि इसी प्रकार अनार्य लड़कियां आर्यों में शिवपूजा लायीं। एक मनोरंजक तथा सारगर्भित उदाहरण लें—वामन पुराण के अनुसार एक बार महादेव नग्न रूप से ऋषियों के आश्रम के पास आये। ब्राह्मण ऋषियों की पत्नियां मोहित हो महादेव के चारों ओर आकर खड़ी हो गयीं। ऋषियों को यह अभद्रता अच्छी नहीं लगी। "मुनियों ने जब देखा कि हमारे ही आश्रम की पत्नियां अभद्र रूप से महादेव पर मोहित हैं, तो वे महादेव को 'मारो-मारो' कहकर काष्ठ-पत्थर लेकर दौड़े। यथा—

क्षोभं विलोक्य मुनयः आश्रमे तु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति सम्भाष्य काष्ठपाषाणपाणयः॥

(वामन पुराण 43/70)

फिर तो उन ऋषियों ने महादेव के उठे हुए विभीषण (भयंकर) लिंग को काटकर गिरा दिया। यथा—

पातयन्तिस्य देवस्य लिंगमूर्ध्व विभीषणम्।

(वामन पुराण 43/71)

इसी प्रकार कूर्म पुराण (37/22) में लिखा है कि महादेव को एक देवदारु वन में विचरते देखकर मुनि पत्नियां उन पर मोहित हो गयीं। इसे देखकर मुनियों ने शिव को कठोर वचनों में शाप दिया।

संस्कृत भाषा की पुरानी पुस्तकों में अनेक सद्गुण होते हुए एक महान दोष है कि उनमें बहुत सारी बातों को श्रृंगारिक (कामुक) उदाहरण से समझाने की चेष्टा की गयी है। यहां शिव पर मुनिपत्नियों का मोहित होने तथा मुनियों द्वारा शिव को शाप देने और उनका तिरस्कार करने का अर्थ यही है कि ऋषि-मुनियों की पत्नियां जो प्रायः आर्येतर परिवार से आयीं थीं, अपने पूर्व संस्कार-वश शिवलिंगी को पूजना चाहती थीं, परन्तु आर्य ऋषि-मुनि इसका घोर विरोध करते थे। अन्ततः आर्यों का पुरुषवर्ग स्त्रियों की भावना रोकने में असमर्थ रहा

और धीरे-धीरे शिवलिंग की पूजा आर्यों के घरों में व्याप्त हो गयी। सैकड़ों-हजारों वर्षों के बाद आर्यपुरुषों की वंशपरम्परा को याद भी नहीं रहा कि शिवलिंग या भस्ममंडित महादेव की पूजा अवैदिक तथा अनार्य है।

823. प्रश्न—गणेश तथा स्वामि कार्तिकेय के माता-पिता कौन हैं और उनकी वरीयता कब से है?

उत्तर—पार्वती ने अपने शरीर में उबटन लगाया। उस उबटन के मैल को झाड़कर इकट्ठा कर लिया और उसी को एक बालक बना दिया। वही गणेश हैं। वह दरवाजे पर थे। शिव ने समझा यह दूसरा पुरुष है, अत: गणेश का सिर काट दिया। पार्वती से भेद जानने पर एक हाथी का सिर काटकर गणेश के धड़ पर लगा दिया, इसलिए गणेश गजानन हो गये।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार गणेश श्रीकृष्ण के अवतार हैं। श्रीकृष्ण पार्वती के बिस्तर पर एक सुन्दर बच्चा बनकर लेट गये। उस बच्चे के मुख को शनिश्चर ने देख लिया, इससे मुख भस्म हो गया। तब एक हाथी का सिर बच्चे पर जोड़ा गया।

महाभारत के वनपर्व के अनुसार सप्त-ऋषियों की पत्नियों को देखकर अग्नि देवता मोहित हो गये; परन्तु वे ऋषि पत्नियां पतिव्रता थीं, अत: उनसे अग्नि महाराज छेड़खानी कर नहीं सकते थे। अग्नि की पत्नी 'स्वाहा' ने छह ऋषियों की पत्नियों के रूप धरकर छह बार अग्नि से समागम किया और उनके वीर्य को हाथ में लेकर सोने के कुण्ड में रख दिया। सातवीं अरुंधती का रूप वे नहीं बना सकीं। अत: उस कुंड से छह मुख वाले स्वामि कार्तिकेय जमीन पर तुरन्त प्रकट हो गये। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार शिव का वीर्य जमीन पर गिरा और स्वामी कार्तिकेय जमीन पर तुरंत प्रकट हो गये। वाल्मीकीय रामायण के बालकांड में भिन्न प्रकार से शिव के वीर्य गिरने से स्वामि कार्तिकेय की उत्पत्ति बतायी गयी है, जो सब की सब सृष्टिक्रम विरुद्ध होने से मिथ्या कथाएं हैं।

वस्तुत: गणेश तथा स्वामि कार्तिकेय भी किसी-न-किसी प्रकार आदि भारतवासियों के कल्पित देवता थे, जिन्हें बहुत पीछे आर्यों ने भी स्वीकारा। स्वामि कार्तिकेय का उत्तर भारत में कम महत्त्व है, दक्षिण भारत में इनकी महिमा ज्यादा है। गणेश पूरे भारत में ज्यादा व्याप्त हैं।

विद्वानों का मत है कि गणेश हाथीमुख के देवता हैं। इस प्रकार के विचित्र देवता जंगलवासी असभ्यों के आज होते हैं। जिस देश से आर्य भारत में आये, उस देश में हाथी नहीं होते थे; अत: आर्यों को हाथीमुख देवता की कल्पना ही नहीं हो सकती थी।

कहा जाता है भारत के आदिवासियों में भयंकर गजमुखधारी गणेश विघ्न उत्पन्न करने वाले देवता थे। अत: उनको खुश करने के लिए आदिवासी लोग इन्हें पूजते थे। जब इन्हें आर्यों ने स्वीकारा तब इन्हें विघ्नहरण करने वाला बना दिया और ये मंगलकारी देवता बन गये।

गणेश वैदिक देवता नहीं हैं। यजुर्वेद में जो ''गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे'' आया है, इससे पण्डितों को भ्रम होता है कि वेद में गणपति हैं। परन्तु वास्तव में यहां के गणों में गणपति अश्वमेध में छोड़ा गया घोड़ा है, गणेश नहीं। इसी प्रकार यजुर्वेद में 'महावीर' शब्द आया है और लोग उससे हनुमान की बात सोचने लगते हैं, परन्तु वहां महावीर यज्ञ में रखे हुए विशेष प्रकार के कलश का नाम है। यहां तक कि राम-कृष्ण तक वैदिक देवता नहीं हैं। हां, वेदों का प्रबल देवता इन्द्र अवश्य है, जिसे भक्त कवियों ने कुत्ता कह डाला है, और पूरा हिन्दू समाज इन्द्रपूजा से अलग हो गया है।

824. प्रश्न—रावण तथा राम में कौन बड़ा था?

उत्तर—अपने-अपने स्थान पर दोनों बड़े थे; राम के साथ रावण को भी वाल्मीकि जी ने महात्मा शब्द से याद किया है। किन्तु रावण से राम का आदर्श ऊंचा है।

*   *   *

825. प्रश्न—मेरी लड़की बहुत दिनों से बीमार है। बहुत पैसे खर्च कर रहे हैं और सेवा भी। उसका पूर्वजन्म का मैं कर्जदार हूं कि मेरी पत्नी?

उत्तर—जो भी हो, सेवा करना परम धर्म है।

826. प्रश्न—लोग धर्म के नाम पर लड़ते क्यों हैं?

उत्तर—क्योंकि वे अ-धर्मी हैं।

827. प्रश्न—कबीरपंथी किस दिन व्रत-उपवास करते हैं?

उत्तर—प्राय: लोग पूर्णिमा को करते हैं। पारखी लोग किसी दिन भी कर लेते हैं। व्रत का उद्देश्य केवल पेट की सफाई तथा उस दिन अधिक समय अध्ययन, मनन एवं आध्यात्मिक चिंतन है।

828. प्रश्न—मोह कहां उत्पन्न होता है?

उत्तर—कांचन, कामिनी (पुरुष के लिए स्त्री तथा स्त्री के लिए पुरुष) तथा सम्मान में। इनसे सावधान।

829. प्रश्न—बेईमान आदमी सुखी है, सच्चा दुखी, ऐसा क्यों?

उत्तर—बेईमान आदमी बाहर से सुखी दिख सकता है, परन्तु वह सुखी होता नहीं। ईमानदार हृदय से सुखी होता है।

830. प्रश्न—क्या धर्म साहेब कबीरदेव के प्रमुख शिष्य थे? क्या उन्हीं को पूरे पंथ का राज्य दिया गया? क्या वंशगुरुओं के हाथों से पान-परवाना पाये बिना जीव मुक्त नहीं होता?

उत्तर—श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री जागू साहेब जैसे कबीरदेव के प्रमुख शिष्य थे, पीछे से वैसे श्री धर्म साहेब पंथ के एक महान पुरुष हुए। पंथ का राज्य एक को नहीं, सभी को प्राप्त है। जो संत अपना तथा दूसरे का जितना कल्याण करेगा, वह उतना ही सबके दिल का सम्राट हो जायेगा। 'पान-परवाना से मोक्ष' की बात करना तो बच्चों का भोलापन है।

831. प्रश्न—मूर्ख से पाला पड़ने पर क्या करें?

उत्तर—मौन। कबीरदेव ने कहा है—'मूरख सो रहिये झख मारी' तथा 'मूरख सो क्या बोलिये!'

832. प्रश्न—मनुष्य सबके बीच रहकर भी अपने आप को अकेला कब अनुभव करता है?

उत्तर—निराशा में या ज्ञान में। निराशा में वह हार जाता है और ज्ञान में अपने असंगत्व (अकेलापन) का बोध करके तृप्त एवं शांत हो जाता है।

833. प्रश्न—क्या महात्मा बुद्ध मांस खाते थे?

उत्तर—वे हिंसा पर तो रोक लगाते थे, परन्तु भिक्षा में जो मिल जाये, उसे खा लेने को कहते थे चाहे मांस भी हो। हां, तुम्हारे लिए मारकर न लाया गया हो। कुछ लोग कहते हैं, वे मांस नहीं खाते थे। महात्मा बुद्ध की बहुत-सी अच्छाइयां हैं, उन्हें लो। मांसाहार से क्या मतलब!

834. प्रश्न—अंजान में गलती हो गयी तो सुधार कैसे हो?

उत्तर—उस गलती को न दोहराने से।

835. प्रश्न—आज इंसानियत खत्म होती क्यों जा रही है?

उत्तर—ऐसी बात नहीं है। सब तरह के आदमी सब समय प्राय: रहते हैं।

836. प्रश्न—क्या ऐसे सिद्ध होते हैं जिनके छू लेने से कोढ़ी तुरन्त अच्छे हो जायें और अंधे को आंखें मिल जायें आदि?

उत्तर—ऐसे होते तो नहीं हैं न हो सकते हैं, परन्तु धूर्त या मूर्ख लोग ऐसा प्रचार करते हैं।

837. प्रश्न—मनुष्य का भयंकर शत्रु कौन है जिसे उसे जीतना चाहिए?

उत्तर—उसके अपने दुर्गुण।

838. प्रश्न—कई काम करते समय जीव मरते हैं, जैसे दीवार पर प्लास्टर करते समय, लकड़ी छीलते समय, खेत जोतते समय आदि। क्या करें?

उत्तर—काम करना समाज की पवित्र सेवा है, अतः करो। जितना सम्भव हो जीव हिंसा बचाओ।

839. प्रश्न—भविष्य के लिए प्रबन्ध करें कि वर्तमान में सन्तुष्ट रहें?

उत्तर—भविष्य का कुछ प्रबन्ध करते हुए भी वर्तमान में सन्तुष्ट रहें।

840. प्रश्न—हम पति-पत्नी भिन्न स्थानों से दीक्षित हैं, अतः आपस में विरोध रहता है। क्या करें?

उत्तर—दोनों के मत भिन्न भले रहें, किन्तु परस्पर में प्रेम होना चाहिए और दोनों के गुरुओं को दोनों आदर दें।

841. प्रश्न—क्या गृहस्थ के लिए विवाह अनिवार्य है? इस पर धर्म, जाति, सम्प्रदाय का प्रतिबन्ध क्यों? क्या प्रचलित आडंबरपूर्ण विवाह-प्रणाली से आदर्श-विवाह, कोर्ट-मैरिज ठीक नहीं है?

उत्तर—लड़की-लड़का पूर्ण युवती तथा युवक हो जायें और एक दूसरे को पसन्द कर लें। उसके साथ-साथ माता-पितादि स्वजन भी उन्हें पसन्द कर लें। फिर देश, काल के अनुसार जिस विधि से हो विवाह की रस्म कर लेना चाहिए। इससे मन में एक-दूसरे के प्रति बन्धन हो जाता है। विवाह की रस्म आडम्बर-रहित तथा न्यून खर्च वाला होना चाहिए। कोर्ट-मैरिज तथा आदर्श-विवाह भी ठीक है, परन्तु दोनों तरफ की पूर्ण स्वीकृति होनी चाहिए। जवानी भावुकतापूर्ण होती है। वृद्धों की राय अच्छी होती है।

842. प्रश्न—नशीली चीज लेने से कुछ समय के लिए मानसिक परेशानी दूर हो जाती है, अतः यह बुरा क्यों है?

उत्तर—नशीली वस्तुएं मनुष्य के मन और शरीर के स्वास्थ्य को धीरे-धीरे निगल जाती हैं। इनसे हजार कोस दूर रहो।

843. प्रश्न—क्या अगस्त्य समुद्र पी गये थे?

उत्तर—उन्होंने समुद्र से पार जाकर आर्यत्व का प्रचार किया था, इसलिए आलंकारिक भाषा में कहा गया कि वे समुद्र पी गये थे।

844. प्रश्न—चिंता दूर करने की क्या दवा है?

उत्तर—विवेकज्ञान। यहां सब कुछ नश्वर है, किसकी चिंता करें!

845. प्रश्न—जड़तत्त्व में स्वयं गुण है, तो गुण तो द्रव्य में रहता है। क्या जड़ तत्त्व द्रव्य है?

उत्तर— बिलकुल द्रव्य है।

846. प्रश्न—ध्यान करने के पहले क्या-क्या तैयारी करूं?

उत्तर—हलका और सात्विक आहार, मन की सरलता, उलझनों का त्याग, राग-द्वेष-विहीनता आदि का आचरण।

847. प्रश्न—बच्चों के क्या कर्तव्य हैं?

उत्तर—सदाचार, अनुशासन और स्वच्छता से रहकर विद्याध्ययन करना।

848. प्रश्न—'साधु न चले जमात' का अर्थ क्या है? क्योंकि संत समाज की वंदना की गयी है।

उत्तर—यहां साधु का अर्थ जीवन्मुक्त है। जीवन्मुक्त विरला होता है।

849. प्रश्न—महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भागवत का रचयिता वोपदेव को माना है, व्यास को नहीं। आपका क्या विचार है?

उत्तर—भागवत व्यासकाल के बहुत पीछे की रचना है। श्रीकृष्ण महाभारत में वीर तथा ज्ञानी के रूप में हैं, परन्तु भागवत ने उनको कई जगह घोर रसिक तथा परांगनारत बनाकर उनकी छवि घोर मलिन कर दी है। फिर पीछे सफेदी पोती गयी है। इन सबसे व्यास को जोड़ना अनर्थ है।

850. प्रश्न—कृपया लहरतारा कबीर-स्मारक पर प्रकाश डालें?

उत्तर—काशी का लहरतारा सद्गुरु कबीर के प्राकट्य से जुड़ा है। काशी कबीरचौरा से सम्बन्धित स्मारक पहले से है। अब बहुत वर्षों से खरसिया के हुजूर श्री उदित नाम साहेब लहरतालाब में एक विराट कबीर-स्मारक बनवा रहे हैं जो अत्यन्त प्रशंसनीय है। उनके सहयोगी धर्माधिकारी श्री मनोहर साहेब तथा उनका विशाल साधु समाज उस सेवा में रत हैं। इसके लिए उन्हें कोटिश: बधाई है। भक्त तथा मठाधीशजन उन्हें अधिक-से-अधिक आर्थिक सहयोग करें, यह शुभकामना है।

बस्ती जिला का मगहर सद्गुरु कबीर की समाधि स्मृति से जुड़ा है। समाधिस्थल को पर्यटकों के लिए दर्शनीय बनाने हेतु सुना गया है सरकार ने पैंतालिस (45) लाख रुपये की सहायता करने का वचन दिया है। एकता,

मानवता तथा सच्चे आत्मज्ञान के पुरोधा संत कबीर की याद के लिए सरकार तथा जनता जितना साधन जुटाये, प्रशंसनीय है।

851. प्रश्न—क्या रावण के दस शीश तथा बीस भुजाएं थीं?

उत्तर—यह आलंकारिक कथन है। रावण के एक शीश और दो ही भुजाएं थीं।

852. प्रश्न—क्या वाल्मीकि पहले डाकू थे? फिर वे इतने उच्च कवि तथा ऋषि कैसे हो गये?

उत्तर—मनुष्य में महान बल है। वह अपने को पूर्ण बदल सकता है।

853. प्रश्न—विज्ञान विनाश की ओर है या विकास की ओर?

उत्तर—दोनों ओर।

854. प्रश्न—यदि सिंह को हिंसा का पाप नहीं लगता, तो मनुष्य को क्यों लगना चाहिए?

उत्तर—क्योंकि मनुष्य ज्यादा समझदार है।

855. प्रश्न—क्या साधक-साधिकाओं को सिनेमा, रामलीला तथा रास-लीला आदि देखना चाहिए?

उत्तर—नहीं। ये सब रजोगुण उत्पन्न करने वाले हैं। यह सब गृहस्थों की चीजें हैं। रासलीला आदि तो श्रीकृष्ण जी के विषय में गलत दृष्टि से प्रचार करने वाले होने से सबके लिए त्याज्य होने चाहिए।

*　　　*　　　*

856. प्रश्न—शब्दब्रह्म, अनाहतनाद, नूर, परम प्रकाश क्या है?

उत्तर—शब्द तथा नाद वायु है, प्रकाश अग्नितत्त्व है। इन सबका द्रष्टा एवं साक्षी चेतन है, जो तुम हो। तुम किसी शब्द एवं प्रकाश में न अटककर अपने चेतन स्वरूप को समझो और उसमें स्थित होओ।

857. प्रश्न—खेचरी मुद्रा क्या है और अमृतपान क्या है?

उत्तर—जिह्वा को उलटकर कपालकुहर से टपकते हुए द्रव को पीना खेचरी मुद्रा एवं अमृतरस पान कहते हैं, यह हठयोग की प्रक्रिया है। वस्तुत: अपना अविनाशी चेतन स्वरूप ही अमृत है और अपने आप में शांत होना ही असली अमृतपान है।

858. प्रश्न—अनाम क्या है जिसके द्वारा आत्मशांति होती है?

उत्तर—सबका नामकरण करने वाला यह चेतन तत्त्व ही अनाम है। यह जब अपने आप शांत हो जाता है तभी शांति है।

859. प्रश्न—बीजक में है ''टोपी पहिरे माला पहिरे छाप तिलक अनुमाना।'' क्या इसमें वेष का खण्डन नहीं हो गया?

उत्तर—कबीर साहेब इसकी अगली पंक्ति में कहते हैं ''साखी शब्दै गावत भूले, आतम खबरि न जाना।'' जिसने अपनी आत्मा को नहीं पहचाना उसके वेष का कोई खास मूल्य नहीं। इसका अर्थ वेष का खण्डन नहीं है, किन्तु आत्मज्ञान, स्वरूपज्ञान पर जोर देना है।

860. प्रश्न—साधु को स्वपाकी होना चाहिए कि अन्य का बनाया भी खाना चाहिए। इससे मोक्ष में क्या अन्तर पड़ता है?

उत्तर—मोक्ष स्वरूपज्ञान एवं विषय-वासना के त्याग से सम्भव है। स्वपाकी, परपाकी की बात आचारगत है। जो स्वपाकी रहना चाहता है, उसे हम विघ्न क्यों करें?

861. प्रश्न—मैंने पांच रुपये दान किये। दान पाने वाले ने उसकी शराब पी ली, तो मुझे क्या फल मिलेगा?

उत्तर—पात्र समझकर दान करो। यदि तुम ठीक समझकर दान किये, तो तुम्हारे लिए फल ठीक है। दान का दुरुपयोग करने वाला दोषी है।

862. प्रश्न—एक विद्वान कहता है कि कुसंग काजल की कोठरी के समान दाग लगा ही देगा और दूसरा विद्वान कहता है कि कुसंग मनुष्य का कुछ नहीं बिगाड़ सकता है, जैसे चन्दन के पेड़ में सर्प के लिपटे होने पर भी चन्दन में विष नहीं व्यापता। क्या मानें?

उत्तर—कुसंग में पड़कर अच्छे-से-अच्छे लोगों का पतन हो जाता है। हां, विवेकवान को जब कभी बलात कुसंग मिल जाता है, तब वे अपने आप को बड़ी सावधानी से उससे उसी प्रकार बचा लेते हैं जैसे चन्दन अपने आप को सर्प के विष से बचा लेता है, और जितना सम्भव होता है वे शीघ्र कुसंग का त्याग कर देते हैं। वैसे कुसंग से दूर रहने ही में कल्याण है।

863. प्रश्न—जीव के शरीरांत में वासना क्यों नहीं मरती?

उत्तर—क्योंकि जीवन में उसको मारा नहीं गया है।

864. प्रश्न—द्रष्टा-अभ्यास-काल में बहुत-से संकल्प उठने लगते हैं। वे कैसे शांत होंगे?

उत्तर—मन में जितना अधिक वैराग्य बढ़ेगा तथा नित्य अभ्यास होता रहेगा उतना शीघ्र मन संकल्परहित होकर शांत हो जायेगा। बिना घबराये नित्य साधना करो।

865. प्रश्न—पारख सिद्धान्त के संत श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। क्या इसे गृहस्थ, शिक्षक, कर्मचारी, चपरासी—सब धारण कर सकते हैं?

उत्तर—साधु वेष गृहस्थ न धारण करे। वह धोती-कुरता, पैण्ट-शर्ट सफेद धारण कर सकता है। धारण करता ही है।

866. प्रश्न—शादी के लिए लड़की या लड़के भक्त नहीं मिलते, क्या करें?

उत्तर—सदाचारी का चुनाव करो पीछे वे भक्त बन सकते हैं।

867. प्रश्न—पारख सिद्धान्तानुसार कुछ करना ही बन्धन है; फिर संध्यापाठ आदि करना भी बन्धन क्यों नहीं?

उत्तर—यदि तुम कुछ नहीं करते हो तो संध्यापाठ आदि भी मत करो और यदि कुछ करते हो तो संध्यापाठ आदि साधना के काम क्यों न करो। शुद्ध पुरुषार्थ से ही अशुद्ध वासनाएं कटती हैं और जीवनपर्यन्त शुद्ध पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

868. प्रश्न—रोग तथा दरिद्रता से पीड़ित परिवार में रहने वाले व्यक्ति का कर्तव्य स्वरूपस्थिति करना है कि परिवार की सेवा?

उत्तर—दोनों।

869. प्रश्न—किसी से मतभेद होने के बावजूद भी मतैक्य हो सकता है?

उत्तर—दोनों की समझ एक हो जाने पर मतैक्य हो सकता है। वैसे मत भिन्न रहने पर भी परस्पर प्रेम का व्यवहार रखना कर्तव्य है।

870. प्रश्न—सम्प्रदायवाद बढ़ता ही जा रहा है, क्या निदान?

उत्तर—विविध सम्प्रदाय सदैव रहे हैं तथा रहेंगे। सम्प्रदाय चाहे जितने रहें, सबकी आवश्यकता एक है—शांति की प्राप्ति। अत: सभी सम्प्रदायों को चाहिए कि वे एक दूसरे को समझें तथा सबकी सच्चाइयों को आदर दें।

871. प्रश्न—कुंडलिनी की क्या विशेषता है?

उत्तर—यह हठयोग का साधन है। इसके चक्कर में मत पड़ो। सदाचार और सुन्दर विचारों द्वारा मन की पवित्रता साधो।

872. प्रश्न—मानस का यह वचन कहां तक ठीक है—''मानस पुण्य होय नहि पापा''।

उत्तर—यदि मन के पाप नहीं लगते, तो मन को शुद्ध करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। मन ही तो सारे कर्मों का मूल है। अत: मन के भी पाप लगते हैं, इसीलिए उसे सदैव शुद्ध रखना कर्तव्य है।

873. प्रश्न—दुख का स्वरूप क्या है, उसका कारण क्या है तथा उसका निवारण कैसे हो?

उत्तर—परतन्त्रता दुख का स्वरूप है। अज्ञान उसका कारण है और ज्ञान से उसका निवारण होता है। परतन्त्रता है मन की गुलामी।

874. प्रश्न—मन में अनेक गलत विचार आते हैं। उनसे बचने का उपाय क्या है?

उत्तर—दृढ़ संकल्प करो कि हम गलत विचार मन में नहीं लायेंगे। इसके साथ सद्ग्रंथों का स्वाध्याय तथा सत्संग का भी आधार रखो। नित्य प्रात: जगने पर पांच मिनट तक प्रतिज्ञा करो कि आज पूरा दिन मैं शुद्ध मन से रहूंगा और सोने के पहले पांच मिनट तक विचार करो कि मैंने आज कब-कब गलत विचारों को मन में स्थान दिया है। ग्लानि करो और पुन: केवल पवित्र विचार लाने की प्रतिज्ञा करो। यह साधना नित्य जगने के बाद तथा सोने के पूर्व करो।

875. प्रश्न—आप मार्क्स एवं लेनिन को किस रूप में मानते हैं—सन्त या मानव?

उत्तर—सन्त की परिभाषा दूसरी है। मैं मार्क्स और लेनिन को राजनीतिक ऋषि और विश्व के महान पुरुषों में मानता हूं। मेरे मानने से वे महान नहीं होंगे। वे अपने आप में महान थे। यदि हम उनकी महानता न समझ पावें तो हम किसी लायक नहीं हैं।

876. प्रश्न—मार्क्स एवं लेनिन के वचनों को पारख सिद्धान्त कहां तक मानता व नहीं मानता है?

उत्तर—इस प्रश्न पर एक शास्त्र लिखना पड़ेगा, तब सम्यक उत्तर होगा। यहां किंचित झलकी दी जा सकती है।

मेरी जानकारी में जहां तक विश्व में राजनीतिक पार्टियां हैं, वे दार्शनिक विचारों से विहीन हैं। एक मार्क्सवादी पार्टी है जिसमें अपना ठोस दर्शन है। उसके दर्शन में संसार की सत्यता, साथ-साथ उसकी गतिशीलता का

मार्मिक एवं तथ्यपूर्ण चिन्तन है। उसके दर्शन में जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन का अस्तित्व नहीं माना गया। उसके ख्याल से चेतन जड़ तत्त्वों का गुणात्मक परिवर्तन है, जो पारख सिद्धान्त के अनुसार सर्वथा गलत है। इसका समाधान मेरे लिखे 'कबीर दर्शन' के तीसरे अध्याय के 'चेतन अस्तित्व' सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

मार्क्स एवं लेनिन की अर्थव्यवस्था स्तुत्य है, किन्तु उसका आधार हिंसा नहीं, कानून होना चाहिए, ऐसा पारख सिद्धान्त मानता है। आज मार्क्स का नाम न लेकर भी समाजवाद का गुणगान सारा विश्व कर रहा है। प्रबुद्ध पूंजीपति भी चार लोगों के बीच समाजवाद को ही अच्छा कहता है। वह मोह-वश भले स्वयं नहीं चल पाता है, परन्तु अपनी बुद्धि में समाजवादी अर्थव्यवस्था को सही समझता है।

877. प्रश्न—सुना जाता है कि उत्तराखंड की गुफाओं में कहीं-कहीं हजार-हजार वर्षों के संत अभी मौजूद हैं। यह क्या सच है?

उत्तर—बिलकुल असत्य है। भारत का सबसे पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद है, उसमें भी सौ वर्ष जीने की प्रार्थना की गयी है "जीवेम शरदः शतम्" (ऋग्वेद 7/66/16)। कोई-कोई सवा सौ वर्ष तक जी जाते हैं। कहीं अपवाद स्वरूप इससे दस-बीस वर्ष और अधिक जीते सुना जाता है, बस।

878. प्रश्न—सद्गुरु कबीर को बावन कसनियां दी गयी हैं, ऐसा लिखा है। क्या यह सत्य है?

उत्तर—बावन कसनियों में अतिशयोक्तियां बहुत हैं। सबका शरीर कच्चे साज का है। वह एक मर्यादा तक चोट झेल सकता है। कबीर साहेब की बड़ाई करने के चक्कर में उनके शरीर को भी अजर-अमर मान लिया गया है जो एक भोलापन है। हां, यह सत्य हो सकता है कि कबीर देव अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण तात्कालिक शासन द्वारा सताये गये हों, परन्तु वे अपनी निर्भीकता, सत्यता, क्षमाशीलता एवं संतगुण से विजयी रहे हों और शासन को उनके सामने झुक जाना पड़ा हो।

879. प्रश्न—क्या कबीर साहेब ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न थे?

उत्तर—ऋद्धि-सिद्धि जो चमत्कारिक ढंग से माना है, वह तो भ्रम है और हजारों वर्षों से झूठा प्रचार है। तप और सद्गुण सम्पन्न पुरुषों के पास ही सफलता रहती है और वही ऋद्धि-सिद्धि है। यह सद्गुरु के पास थी ही। सद्गुरु कबीर अपने निराले विचारों के अकेले थे। परन्तु उन्हीं के समय से उनके लाखों अनुगामी होते गये।

880. प्रश्न—क्या कबीर साहेब योगाभ्यासी थे?

उत्तर—बिलकुल थे। उन्होंने हठयोग को भी साधा था; परन्तु उसे उपयोगी न समझकर छोड़ दिया। वे मनोनिग्रही, इन्द्रियजयी तथा महान योगी थे।

881. प्रश्न—दुख न चाहते हुए दुख क्यों भोगना पड़ता है?

उत्तर—क्योंकि बुरे कर्म कर चुके हैं।

882. प्रश्न—क्या आज के युग में सच बोलकर कोई सुख से जी सकता है?

उत्तर—तुम अपने लिए दूसरे से सत्य का व्यवहार चाहते हो, अत: तुम भी दूसरे के साथ सत्य का व्यवहार करो, यही विश्व का शाश्वत नियम है। इसका उल्लंघन करने वाला दुख पायेगा। आज के युग में भी इसी की आवश्यकता है।

883. प्रश्न—भगवान कहां रहता है? यदि सब जगह रहता है, तो पापकर्म क्यों नहीं रोकता?

उत्तर—तुम्हारी अन्तरात्मा ही भगवान है और वह तुम्हें पाप से रोकती है। अत: अन्तरात्मा की आवाज सुनो तथा उसके अनुसार चलो। बाहर कहीं भगवान नहीं।

884. प्रश्न—क्या मन के बिना 'मैं हूं' कहा जा सकता है और विदेहमुक्ति में 'मैं हूं' इसका भास होगा?

उत्तर—'मैं हूं' कहने के लिए मन चाहिए। विदेहमुक्ति में 'मैं हूं' का भास नहीं होगा। मन के बिना न वचन का उच्चारण सम्भव है और न संकल्प। शुद्ध चेतन मात्र शांत स्वरूप है।

885. प्रश्न—दुर्घटना या दैवी प्रकोप से हजारों की मौत एक साथ हो जाती है। क्या ऐसी अवस्था में सबका प्रारब्ध एक-सा रहता है?

उत्तर—मौत के लिए रहता ही है। कर्म की गति गहन है। मनुष्य को सोचने और करने की बात है अच्छे कर्म। बाकी उलझनें छोड़ दो।

886. प्रश्न—"जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा।" ऐसा कबीर साहेब ने क्यों कहा?

उत्तर—काशी में मरने से मोक्ष होता है इस अन्धविश्वास को दूर करने के लिए साहेब ने ऐसा कहा। वस्तुत: मोक्ष किसी स्थान विशेष की वस्तु नहीं है; किन्तु उसकी साधना है वासना-क्षय करना।

887. प्रश्न—परिवार में कोई दुष्कर्मी है, तो उसके साथ रहना चाहिए या उससे अलग हो जाना चाहिए?

उत्तर—जितना सम्भव हो निभाना चाहिए। उसे सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्यादा विघ्न होने पर अलग होना ही पड़ता है।

888. प्रश्न—गायत्री शक्तिपीठ हरिद्वार के संस्थापक पण्डित श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि मैं पहले तीन जन्मों में कबीर, समर्थ रामदास एवं रामकृष्ण परमहंस था। मैंने तीन बार हिमालय में जाकर सप्त-ऋषियों से मिलकर बातचीत की है। मैं वहां आकाश में उड़कर गया हूं आदि। क्या यह सत्य है?

उत्तर—यह सब पूरा का पूरा काल्पनिक है। आश्चर्य होता है श्री शर्मा जी के साहस पर! इतना तो साफ होता है कि वे सन्त कबीर, समर्थ रामदास एवं रामकृष्ण परमहंस को ज्यादा प्रासंगिक मानते हैं, इसलिए अपने आपको उनसे जोड़ते हैं। परन्तु ऐसा असत्य का प्रचार उनको नहीं करना चाहिए।

889. प्रश्न—पाप और पुण्य दोनों बेड़ियां हैं, एक लोहे की दूसरी सोने की, फिर कल्याण का रास्ता कौन कर्म है?

उत्तर—सार यह है कि पाप कर्म का एकदम त्याग करो; पुण्य कर्म करो, परन्तु उसका अहंकार न करो, अन्यथा वह भी बन्धन बन जायेगा। अहंकार त्यागपूर्वक सत्कर्म ही कल्याण का पथ है।

890. प्रश्न—पूर्वजन्म की याद करने का क्या साधन है?

उत्तर—इसी जीवन की यादें जीव को परेशान करती रहती हैं, पूर्वजन्म की याद करके क्या करोगे। काम की बात करो, व्यर्थ की नहीं। वैसे पूर्वजन्म की याद करने का कोई साधन नहीं है और न उसकी आवश्यकता है।

891. प्रश्न—रामायण में और मानस में क्या अन्तर है?

उत्तर—राम-अयन = राम का रास्ता, अयोध्या से लंका तथा लंका से अयोध्या तक की यात्रा कथा—रामायण है। इस प्रकार समस्त रामकथाएं रामायण हैं। वैसे वाल्मीकि रामकथा को रामायण कहते हैं और गोस्वामी जी कृत रामकथा को रामचरित मानस। दोनों में बड़ा अन्तर है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार श्रीराम एक उत्तम मनुष्य थे, परन्तु रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने उन्हें विश्व का हर्ता-कर्ता बना डाला है।

892. प्रश्न—गुरुमन्त्र एवं दीक्षा क्या है, क्या इसे लेना आवश्यक है?

उत्तर—सद्गुरु द्वारा स्व-स्वरूप और रहनी का यथार्थ बोध होता है यही गुरुदीक्षा है, तथापि औपचारिक ढंग से भी गुरुदीक्षा लेना साधक का आवश्यक कर्तव्य है। इससे गुरु और शिष्य का सम्बन्ध प्रगाढ़ होता है। सच्ची रहनी और दिव्यज्ञान से सम्पन्न सद्गुरु की शरण के बिना व्यक्ति का जीवन आध्यात्मिक ऊंचाई पर नहीं चढ़ता। जैसे विद्वान, डाक्टर, वकील, वैज्ञानिक आदि बनने के लिए तत्सम्बन्धी गुरु की आवश्यकता है, वैसे आत्मकल्याण के लिए सद्गुरु की आवश्यकता है।

893. प्रश्न—समाजवाद क्या है?

उत्तर—राष्ट्र के हर मनुष्य का मौलिक मूल्य बराबर मानना और हर मनुष्य को उसकी अपनी योग्यता के अनुसार हर दिशा में प्रगति करने का अवसर देना—समाजवाद है।

894. प्रश्न—राम का तो वनवास हुआ था, सीता जी अपने पति की सेवा में उनके साथ गयी थीं। लक्ष्मण का क्या स्वार्थ था जो वे राम के साथ वन को गये?

उत्तर—लक्ष्मण अपने स्वार्थ के लिए नहीं गये थे, किन्तु वे निष्काम भाव से अपने भाई तथा भाभी की सेवा में गये थे।

895. प्रश्न—शाकाहारी होने में क्या लाभ है?

उत्तर—मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसका आहार सात्विक होना ही चाहिए। मांस-मछली के आहार में हिंसा है। वह गरिष्ठ तथा तामसी है, रोगमय है, असभ्यतापूर्ण है। अण्डा भी तामसी तथा गंदा भोजन है। अन्न, फल, शाकादि सात्विक, सुपाच्य एवं हितप्रद हैं।

896. प्रश्न—पत्नी तथा परिवार से कैसा व्यवहार करूं?

उत्तर—प्रेम, समता, त्याग, सदाचार एवं विश्वास का।

897. प्रश्न—दुष्ट से कैसा व्यवहार करूं?

उत्तर—मौन एवं उपेक्षा का।

898. प्रश्न—हमें मीठा वचन प्रिय तथा कड़वा बुरा लगता है, ऐसा क्यों? हमें कड़वा भी प्रिय लगना चाहिए।

उत्तर—कड़वा को प्रिय बना देना ही तो मानवता है। इसके लिए अभ्यास करो।

899. प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि कर्म से कुछ नहीं होता, भगवान ही सब कुछ करता है, क्या सच है?

उत्तर—जीव के द्वारा किये गये कर्म ही उसका जीवन बनाते हैं। जीव जैसा करता है वैसा फल पाता है। इसमें भगवान को कोसना युक्तिविरुद्ध है।

900. प्रश्न—पिता कर्ज लेकर मर गये। पीछे पुत्र ने कर्ज को लौटा दिया। पिता को ऋणमुक्ति मिलेगी कि नहीं? कहा जाता है कि पिता के लिए जो कुछ भी किया जाता है सब अपने लिए ही है। क्या समझें?

उत्तर—पिता का लिया हुआ कर्ज पुत्र को लौटाना ही चाहिए। यदि पुत्र समर्थ होकर भी नहीं लौटाता है, तो वह अपराधी है। पिता की भावना यदि कर्ज लौटाने की थी, तो वह ऋणमुक्त ही है; किन्तु यदि पुत्र नहीं लौटाता है तो उसको अपराध लगेगा।

901. प्रश्न—क्या समर्थ व्यक्ति को दोष नहीं लगता?

उत्तर—समर्थ वह है जो दोष के कामों से बचे।

902. प्रश्न—पचास वर्ष गृहस्थी में रहकर यदि व्यक्ति विरक्त होता है, तो क्या वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है?

उत्तर—बिलकुल प्राप्त कर सकता है। उसके भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तीव्र होने चाहिए।

903. प्रश्न—दान देकर उसकी चर्चा करने से क्या उसका महत्त्व घट जाता है?

उत्तर—जितना बन सके, देकर चुप रहो।

904. प्रश्न—सहायता करने की मेरी आदत है। यदि यही सहायता किसी महिला की की जाती है तो लोग शंका करते हैं। क्या करें?

उत्तर—उसके सम्बन्ध से दूर रहने से शंका निर्मूल हो जायेगी। सच्चाई छिपती नहीं।

905. प्रश्न—भक्ति के बाद किस भूमिका पर ठहराव होगा?

उत्तर—ज्ञान पर। स्वरूपस्थिति ही ठहराव की अन्तिम भूमिका है।

906. प्रश्न—सदाचारहीन साधु वेषधारी बड़ा है कि सदाचारी गृहस्थ?

उत्तर—सदाचारी बड़ा है चाहे वह जिस वेष में हो।

907. प्रश्न—मैं अच्छे पथ पर चलता हूं तो भी सताया जाता हूं, क्यों?

उत्तर—तो भी अच्छे पथ पर चलो, यही सुखद है।

908. प्रश्न—'कहहिं कबीर सत सुकृत मिले तो बहुरि न झूले आन', सत-सुकृत क्या है?

उत्तर—सत अपना चेतन स्वरूप है और सुकृत पवित्र रहनी है। यदि व्यक्ति को स्वरूपज्ञान हो जाये और उसकी रहनी पवित्र हो जाये तो वह संसारचक्र में नहीं पड़ेगा।

909. प्रश्न—चित्त की चंचलता को मिटाने का क्या उपाय है?

उत्तर—अनासक्ति। व्यक्ति जितना अनासक्त होगा उतना वह समाधि में प्रवेश कर सकेगा।

910. प्रश्न—आसक्ति का लक्षण क्या है और जीव को बांधने की प्रबल बेड़ी क्या है?

उत्तर—जो मन से न उतरे वही आसक्ति है और यही जीव की बेड़ी है। यदि मन से ज्ञान, भक्ति, वैराग्य न उतरे तो यह मोक्ष का कारण बन जायेगा।

911. प्रश्न—सद्ग्रंथ में चेतन को भी पुरुष कहा जाता है, क्यों?

उत्तर—स्त्री और पुरुष वाले पुरुष का अर्थ दैहिक है; किन्तु जहां चेतन को पुरुष कहा जाता है वहां अर्थ है शरीर रूपी पुर में शयन करने वाला पुरुष चेतन।

912. प्रश्न—क्या सिद्ध पुरुष पुण्यकर्म भी नहीं करते?

उत्तर—वे जो कुछ करते हैं, सब पुण्य ही होता है। किन्तु अनासक्त पुरुष के पुण्यकर्म उसे बन्धन नहीं देते।

913. प्रश्न—तुलसीदास ने जन्मते ही 'राम' नाम उच्चारण किया और उनके 32 दांत थे और तुलसीदास ने जब रामचरित मानस लिखकर काशी विश्वनाथ मन्दिर में रख दिया तो सुबह उस पर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् लिखा मिला। कहा जाता है उसे शिवजी ने लिखा था। यह सब कहां तक सत्य है?

उत्तर—ये सारी बातें असम्भव हैं। जन्मते ही बच्चा न राम कह सकता है, न उसके मुख में बत्तीस दांत हो सकते हैं और न कोई ऐसा शिव है जो मानस ग्रन्थ पर हस्ताक्षर कर दे। धर्म, महात्मा, गुरु, ईश्वर, शास्त्र आदि के नाम पर चाहे जितना झूठ बोला जाये, सब प्रामाणिक हो जाता है।

914. प्रश्न—वैराग्य कब उत्पन्न होता है?

उत्तर—जब सब समय सब कुछ की क्षणभंगुरता का बोध होने लगता है।

915. प्रश्न—अपने आप पर संयम कैसे करें?

उत्तर—संयम का फल शांति है और शांति संसार का सबसे बड़ा सुख है—ऐसा निश्चय होने पर अपने आप संयम होने लगेगा।

916. प्रश्न—यदि लड़का पिता को सम्मान देता है और पिता लड़के से घृणा करता है, तो लड़के को क्या करना चाहिए?

उत्तर—जितना सम्भव हो पिता को सन्तोष देने का प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा पुत्र को अपना स्वतन्त्र रास्ता चुनना पड़ेगा।

917. प्रश्न—क्या अपने आपको जानने के लिए धनवान बनना जरूरी है?

उत्तर—धन जीवन-निर्वाह के लिए जरूरी है और अपने आपको जानने के लिए जिज्ञासा, सत्संग एवं संयम जरूरी है।

918. प्रश्न—मंजिल तक पहुंचने के लिए रास्ता क्या है?

उत्तर—विनम्रतापूर्वक खोज।

919. प्रश्न—जीवनपर्यन्त सत रास्ते पर कैसे चलूं?

उत्तर—सत से ही पूर्ण तृप्ति मिल सकती है, यह लाभ निश्चय होने से।

920. प्रश्न—सत्य ही ईश्वर है, इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर—तात्पर्य साफ है। सत्ता श्रेष्ठ है। सत्ता सत्य है। सत्ता के दो रूप हैं एक जड़ दूसरा चेतन। जड़ न अपने आप को जानता है और न दूसरे को किंतु चेतन स्वयं को भी जानता है और जड़ को भी। इसलिए चेतन परम सत है। वही अपना स्वरूप है। वही ईश्वर है। सबका ज्ञाता, द्रष्टा, मन्ता, व्याख्याता ही सर्वोपरि है।

*　　　　*　　　　*

921. प्रश्न—जब मैं तन, मन तथा वचन सहित गुरु को समर्पित हो गया, तो मेरा क्या रहा?

उत्तर—स्वरूपज्ञान एवं बोध, जो कल्याणकर है।

922. प्रश्न—जीव साकार है या निराकार?

उत्तर—निराकार शून्य को कहते हैं। जीव शून्य नहीं, किन्तु सत्तावान द्रव्य है; इसलिए वह निराकार नहीं। किन्तु वह ऐसा साकार नहीं कि आंखों से दिखे या इन्द्रियगोचर हो। जीव ज्ञानाकार है।

923. प्रश्न—क्या भक्ति मार्ग में भी नारियों से भेद-भाव रखा जाता है?

उत्तर—नर-नारी समान कल्याण के अधिकारी हैं; किन्तु नर और नारी दोनों को संयमित रहने के लिए एक दूसरे के संगदोष से बचना चाहिए। पति-पत्नी की बात दूसरी है, किन्तु यदि उनकी भी अधिक संयम में रहने के लिए दृष्टि है, तो एक दूसरे के संगदोष से बचना पड़ेगा। यह कोई एक दूसरे से घृणा करने की बात नहीं, किन्तु दोनों की प्रतिष्ठा की बात है।

924. प्रश्न—स्वप्न दोष क्यों होता है?

उत्तर—जागृति में विषयचिंतन से, अधिक खाने से, ज्यादा गरिष्ठ और ज्यादा गरम खाने आदि से। अत: भोजन हलका तथा जल्दी पचने वाला सात्विक खाना चाहिए और विषय-चिंतन से बचना चाहिए।

925. प्रश्न—एक दूसरे को दुख क्यों देते हैं?

उत्तर—क्योंकि वे मनुष्य के आकार में पशु हैं। जो हिंसा में प्रेम रखता है वह पशु ही है।

926. प्रश्न—ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर—'ब्रह्म' का अर्थ बड़ा है, 'चर्य' कहते हैं आचरण को। बड़ा आचरण ही ब्रह्मचर्य है। यह कोई सम्प्रदाय विशेष का नहीं, किन्तु सार्वभौमिक भाव है।

927. प्रश्न—कहते हैं कि पांच वर्ष की उम्र तक बच्चों को पाप-पुण्य कर्म नहीं लगते, क्योंकि वह तब तक अंजान रहता है, परन्तु यदि सयाना होकर अंजान हो तो लगेगा कि नहीं?

उत्तर—यदि बच्चे की तरह ही अंजान है तो क्यों लगेगा!

928. प्रश्न—क्या महर्षि वाल्मीकि सचमुच मरा-मरा कहकर सिद्धि लाभ किये थे?

उत्तर—यह काल्पनिक कथा है। इस कथा का वाल्मीकि-रामायण में कोई आधार नहीं है। वाल्मीकि के काल में नामजप-महिमा की सनक नहीं थी। यह पीछे के कवियों की कल्पना है।

929. प्रश्न—ग्रंथों में हनुमान के तीन पिता बताये गये हैं—पवन, शंकर एवं केशरी। विदित है कि किसी व्यक्ति का एक ही पिता होता है। फिर हम किसे हनुमान का पिता मानें?

उत्तर—हनुमान जी के पिता कौन हैं इसका पता न लगने से आपकी कोई हानि नहीं है। हनुमान जी के अच्छे गुणों से प्रेरणा लो, इतना काफी है। हनुमान जी के पिता का ठीक पता न लगने से उनकी कोई तौहीन नहीं है।

930. प्रश्न—क्या साधु-साधुनियों का साथ रहना, बसना, सोना आदि ठीक है?

उत्तर—बहुत गलत है। साधुनियों के मठ एवं समाज में पुरुष नाम का एक लड़का भी नहीं होना चाहिए तथा साधुओं के मठ एवं समाज में नारी नाम की एक छोटी लड़की भी नहीं होना चाहिए। खुले रूप में बहुतों के बीच सत्संग के लिए मिलना ठीक है। बाकी सम्बन्ध का त्याग।

931. प्रश्न—'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े' के अनुसार क्या गुरु से पृथक गोविन्द भी है?

उत्तर—गुरु उपदेष्टा है और गोविन्द उपदेश का विषय है। वह गोविन्द गाय चराने वाला कृष्ण नहीं है, किन्तु अपना आत्म स्वरूप चेतन तत्त्व है। यहां गोविन्द का अभिधा (शब्दिक) अर्थ नहीं है, किन्तु लक्षणा अर्थ है।

932. प्रश्न—क्या अन्तर्जातीय शादी बुरी बात है?

उत्तर—यदि लड़के-लड़की के स्वभाव, गुण, कर्म मिलते हैं, तो कोई बुरी बात नहीं। इससे दहेज-दानव से भी छुटकारा मिल सकता है जो एक सामाजिक अभिशाप है। हां, वह अपने संस्कारों के कारण अटपटी लगती है, और इसकी अपनी समस्याएं भी हैं।

933. प्रश्न—राम, कृष्ण तथा महादेव का जीवन काल क्या है?

उत्तर—महादेवादि त्रिदेव तो काल्पनिक देवता लगते हैं जो तम, रज, सत, गुण के प्रतिनिधि स्वरूप गढ़ लिए गये हैं। श्री कृष्ण के विषय में ऋग्वेद (8/96/13-16) में तथा छांदोग्य उपनिषद् (3/17/6) में साफ चर्चा है। श्री राम के लिए वेद तथा वैदिक साहित्य में कहीं साफ चर्चा नहीं है। ऋग्वेद (10/93/14) में एक जगह पृथु, वेन, दु:सीम के साथ असुर (बलवान) राजा राम की चर्चा है; परन्तु उनके अयोध्याधीश होने के विषय में वहां कोई अन्य लक्षण नहीं दिये गये हैं। शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक वैदेह की खूब चर्चा है, परन्तु सीता और राम का कहीं उल्लेख नहीं है। हां, महाभारत में श्रीकृष्ण की तथा वाल्मीकि रामायण में श्रीराम की कथा है।

श्रीकृष्ण वैदिककाल के हैं। श्रीराम यदि उक्त ऋग्वेद वर्णित हैं तो वे भी वैदिककाल के हैं। वैसे महाभारत तथा रामायण ईसा पूर्व पांच सौ से तीन सौ

वर्ष की रचना है। प्रक्षेप तो उसमें ईसा के बाद बहुत काल तक होते रहे।

934. प्रश्न—प्राकृतिक सौन्दर्य पर मन आकर्षित क्यों होता है? मोह अपने लोगों पर होता है, दूसरों पर क्यों नहीं होता?

उत्तर—प्राकृतिक सौन्दर्य का अपना महत्त्व है। उससे लाभ लो, आकर्षित होने की कोई आवश्यकता नहीं। व्यवहार के लिए अपना और पराया मानना पड़ता है, मोह करना तो अपना भोलापन है। संसार की वस्तुओं और व्यक्तियों का सदुपयोग करो, मोह और वैर नहीं।

935. प्रश्न—सत्य के पथ पर कठिनाइयों का अधिक सामना क्यों करना पड़ता है?

उत्तर—सत्य-पथ में तत्काल कठिनाइयां लगती हैं, फल उसका अमृत है; और असत्य-पथ में तत्काल सरलता लगती है, परन्तु उसका फल दुखपूर्ण है।

936. प्रश्न—जब चन्द्रशेखर आजाद के माता-पिता के ऊपर जीवनयापन की समस्या आ गयी, तो उनके रिश्तेदार आजाद के पास पैसे लेने गये। आजाद ने उन्हें ठुकरा दिया। इस प्रकार मातृ-सेवा के स्थान पर उन्होंने देश-सेवा को महत्त्व क्यों दिया?

उत्तर—परिवार-सेवा से उठकर देश-सेवा का कर्तव्य बड़ा ऊंचा त्याग है।

937. प्रश्न—स्वर्ग और नरक का क्या कहीं अस्तित्व है या काल्पनिक हैं?

उत्तर—मन की मलिनता नरक है और मन की स्वच्छता स्वर्ग है। इसके अलावा न नरक है न स्वर्ग।

938. प्रश्न—क्या हंस नाम का पक्षी होता है जो दूध और पानी अलग कर देता है ?

उत्तर—हंस पक्षी होता है। वह दूध और पानी अलग-अलग कर पाता है कि नहीं, इसका पता नहीं। कवि-जगत में इसका उदाहरण चलता है। सार लेना चाहिए। मनुष्य नीर-क्षीर विवेकी सच्चा हंस है।

939. प्रश्न—आत्मा को अजन्मा और निर्लिप्त क्यों कहते हैं, जबकि उसके बिना न किसी का जन्म होता है न शरीर का संचालन? कर्ता-भोक्ता कौन?

उत्तर—कोई भी मूल वस्तु अजन्मा एवं नित्य होती है। मूल जड़ द्रव्य भी अजन्मा एवं नित्य है। जीव एवं आत्मा मूल है, इसलिए अजन्मा है। देह में वही कर्ता-भोक्ता है; परन्तु स्वरूपतः निर्लिप्त है।

940. प्रश्न—देवी-देवताओं की मनौती से किसी-किसी की कामना सफल हो जाती है, ऐसा क्यों?

उत्तर—यह केवल तुक है। किसी स्त्री को गर्भ होने का समय आ गया और उसी समय उसने मनौती कर दी, तो लगता है मनौती से गर्भ रहा। तुम लोगों को रोज पुत्र, धन, नीरोग्यता, विजय आदि के लिए आशीर्वाद देते रहो, तो कहीं-न-कहीं तुक लगने पर फिट हो जायेगा। अतएव कल्पित देवी-देवताओं की मनौती से कुछ नहीं होता।

941. प्रश्न—क्या बिना गुरु के कल्याण नहीं होता? फिर गौतम बुद्ध तथा सद्गुरु कबीर के गुरु कौन थे?

उत्तर—बिना गुरु के हमें और तुम्हें इतनी भी अक्ल न आती कि उक्त प्रश्न एक कागज पर लिख सकें। आलारकालाम जैसे सांख्यवादी ऋषियों से महात्मा बुद्ध ने बहुत कुछ सीखा था। सद्गुरु कबीर ने भी अपने समय के संतों-गुरुओं से बहुत कुछ सीखा होगा। चाहे जिस तरह, स्वामी रामानन्द उनके गुरु प्रसिद्ध ही हैं।

942. प्रश्न—पाठ्यक्रम में कबीर के पत्नी-बच्चे होना पढ़ाया जाता है। यदि कबीर विरक्त थे तो सरकार को बाध्य करें कि वह अपने पाठ्यक्रम से यह दोष हटाये, अन्यथा आप अपना मन्तव्य गलत समझें।

उत्तर—कबीर साहेब के विषय में गृहस्थ चित्रण पाठ्यक्रम से हटना चाहिए। यह एक बड़े जनसमूह के आन्दोलन का काम है। इसे एक व्यक्ति नहीं कर सकता। पूरा कबीरपंथ कबीर साहेब को विरक्त मानता है। उनके प्रामाणिक ग्रन्थ बीजक से भी उनका रूप विरक्त का बनता है। देखो, कब ऐसा प्रयास हो सके।

रही यह बात कि जो सरकार के पाठ्यक्रम में हो उसके विरुद्ध हम अपना मन्तव्य न रखें, यह कहां का न्याय है। सरकार के पाठ्यक्रम में जितना कूड़ाकबाड़ इकट्ठा है उसे विवेकी कैसे मान सकते हैं। सरकार के पाठ्यक्रम में तो यह भोली धारणा भी है कि मनुष्य बन्दर की सन्तान है। अधिकृत हिन्दू समाज मानता है कि श्रीकृष्ण के हजारों पत्नियां थीं और गर्ग-संहिता के अनुसार खरबों पत्नियां। वे परस्त्रियों के साथ रास करते थे, जबकि वेद, उपनिषद्, महाभारत में जहां श्रीकृष्ण की चर्चा है रास की गंध भी नहीं है। ये लेखक लोग क्या-क्या लिख सकते हैं कहा नहीं जा सकता है।

943. प्रश्न—क्या नल-नील समुद्र पर पत्थर तैराकर पुल बांध दिये? यदि यह काल्पनिक है तो असत्य कथा क्यों लिखी गयी?

उत्तर—पुल वाली कथा एकदम काल्पनिक है। ऐसी कल्पनाएं महाकाव्यों में रहती ही हैं। यदि श्रीराम का लंका में जाकर युद्ध करना सत्य है तो बीच में कहीं थोड़ा पानी की नाभि (डमरू मध्य) रही होगी और वे उसे पत्थर-मिट्टी से पाटकर निकल गये होंगे।

944. प्रश्न—स्वरूपबोध से पूर्व इस जीवन में किये हुए कर्म-बन्धनों से छुटकारा कैसे मिलेगा?

उत्तर—वर्तमान के बोध-वैराग्य एवं अनासक्ति रहनी के बल से।

945. प्रश्न—तीनों तापों से छुटकारा कैसे हो?

उत्तर—अपने चेतन स्वरूप अविनाशी आत्मा को समझकर उसी में स्थित होने से सभी तापों का अन्त है। मैं का मैं में स्थित होना ही परम एवं अनन्त शीतलता है।

946. प्रश्न—आवागमन से छुटकारा मिल जाने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—स्वरूपस्थिति। अपने स्वरूप में स्थित हो जाने पर यह शंका नहीं रह जायेगी।

947. प्रश्न—परोपकार करने में माता-पिता का रुख यदि आड़े आये तो क्या करें?

उत्तर—माता-पिता का रुख पालते हुए यथासम्भव परोपकार करो।

948. प्रश्न—मुझे सन्त समाज में भी साधना का समय पूर्ण रूप से नहीं मिलता, तो क्या एकांतवास में सफल हो सकता हूं?

उत्तर—जो वर्तमान में साधना नहीं कर सकता वह भविष्य में नहीं कर सकता। जो सन्त समाज में रहकर साधना में सफल नहीं होता, वह एकांत में जाकर अधिक गड़बड़ी में पड़ सकता है। सन्त समाज का सेवन करते हुए समय-समय से एकांत सेवन करो।

949. प्रश्न—कोई गुरु धर्म मानकर हिंसा का मार्ग चलाया। पीछे वह उसे गलत समझकर छोड़ दिया; परन्तु उसके अनुयायी उसके पूर्व उपदेश से हिंसा करते रहे, तो क्या उस गुरु का उद्धार हो जायेगा?

उत्तर—जिसने मन, वचन तथा कर्म से हिंसा का त्याग कर दिया है, वह निश्चित ही उद्धार का पात्र है।

950. प्रश्न—बैगा ने बताया कि गुमा हुआ बैल दक्षिण दिशा में खोजो, मिलेगा। सचमुच दक्षिण दिशा में मिला। क्या बैगा (सोखा) इतना ज्ञाता होता है?

उत्तर—ऐसे लोग चालाक होते हैं। वे कुछ अन्दाज लगाकर कहते हैं। कभी-कभी तुक से बात बैठ जाती है। वैसे बैगा का मन्त्र और सिद्धि सब जालसाजी है।

*   *   *

951. प्रश्न—भगवान क्या है तथा उसका प्रकट होना क्या है?

उत्तर—पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य तथा तेज—इन सब का नाम भग है। जो इनसे सम्पन्न हो वह भगवान है। यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतिरणा॥

धनवान, शीलवान, बलवान आदि शब्दों में वान प्रत्यय लगे हैं। वान का अर्थ है धारण करने वाला। जो धन को धारण करे वह धनवान, जो शील को धारण करे वह शीलवान। इसी प्रकार जो भग (उक्त छह ऐश्वर्यों) को धारण करे वह भगवान।

भगवान मनुष्य से अलग नहीं, जो प्रगट होता हो। श्रेष्ठ मनुष्य ही भगवान है।

952. प्रश्न—यदि मन में गलत भावना पैदा हुई, किन्तु उसके अनुसार काम नहीं किया, तो भावना मात्र से क्या बुरा हुआ?

उत्तर—बुरी भावना उठते ही उन्हें दूर करो। यदि वे मन में बनी रहेंगी, तो उस प्रकार काम हो ही जायेंगे।

953. प्रश्न—स्त्रियों को किस दृष्टि से देखना चाहिए?

उत्तर—सभी नारियों को माता, बहन तथा पुत्री के समान देखना चाहिए। यदि इस भाव में अपने आपको रख सके तो सर्वोत्तम है। यदि आदमी किसी एक नारी से विवाह कर ले तो भी उसको छोड़कर अन्य सभी नारियों को माता, बहन तथा पुत्री के समान समझे।

954. प्रश्न—मूर्तिपूजकों में भी सिद्ध पुरुष हुए हैं, फिर मूर्तिपूजा नगण्य कैसे?

उत्तर—सभी मतों में अच्छे पुरुष होते हैं। साधक उपासना का कोई भी आलम्बन बनावे, यदि उसकी भावना तीव्र है तो उसे उससे कुछ न कुछ लाभ होता ही है। परन्तु कोई मूर्ति पूजा करके सिद्ध नहीं हो सकता। सिद्धि का कारण उसके विवेक, वैराग्य, त्याग आदि की तीव्रता है। मूर्तिपूजा तो बचकाने मन का सात्विक खिलौना है।

955. प्रश्न—मुकदमा लड़ने वाला साधु क्या उपदेश दाता सद्गुरु मानने योग्य है?

उत्तर—विवेकवान मठाधीश महात्मा अपनी तरफ से व्यर्थ मुकदमा नहीं करते। कहीं सम्पत्ति के विषय में विवाद होने पर वे समझौता-समाधान कर लेते हैं। यदि मुकदमा आ ही गया, तो आश्रम की व्यवस्था के लिए उन्हें देखना पड़ेगा; क्योंकि मठाधीश साधु की यह ड्यूटी है कि वह आश्रम की सम्पत्ति की सुरक्षा रखे। यदि अन्य आचरण उनके अच्छे हैं तो वे गुरु मानने योग्य हैं। तुम्हें समझना चाहिए कि तुमसे तो वे बड़े ही हैं।

956. प्रश्न—क्या वेश्या का मोक्ष हो सकता है?

उत्तर—बिलकुल हो सकता है, बशर्ते वह वेश्यावृत्ति एवं विषय-वासनाओं का त्यागकर स्वरूपज्ञान एवं विवेक में दृढ़ हो जाये।

957. प्रश्न—पिता जी परम्परागत भजन-पूजन करते हैं, पुत्र पारखी है, तो पिता के विचारों का खण्डन करे या न करे?

उत्तर—पुत्र को चाहिए कि पिता की सेवा करे। उन्हें उनकी अपनी मान्यता के अनुसार चलने दे। उनके विचारों का खण्डन न करे। हां, यदि वे सुनने में प्रेम रखें तो उन्हें आदरपूर्वक निर्णय के वचन सुनाये और उतना ही सुनाये जितना वे खुशी से सुन सकें। शीलपूर्वक निर्णय के द्वारा किसी को सुझाव देने से सफलता हो सकती है।

958. प्रश्न—क्या हनुमान जी पूंछ वाले वानर थे?

उत्तर—वे भारत के आदिवासी मानव थे। उनका गोत्र वानर था। अर्थात उनकी परम्परा में वानर के चिह्न ध्वजा तथा मकानादि पर रखे जाते थे। इसी प्रकार जामवन्त रीछ नहीं, रीछ-चिह्न रखने वाले तथा जटायु गृध-चिह्न रखने वाले मानव थे। इन सबके व्यवहार मानवीय थे फिर ये मानवेतर कैसे हो सकते हैं?

959. प्रश्न—कुछ प्राप्त होने पर लोग कहते हैं कि ईश्वर या गुरु की कृपा से मुझे यह मिला है। यह कहां तक सत्य है?

उत्तर—सब कुछ जीव को अपने कर्म से ही मिलता है। ईश्वर या गुरुकृपा कहना एक विनम्रता या तकियाकलाम है।

960. प्रश्न—पाप से घृणा करो, पापी से नहीं, यह बात समझ में नही आती?

उत्तर—दीवार, पेड़, पत्थर पाप नहीं करते। चेतन मानव से ही पाप हो जाते हैं। वही पुण्य भी करता है। कुछ-न-कुछ प्राय: सबसे गलती हो जाती है। इसलिए किसी को घृणा की दृष्टि से देखकर अपने मन को मलिन मत करो। बस, तुम ध्यान रखो कि तुमसे वैसा पाप न हो जाये और जिससे पाप हो गया हो, बन सके तो उसे रास्ते पर लाओ।

961. प्रश्न—क्या ईसा ईश्वर के पुत्र हैं और वे पृथ्वी के पाप को रोकने के लिए आये थे?

उत्तर—यह सब साम्प्रदायिक प्रचार है और असत्य है। वैसे सारे सन्त मनुष्यों को पाप-मार्ग से हटने के उपदेश देते हैं। ईश्वर के अवतार, पैगम्बर, पुत्र आदि की बात अपने मत के प्रचार का हथकण्डा है। संसार के सभी महापुरुष मानव हैं। मानव से श्रेष्ठ कोई भगवान नहीं।

962. प्रश्न—नाम का क्या महत्त्व है?

उत्तर—व्यवहार की सिद्धि के लिए नाम कल्पित किये जाते हैं। सारे नाम मनुष्य के बनाये हैं। कुछ लोग अपने मन को संयत करने के लिए कोई नाम जपते हैं। यह एक सात्विक मनोरंजन है। सारे नाम की कल्पना करने वाला मनुष्य स्वयं है। उसे चाहिए कि वह अपने आप को पहचाने तथा विवेक द्वारा अपने आपको पवित्र-पथ पर गतिशील करे।

963. प्रश्न—कबीर, राम, कृष्ण सब मर गये, तो किसका नाम जपें?

उत्तर—तुम खुद जीवित हो। अपना चरित्र सुधारो। दिवंगत महापुरुषों की अच्छाइयों से प्रेरणा लो।

964. प्रश्न—स्व-स्वरूप को शुद्ध-बुद्ध कहा जाता है, तो शरीर छूट जाने पर शुद्ध के बाद बुद्ध क्या है?

उत्तर—बुद्ध का अर्थ है ज्ञानी। जीव का स्वभाव ही ज्ञान है। वह विदेहावस्था में साधन के अभाव से भले ही कुछ न जाने, परन्तु उसका स्वरूप जो है वह तो रहेगा ही। आग का स्वभाव है जलाना। उसके पास कोई तृण न होने से वह जलाने की क्रिया से रहित है; परन्तु उसका अपना स्वभाव तो रहेगा ही।

965. प्रश्न—स्वसंवेद्य किसे कहते हैं?

उत्तर—जो स्वयं ही जाना जा सके, इसमें दूसरे का सहयोग काम नहीं करता। स्वसंवेद्य = जिसका ज्ञान केवल स्वयं को हो सके।

966. प्रश्न—गृही और निगुरा में क्या अन्तर है?

उत्तर—वैवाहिक जीवन वाले गृही कहलाते हैं, निगुरा वह है जो गुरुभक्त नहीं है। यही रूढ़ अर्थ है। वैसे निगुरा वह है जो सत्य ज्ञान तथा सत्य आचरण से रहित है।

967. प्रश्न—जीव सदा से बन्धन में है या पहले मुक्त था?

उत्तर—यदि जीव पहले मुक्त होते, तो उनके पास बन्धन के साधन न होने से बन्धन में क्यों पड़ते? अतएव जीव अनादिकाल से बन्धन में हैं, यही सही समाधान लगता है। प्रश्न हो सकता है कि जब वह सदैव से बन्धनों में ही है तब मुक्त होने की आशा कैसे की जाये? उत्तर है कि यह विवेकवान का स्वयं का अनुभव है कि मन का राग ही बन्धन है और उसे छोड़ा जा सकता है। अतएव मुक्ति तो स्वसंवेद्य है, कोई कल्पना नहीं। मन का मोह छोड़ो, बस मुक्त।

968. प्रश्न—मकान का निर्माता जब चाहे मकान में रहे और जब चाहे उससे बाहर चला जाये और पुन: मकान में लौट आये। इस प्रकार जीव शरीर में से स्वतन्त्रतापूर्वक आने-जाने की क्रिया क्यों नहीं कर पाता?

उत्तर—जीव कर्म-वश प्रारब्ध-शरीर से जुड़ा है। शरीर ऐसी रचना है कि रचना के साथ जीव का निवास होता है और निकल जाने के बाद इसमें आना नहीं होता।

969. प्रश्न—कर्मों का लेखा-जोखा कौन रखता है?

उत्तर—मन के अन्दर टिके हुए संस्कारों में ही सारे कर्मों के लेखे-जोखे रहते हैं। उसकी अन्तर्निहित शक्ति से कर्मफल भोग होते हैं।

970. प्रश्न—किस मत से मुक्ति है तथा मुक्ति का क्या प्रमाण है?

उत्तर—अपने आप को ठीक से समझकर सारे बन्धनों से छुड़ा लेने में मुक्ति है। मुक्ति का प्रमाण है मन का सर्वथा अनासक्त हो जाना। यह स्वसंवेद्य है। इसके लिए बाहरी प्रमाण नहीं चलते।

971. प्रश्न—पापी सुखी तथा पुण्यात्मा दुखी देखे जाते हैं, क्यों?

उत्तर—ऐसी बात नहीं कि सब पापी सुखी तथा पुण्यात्मा दुखी देखे जाते हैं। पुण्य का फल सदैव सुख है, किन्तु पुण्यात्मा से भी कुछ आगे-पीछे बुरे कर्म हुए रहते हैं उनके फल में उन्हें दुख मिलेगा ही। इसी प्रकार वर्तमान में

पाप करने वाले से भी पहले जो पुण्यकर्म हुए हैं उनके फल में उसे सुख मिलेगा ही।

972. प्रश्न—माता तथा पत्नी के विवाद में यदि माता को समझावें तो वे नाखुश होती हैं और पत्नी को समझावें तो वह नाखुश होती है। क्या करें?

उत्तर—कितने ही युवक अपनी माता तथा पत्नी के कलह के बीच में पिसते हैं। जब युवक माता को समझता है तब माता युवक को स्त्री-गुलाम होने का आरोप करती है और जब वह पत्नी को समझाता है, तब पत्नी अपने आपको उपेक्षित महसूस करती है। ऐसे संकट की घड़ी में धैर्य से काम लेना चाहिए।

973. प्रश्न—ब्राह्मण कौन है?

उत्तर—जिसने मन, इन्द्रियों एवं वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली हो।

974. प्रश्न—अंहिसा और प्रिय भाषण में श्रेष्ठ कौन है?

उत्तर—दोनों श्रेष्ठ हैं। अहिंसा में सारे सद्‌गुण आ जाते हैं।

975. प्रश्न—क्या मन की इच्छाएं पूरी हो सकती हैं?

उत्तर—इच्छाएं किसी की पूरी नहीं होतीं। विवेक से उनका त्याग करना चाहिए। हां, आवश्यकताएं पूरी होती हैं। उसके लिए श्रम करना चाहिए।

976. प्रश्न—जीव सत्य चैतन्य है, फिर वैराग्य किसके लिए करना चाहिए तथा वैराग्य का पूरा अर्थ क्या है?

उत्तर—वैराग्य का पूरा अर्थ है विषयों की आसक्ति का सर्वथा त्याग करना। वैराग्य इसलिए आवश्यक है जिससे क्षणभंगुर विषयों से मन हटकर सत्य चैतन्य स्वरूप में स्थित हो।

977. प्रश्न—हम कैसे जानें कि हमारा आत्मा पवित्र बन गया?

उत्तर—जब मन में राग-द्वेष एवं दुख न हो, तब समझो आत्मा पवित्र हो गया।

978. प्रश्न—आत्मचिंतन करने के लिए क्या विशेष स्थान एवं वस्तुओं की आवश्यकता है?

उत्तर—एकांत, शुद्ध वातावरण एवं नीरवता सहायक है; किन्तु मुख्य बात है आध्यात्मिक विचारों की प्रौढ़ता।

979. प्रश्न—महात्मा पुरुषों के नाम के पहले 108 तथा 1008 लिखने का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—लोग 108 से ब्रह्म अर्थ लगाते हैं। ब्रह्म में ब, र, ह, म चार अक्षर हैं। क से गिनना शुरू करके अलग-अलग इन चारों अक्षरों तक पहुंचने पर सब 108 अक्षर हो जाते हैं। इसीलिए 108 ब्रह्म के अर्थ में लेते हैं। ब्रह्म का अर्थ है श्रेष्ठ। बृहत्वात् ब्रह्म। 108 में एक शून्य और लगाकर 1008 कर देते हैं। यह सब केवल महिमा है। आदर के लिए उनका प्रयोग करते हैं।

*   *   *

980. प्रश्न—हिन्दू धर्म के ग्रन्थों में 33 कोटि देवता का वर्णन कहां पर है?

उत्तर—बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, देवलोक, चन्द्रमा और नक्षत्रगण—ये आठ वसु हैं। दस इन्द्रियां तथा मन ये ग्यारह रुद्र हैं। बारहों महीने आदित्य हैं। गरजने वाला बादल इन्द्र है। यज्ञ प्रजापति है। ये तैंतीस देवता हैं।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार तैंतीस देवता इस प्रकार हैं—

आठ वसु—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अग्नि, वायु, प्रत्यूष तथा प्रभास। ग्यारह रुद्र—हर, बहुरूप, अंबक, अपराजित, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, वृषाकपि, शंभु, शर्व और कपाली। बारह आदित्य—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, क्रतु, अंशु, भग, त्वष्टा तथा विष्णु। इसके साथ इन्द्र और प्रजापति। इनमें एक-एक देवता के पीछे निन्नानबे लाख, निन्नानबे हजार, नौ सौ निन्नानबे की संख्या अधिक जोड़कर लोगों ने तैंतीस करोड़ देवता की कल्पना कर रखी है। महाभारत आदि पर्व के अध्याय एक के 41वें श्लोक के अनुसार देवता तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस हैं। परन्तु यह सब काल्पनिक है।

981. प्रश्न—हम किसे विश्वसनीय मानें?

उत्तर—जिसे दीर्घकाल के व्यवहार में निष्कपट पावें।

982. प्रश्न—लोग निर्दोष व्यक्ति को भी शंका की दृष्टि से क्यों देखते हैं?

उत्तर—न समझकर। दूसरे को समझने के लिए सहृदयता की बड़ी आवश्यकता है।

983. प्रश्न—मैं गृहस्थ हूं। गृहस्थी में नाना द्वन्द्व आते ही रहते हैं। कैसे शांति प्राप्त करूं?

उत्तर—सब कुछ नाशवान है। यहां किस चीज के लिए हर्ष-शोक किये जायें। ज्ञान-भक्तिपूर्वक हंसी-खुशी से जीवन जीयो। सद्ग्रन्थ खूब पढ़ो, संत-भक्तों के बीच में बैठकर परमार्थ चर्चा सुनो तथा करो। सांसारिक हानि-लाभ को ज्यादा महत्त्व न दो। सब कुछ को नश्वर समझने वाला हर्ष-शोक नहीं करता।

984. प्रश्न—बाल-बच्चे हैं, गुजर की चीजें हैं, परन्तु मन शांत नहीं है, क्या करूं? कहां भाग जाऊं?

उत्तर—साधना सम्पन्न सन्तों के पास कुछ दिन रहा करो, सद्ग्रन्थ खूब पढ़ा करो और प्राप्त ज्ञान का मन में अभ्यास किया करो।

985. प्रश्न—यदि मन नहीं रुकता है तो इसका कारण संकल्प-शक्ति की कमी है या प्रारब्ध?

उत्तर—साधना की असफलता में प्रारब्ध को कभी कारण नहीं मानना चाहिए, किन्तु साधक की अपनी संकल्पशक्ति की कमी, त्याग का अभाव, श्रम की शिथिलता एवं मोह ही कारण हैं।

986. प्रश्न—चरवाहे पशुओं को, शिक्षक छात्रों को तथा माता-पिता बच्चों को दण्ड देते या मारते हैं। तो क्या ये सब हिंसा में गिने जायेंगे?

उत्तर—मारना तो पशु को भी ज्यादा नहीं चाहिए जिससे वे पीड़ित हों, केवल डरा-धमका कर उनसे काम लेना चाहिए। फिर बच्चों एवं परिवार वालों को मारना तो पूरी पशुता है। उन्हें स्नेह से या थोड़ा डराकर उन पर अनुशासन होना चाहिए।

987. प्रश्न—क्या सचमुच जादू-मन्तर से किसी की हत्या कर दी जा सकती है?

उत्तर—बिलकुल नहीं। जादू-मन्तर बिलकुल झूठे हैं। जादूगर कहे जाने वाले लोग हाथ की सफाई, बात की सफाई, दवाई, वस्तु की बनावट आदि से अर्थात जालसाजी से अपने चमत्कार दिखाते हैं जिन्हें समझ लेने वाले को वह सब केवल खिलवाड़ लगता है।

988. प्रश्न—मांसाहारी पति के लिए शाकाहारी पत्नी यदि मांस पकाती है तो क्या ठीक करती है?

उत्तर—गलत करती है। न पति को उससे मांस पकवाना चाहिए और न पत्नी को पकाना चाहिए।

989. प्रश्न—मानस-जप तथा मानस-ध्यान क्या है? इसका उपयोग क्या है?

उत्तर—किसी नाम या मन्त्र का मन में जप करना मानस-जप है। इसमें ओष्ठ से कुछ कहा नहीं जाता है, केवल मन ही मन में जपा जाता है। इसी प्रकार मानस-ध्यान है। मन में किसी महापुरुष का चित्र एवं कोई ज्योति आदि वस्तु का आलम्बन कर उसमें मन को एकाग्र करना मानस-ध्यान है। पहले मन को एकाग्र करने के लिए यह सब साधन ठीक है। जिसको जिस मन्त्र एवं नाम में श्रद्धा हो वह उसका जप कर सकता है तथा जिसको जिस महापुरुष या वस्तु में श्रद्धा हो वह उसको ध्यान का आलम्बन बना सकता है।

990. प्रश्न—ब्रह्मचर्य रखकर या गृहस्थी में रहकर तथा अपने कर्तव्य को सुधारकर काम-क्रोधादि पर विजय करना जरूरी है कि ध्यान-पूजा?

उत्तर—मुख्य बात कामादि विकारों से मुक्त होकर अपने आप में शांत होना ही है। इसी के लिए अधिकार-भेद से प्रथम ध्यान-पूजा भी ठीक है। तत्त्वत: ध्यान तो आखिरी मंजिल है। सारे संकल्पों का त्याग हो जाना ही ध्यान है और यही समाधि है।

991. प्रश्न—क्या गृहस्थ जीवन जीना भी इन्द्रिय-मन की दासता है?

उत्तर—किसी भी व्यक्ति को यह स्वयं ही अनुभव होता है कि मैं इन्द्रिय-मन का दास हूं या स्वामी। स्वयं परखे और देखे। इसका मानदण्ड गृहस्थ-विरक्त वेष नहीं है।

992. प्रश्न—उपासना क्या है?

उत्तर—किसी पवित्रात्मा पुरुष की संगत, उसके सद्‌गुण एवं ज्ञान का प्रभाव लेकर अपने आप का शोधन, फिर निज चेतन स्वरूप में स्थिति—ये सब उपासना के लक्षण हैं।

993. प्रश्न—भावना क्या है, यह कब तक ज्यादा रहती है?

उत्तर—मन की रुचि को भावना कहते हैं। किशोरावस्था एवं तरुणाई में यह ज्यादा रहती है। उम्र बढ़ने के साथ यह घटती जाती है। बुरी भावना का होना गलत है, अच्छी भावना होना ठीक है।

994. प्रश्न—क्या अविवाहित रहने पर स्वर्ग नहीं मिलता?

उत्तर—स्वर्ग है मन की प्रसन्नता और यह होती है मन के निर्मल होने पर। स्वर्ग से विवाह-अविवाह से मतलब नहीं है। जिसका मन निर्मल है, वह स्वर्ग-सुख भोग रहा है।

995. प्रश्न—एक भक्त-डॉक्टर मांसाहारी रोगी की चिकित्सा करते समय उसे मांसाहार करने की सलाह दे या शाकाहर की?

उत्तर—डॉक्टर मजबूर नहीं है कि वह किसी मांसाहारी रोगी को मांसाहार करने की राय दे।

996. प्रश्न—जीव अजर-अमर है। वह सारी वासनाओं को छोड़कर मुक्त हो जाता है तो कहां रहता है?

उत्तर—जीव चेतन है। चेतन जड़ से नहीं बन सकता, अत: चेतन जड़ से अलग है। चेतन द्रष्टा है और जड़ दृश्य है। वासनाएं ही जीव को दुख देती हैं। वासनाओं का त्याग ही मोक्ष है और वह जीवनकाल में ही चरितार्थ होता है। मोक्ष का पूरा काम तो जीवनकाल में ही हो जाता है। अत: शरीर छूटने के बाद की चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं। जो वस्तु सत्य है, वह मिटती नहीं। जीव भी सत है वह मिट कैसे जायेगा। कुछ लोग कहते हैं जीव ब्रह्म में लीन हो जायेगा; परन्तु जीव से अलग ब्रह्म क्या वस्तु है जो उसमें लीन हो जायेगा। विकारी वस्तु लीन होती है। जैसे विकारी जलबूंदें विकारी समुद्र में लीन होती हैं। जीव निर्विकार है वह किसी में लीन कैसे हो जायेगा। जीव चेतन है और वह मैं ही हूं, यह स्वयं प्रत्यक्ष एवं अपरोक्ष है, किन्तु निजस्वरूप चेतन से भिन्न ब्रह्म की कोई अनुभूति नहीं होती। अत: जीवनकाल में सारी वासनाएं छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होना मोक्ष है। मरने के बाद की चिन्ता बेकार है। कबीर देव ने कहा है—

'जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै।'

(बीजक शब्द, 14)

997. प्रश्न—"पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया, परख भया टकसार।" (बीजक, साखी 57) इसमें जीव की पत्थर से तुलना क्यों की गयी है? जीव तो जाग्रत रूप है।

उत्तर—'पारस रूपी जीव है' का मतलब यह नहीं है कि जीव पत्थर रूप है। पारस का तो केवल उदाहरण है। यहां का अभिप्राय है कि कविकल्पना के अनुसार जैसे पारस से लोहा छू जाने पर वह सोना हो जाता है वैसे चेतन जीव के सम्पर्क में जड़ देह चेतनवत भासने लगती है। शरीर जड़ है, परन्तु जीव के संसर्ग से वह चेतनवत लगता है। दूसरी पंक्ति में है "पारस ते पारस भया, परख भया टकसार" उदाहरण में पारस से लोहा छू जाने पर केवल सोना होता है, पारस नहीं होता। किन्तु यहां पारस से पारस हो जाता है। अर्थात सद्गुरु के संसर्ग से जीव गुरुत्व पा जाता है। अर्थात जीव का स्वभाव-सिद्ध गुरुत्व

उद्घाटित हो जाता है। 'परख भया टकसार' परख अर्थात ज्ञान ही टकसार है। प्रमाण सच्चे ज्ञान का ही होता है।

998. प्रश्न—'जिव मति मारो बापुरा' सद्गुरु कहते हैं, परन्तु देह के व्यवहार में कुछ जीव मर जाते हैं। अमनिया कर जीवों को अन्न से निकाल दिया जाता है, वे भी मर जाते हैं, तो जीव-दया पालन कहां हुआ?

उत्तर—शक्ति चले तक किसी जीव को न मारना चाहिए। अब शरीर-निर्वाह की विवशता में कोई भी जीव मर जाता है तो उसमें क्या करोगे? केवल अमनिया ही नहीं, किसान हल चलाता है, वह भी जीव मारने के लिए नहीं, किन्तु अन्न पैदा करने के लिए। यदि जीव मर जाते हैं तो वह क्या करेगा! अत: शक्ति चले तक जीव-हत्या करने से बचो। बस इतना ही चारा है। श्री रामरहस साहेब ने पंचग्रंथी में कहा है—"मानुष भरसक चूकै नाहीं। आखिर होय दोष नहिं ताही।" (मानुष विचार)

999. प्रश्न—बानी जाल का खण्डन करते हैं, परन्तु ज्ञान की बातें भी तो बानी हैं।

उत्तर—एक कांटा चुभकर दर्द करता है और दूसरे कांटे से उसे निकाल दिया जाता है जो पीड़ा को दूर करने वाला बन जाता है। अत: कल्याणकारी शब्द ग्रहण करने योग्य हैं। सद्गुरु ने कहा है "शब्द-शब्द बहु अंतरे" तथा "जो चाहो निज तत्त्व को, तो शब्दहि लेहु परख।"

1000. प्रश्न—व्यावहारिक जीवन में माया से कैसे अलग रहा जाये?

उत्तर—जैसे जल में कमल रहता है। सब समय जो अपने मन में विचार रखता है उसके मन का मोह मिटता रहता है। प्राणी और पदार्थ माया नहीं हैं, किन्तु मन का मोह माया है, जो प्राणी-पदार्थों में लग जाता है। अपने आप को सब समय पथिक समझो। यहां अपना एक तृण भी नहीं है, फिर किसका मोह किया जाये।

1001. प्रश्न—अचल जीव का गमनागमन कैसे?

उत्तर—जैसे आदमी नाव, जहाज, ट्रेन, वायुयान आदि वाहनों में बैठकर बिना चले चला जाता है, वैसे स्वभाव से निष्क्रिय चेतन वासना-वश गमनागमन करता है।

1002. प्रश्न—मुक्त जीव वासनाहीन होता है, तो वह प्रारब्धांत में देह से कैसे निकलता है?

उत्तर—तुम्हारा काम है वासना त्यागकर शांत होना। प्रारब्ध अपने आप समाप्त होगा। लोग करने योग्य काम—वासना-त्याग तो नहीं करते अपने दिमाग को व्यर्थ की बातों में लगाते हैं। वासना त्यागो, देह छूटने की चिन्ता न करो। वह तो सबकी छूटती ही है।

1003. प्रश्न—मनुष्य-शरीर ज्ञान-खानि कैसे कहा जाये जब वह हिंसा में लिप्त है?

उत्तर—सब मनुष्य हिंसा में नहीं लिप्त हैं। मनुष्य शरीर ज्ञान-खानि तो है ही। उसका कोई दुरुपयोग करता है तो उसकी गलती है। जो उसका सदुपयोग करता है वह अपना कल्याण कर लेता है।

1004. प्रश्न—सन्तोष करने से प्रगति नहीं होती और प्रगति में लगने पर सन्तोष नहीं आता, क्या करूं?

उत्तर—चाहे जितनी प्रगति कर लो, सन्तोष के बिना सुख नहीं मिलेगा। सन्तोष करने का अर्थ निकम्मा बन जाना नहीं है। जन-सेवा के लिए सदैव श्रमशील रहो, परन्तु इन्द्रिय-भोग और सम्मान की इच्छा त्यागकर सदैव सन्तोष में विराजो।

* * *

1005. प्रश्न—क्षर, अक्षर तथा नि:अक्षर क्या है?

उत्तर—क्षर कहते हैं जिसका क्षरण हो, नाश हो और अक्षर कहते हैं जिसका नाश न हो। जड़ प्रकृति से बनी वस्तुएं परिवर्तनशील होने से क्षर हैं और जीव अक्षर है; क्योंकि वह अविनाशी है। कुछ लोगों की कल्पना है कि क्षर-जड़ प्रकृति एवं अक्षर-अविनाशी जीव के ऊपर एक ईश्वर है जिसे नि:अक्षर कहना चाहिए। परन्तु विवेक कर देखा जाये तो लक्षण दो ही हैं एक क्षर तथा दूसरा अक्षर। कोई सत्ता या तो परिवर्तनशील होगी या अपरिवर्तनशील। इसलिए क्षर तथा अक्षर ही उपयुक्त लगते हैं। नि:अक्षर एक कल्पना है।

1006. प्रश्न—श्री निर्मल साहेब ने 30वें भजन में कहा है "हंसा चलो अपने देश—माया ब्रह्म जीव ईश्वर की जहां नहीं प्रवेश।" तो वह कौन-सा देश है जिसे यहां बताया गया है?

उत्तर—इसी भजन की अन्तिम पंक्ति में इसे बता दिया गया है "निर्मलदास चित्तवृत्ति निरोधक आप रहेगा शेष।" चित्त की वृत्तियों का पूर्ण निरोध करने

वाला चेतन स्वयं शेष रह जायेगा। हंस चेतन है। वह मन के व्यापार में भटकता है। जहां तक मन का पसारा है वह परदेश है। इस भजन में श्री निर्मल साहेब ने कहा है कि हे हंस, हे चेतन! मन का देश छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होओ। वहीं क्लेशों का अन्त है। दार्शनिक लोग माया, ब्रह्म, जीव तथा ईश्वर की नाना परिभाषाएं करते हैं। माया तो जड़ है ही, ईश्वर और ब्रह्म की भी आत्मस्वरूप से अलग कल्पना करते हैं जो एक मन की ही अवधारणा होती है। जीव की अंश, प्रतिबिम्ब एवं नाना परिभाषाएं करते हैं। श्री निर्मल साहेब कहते हैं कि ये सारी परिभाषाएं मन की कल्पनाएं हैं। जब सारे संकल्प त्याग दिये जाते हैं तब चेतन की स्वसत्ता ही शेष रह जाती है वही अपना देश है, अपनी स्थिति है, अपना स्वरूप है। वहां अन्य किसी परिभाषा की आवश्यकता नहीं, प्रवेश नहीं।

1007. प्रश्न—मूल नक्षत्र में पैदा हुए बच्चे क्या अशुभ हैं?

उत्तर—कदापि नहीं, इस अशुभ मान्यता के आधार में पुरोहित वर्ग पुजाते-खाते हैं। नवजात शिशु, जिसने अभी कोई कर्म नहीं किया है उसे अशुभ बताना अपराध है। इस भटकाव में कभी नहीं पड़ना चाहिए।

1008. प्रश्न—रामायण रहस्य में लिखा है कि रामायण ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व से बनना शुरू हुई, यह भी लिखा है कि राम वन में वाल्मीकि-आश्रम में गये थे, और यह भी लिखा है कि राम बुद्ध से एक हजार वर्ष पहले हुए होंगे, यह परस्पर विरुद्ध वचन क्यों?

उत्तर—रामायण रहस्य के प्रथम अध्याय के पांचवें संदर्भ में बताया गया है कि आदि कवि वाल्मीकि के अलावा भी तीन वाल्मीकि हुए हैं जैसे तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में वर्णित वैयाकरण वाल्मीकि, महाभारत उद्योगपर्व में वर्णित सुपर्ण वाल्मीकि तथा सभापर्व में वर्णित महर्षि वाल्मीकि। हो सकता है कि श्रीराम के समय में कोई वाल्मीकि रहे हों, जिनके आश्रम में राम गये हों। किन्तु रामायण के आरम्भिक लेखक वाल्मीकि कोई भिन्न रहे हों जो राम के बाद हुए हैं।

रामायण के दूसरे अध्याय के दूसरे संदर्भ में यह बताया गया है कि वाल्मीकि ने एक महाकाव्य लिखने के लिए नारद से उसका नायक पूछा। नारद ने श्रीराम को बताया और उनका पूरा वननिर्वासन से लेकर लंका से लौटकर राजगद्दी तक का विवरण दिया। यह सब बालकांड के प्रथम सर्ग में है। जब पीछे बालकांड तथा उत्तरकांड की सामग्री लिखी गयी तब बालकांड के तीसरे सर्ग में रामजन्म, विवाह तथा सीतानिर्वासन आदि की बातें नारद ने वाल्मीकि को बतायी। मतलब यह है कि नारद के बताने के पूर्व वाल्मीकि श्रीराम के

विषय में कुछ नहीं जानते थे। इसलिए श्रीराम के काल में वाल्मीकि रहे होंगे तो कोई अन्य वाल्मीकि रहे होंगे। एक तरफ तो बालकांड के शुरू में ही लिखा है कि नारद के बताने पर वाल्मीकि ने राम को जाना और दूसरी तरफ रामायण के बालकांड तथा उत्तरकांड में रामायण लेखक वाल्मीकि राम के साथ जुड़े हैं। वस्तुत: रामायण अनेक परस्पर विरोधी बातों को समेटकर चलती है। लगता है कि रामायण लेखकों ने किसी प्रसिद्ध वाल्मीकि का नाम रामायण-रचयिता के रूप में जोड़कर उसकी गुरुता बनाने की चेष्टा की है।

1009. प्रश्न—आप द्वारा हुआ गीता का विवेचन बड़ा अच्छा लगा। परन्तु यदि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अध्यात्म तथा राग-द्वेष से रहित होने के लिए साधना का उपदेश दिया था तो महाभारत युद्ध क्यों हुआ?

उत्तर—गीता जिसने भी लिखी है उसने आध्यात्मिक उपदेश ही दिया है, परन्तु उसे महाभारत में रखने के कारण उसमें युद्ध का पुट दिया गया है, अन्यथा अप्रासंगिक होता। गीता लिखने के बाद युद्ध हुआ है ऐसी बात नहीं है। युद्ध तो हो चुका होगा। गीता पीछे लिखी गयी।

1010. प्रश्न—राजा जनक ने सीता के स्वयंवर में अन्य राजाओं को बुलाया था, परन्तु अयोध्यानरेश को क्यों नहीं बुलाया था?

उत्तर—वाल्मीकीय रामायण (1/66) के अनुसार जनक ने यह प्रण कर रखा था कि जो व्यक्ति शिव-धनुष को चढ़ा देगा उसे ही सीता दी जायेगी। सीता के बड़ी हो जाने पर कई राजाओं ने उन्हें मांगा। जनक ने अपना प्रण बताया। राजा लोग उस धनुष को नहीं चढ़ा सके, इसलिए उन्हें सीता नहीं मिलीं। श्रीराम ने चढ़ा दिया, उन्हें मिल गयीं। जनक ने न अन्य राजाओं को बुलाया था और न श्रीराम को बुलाया था। उनकी तो केवल घोषणा थी कि सीता 'वीर्यशुल्का' है, अर्थात पराक्रम प्रकट करने वाले को मिलने वाली है। वाल्मीकीय रामायण में जनक ने किसी को भी धनुष चढ़ाने के लिए निमन्त्रित नहीं किया है, किन्तु केवल घोषणा की है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार जब श्रीराम जनकपुर में धनुष के पास बाण चढ़ाने पहुंचते हैं तब वहां कोई अन्य राजा नहीं था। केवल जनक तथा उनके कार्यकर्ता थे। अत: जनक ने जब अन्य किसी राजा को निमंत्रित नहीं किया तो दशरथ को क्यों निमन्त्रित करते!

1011. प्रश्न—जहर से जहर दूर होने के समान क्या द्वेष से द्वेष नहीं दूर होता?

उत्तर—जहर से जहर भले दूर हो जाये, परन्तु द्वेष से द्वेष नहीं दूर होता है। द्वेष तो प्रेम से ही दूर होता है।

1012. प्रश्न—दान करने या चोरी करने का मन है, परन्तु इसी बीच शरीर छूट गया और उसने इच्छानुसार कर्म नहीं कर पाया तो क्या उसे उसके फल मिलेंगे?

उत्तर—उसके मन में शुभ या अशुभ के संस्कार हैं। वे संस्कार उसकी अच्छी-बुरी दशा होने में कारण बनेंगे। यदि वह उनके अनुसार कर्म कर लेता तो वे ज्यादा बलवान हो जाते। इच्छा-मात्र से हलके फल होते हैं, कर्म से गहरे।

1013. प्रश्न—मन अशांत रहता है, शांति कैसे मिले?

उत्तर—मनुष्य का मन क्षणभंगुर पदार्थों में राग करता है। इसलिए उनके बिछुड़ने एवं नाश होने के भय से पीड़ित रहता है तथा मन और इन्द्रियों के पांचों विषयों में भोग की आदत बनाकर अशांत रहता है। अतएव संसार का राग त्याग देने पर ही शांति मिल सकती है।

1014. प्रश्न—राजयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—कपाली, कुंजली आदि हठयोग की क्रिया से हटकर केवल विचारों द्वारा मन को स्ववश करना तथा अन्ततः विचारों-संकल्पों को छोड़कर शांत हो जाना।

1015. प्रश्न—क्या ज्योतिष द्वारा भविष्य की बातें बतायी जा सकती हैं?

उत्तर—गणित ज्योतिष ठीक है, किन्तु फलित ज्योतिष बकवास है। बारह राशियों में संसार के सारे मनुष्यों के भविष्य बताये जाते हैं जो एक अटकलबाजी है। किसी-किसी बात का तुक बैठ जाता है, उसी में लोग तीरंदाज बन जाते हैं। समझदारी यह है कि अपने भविष्य की बात जानने की कभी चेष्टा ही न करे, अन्यथा मिथ्या आशा में लटका हुआ धन तथा समय बरबाद किया जायेगा।

1016. प्रश्न—सांसारिक वस्तुओं की अत्यधिक चाह और उनसे मोह हो और हम अपना समय भजन, पूजन तथा पाठ में भी लगायें तो क्या हमें मोक्ष मिल सकता है?

उत्तर—भजन, पूजन, पाठ करना तो ठीक है, परन्तु सांसारिक वस्तुओं में अत्यधिक क्या, कुछ भी राग तथा इच्छा करने में मोक्ष नहीं मिल सकता। मोक्ष है मन की पूर्ण शांति और यह राग तथा इच्छा के कटने पर ही होता है।

1017. प्रश्न—"मोहि कहत भयल युग चार।" बीजक में चार बार आया है। कबीर साहेब के इस कथन का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—मेरे विचार से यहां 'मोहि' का अर्थ केवल कबीर साहेब के व्यक्तित्व में नहीं है किन्तु गुरु-परम्परा में है। कबीर साहेब कहते हैं कि मेरे जैसे लोग चारों युगों से अर्थात सब समय से सत्यासत्य का निर्णय कर रहे हैं।

1018. प्रश्न—बीजक में 52 बार वेद शब्द का प्रयोग हुआ है। बीजक में वेद शब्द खण्डनपरक है या मंडनपरक?

उत्तर—दोनों प्रकार है। जहां पर वेदों की दोहाई देकर गलत बात मनवाने की बात है वहां कबीर साहेब वेदों का खंडन कर देते हैं। वैसे कबीर साहेब वेदों का आदर करते हैं। आदर के सन्दर्भ में वचन हैं—"है कोई गुरु ज्ञानी जगत उलटि वेद बूझै।" "जाके मुनिवर तप करे, वेद थके गुण गाय। सोई देउँ सिखापना, कोई नहीं पतियाय।" "अन्ध सो दर्पण वेद पुराना, दर्बी कहा महारस जाना।" इत्यादि।

1019. प्रश्न—कथा, व्यथा, प्रवचन, महात्मा तथा परमात्मा क्या है?

उत्तर—किसी घटित घटना या काल्पनिक कहानी को कथा कहते हैं। पीड़ा, ज्यादातर मानसिक पीड़ा को व्यथा कहते हैं। भाषण देने को प्रवचन तथा सद्गुणसम्पन्न को महात्मा कहते हैं और पूर्ण कृतार्थ, जीवन्मुक्त आत्मा को परमात्मा कहते हैं।

1020. प्रश्न—वृक्ष-वनस्पति जड़ हैं। उनमें न ज्ञान है और न विवेक। परन्तु उनके गुण अटल कैसे रहते हैं। गुलाब में चमेली की गंध नहीं हो सकती और बेला में केवड़ा की?

उत्तर—जिसमें ज्ञान होता है वह देहधारी जीव ही अपने गुण बदल सकता है, जैसे राग से वैराग्य या हिंसा से दया आदि; परन्तु जो वृक्ष-वनस्पति आदि जड़ हैं वे अपने गुण नहीं बदल सकते। उनके गुण स्वाभाविक हैं।

1021. प्रश्न—जब सबके आत्मा समान हैं, तब सबकी बुद्धि में अन्तर क्यों?

उत्तर—सबकी बुद्धि पर उनके अनेक जन्मों के भिन्न-भिन्न संस्कार पड़े हैं, भिन्न-भिन्न वातावरण, देश, भाषा, मान्यता, परम्परा की उन पर छाप हैं, इसलिए एक समान आत्मा होने पर भी बुद्धि में अन्तर है।

1022. प्रश्न—मेरे दो लड़कियां हैं, मजदूरी करके खाता हूं। परिवार बढ़ाना नहीं चाहता। परन्तु सोचता हूं कि लड़कियां तो अपने-अपने घर चली जायेंगी। एक लड़का हो जाता तो बुढ़ापा में सेवा करता। मैं दुविधा में हूं। क्या करूं?

उत्तर—आगे पुन: लड़का ही होगा यह निश्चय नहीं है। लड़का होकर उससे तुम्हें सेवा मिलेगी यह भी निश्चय नहीं है। दूसरे का पुत्र गोद लेना दुख खरीदना है। अत: मेरी राय है कि लड़कियों का समयानुसार विवाह कर उन्हें उनके घर भेज दो और स्वयं दोनों प्राणी स्वतन्त्र होकर भक्ति, साधना तथा संयम से सुखद जीवन बिताओ। बुढ़ापा में तुम लोगों की सेवा हो जायेगी, उसके लिए मानव का विराट स्वरूप सहयोगी बनेगा। सम्भावित असुरक्षा की कल्पना से अपने आपको दुखी मत बनाओ। विश्वास करो कि यदि विवेक से जीवन बिताओगे तो अन्त भी सुखद होगा।

1023. प्रश्न—"भोग में योग जगावै" का अर्थ क्या है?

उत्तर—मनुष्य के मन में भोग की वासना है। साधक को चाहिए कि उस मन में योग जाग्रत करे। इस पंक्ति का अर्थ कोई यह न लगावे कि काम-भोग करते-करते योग भी सध जायेगा। यह ठीक है कि भोगी आदमी भी यथाशक्ति योग-साधना करे, परन्तु पूर्ण योग तो तभी सधेगा जब भोगों का पूर्ण त्याग हो।

* * *

1024. प्रश्न—आध्यात्मिक ज्ञान क्या है?

उत्तर—आत्मा सम्बन्धी ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान है। यह शरीर भौतिक है। यह बाहरी खोल है। मनुष्य का सार स्वरूप चेतन है जो भीतर है। भीतर की शांति से ही जीवन में सच्चा सुख हो सकता है।

1025. प्रश्न—मुमुक्षु साधक या जीवन्मुक्ति रहनी में विचरने वाले साधक के लिए भोजन में शाकाहार या मांसाहार लेने में क्या हानि-लाभ है?

उत्तर—मांसाहार बर्बर, पाशविक, घृणित तथा तामसी भोजन है, सच्चा भोजन तो सुपाच्य तथा सात्विक ही है। जो मांस दूसरे की हत्या करके प्राप्त होता है तथा घृणित और गरिष्ठ है वह साधक का भोजन कैसे हो सकता है?

1026. प्रश्न—"बहुरि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम। प्रजा सहित रघुवंश मणि, किमि गवने निज धाम।" तुलसीकृत रामायण में यह पार्वती का प्रश्न है। इसका उत्तर भगवान शंकर ने क्यों नहीं दिया?

उत्तर—प्राचीनतम रामायण वाल्मीकीय है। उसमें शिव-पार्वती-संवाद, भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद तथा काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद का कहीं चिह्न नहीं है। यह तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने मन की बातें कहलवाने के लिए ये सारे संवाद जोड़ रखे हैं। गोस्वामी जी का जो मन था वही-वही बात इन

संवादों में कहलवाया गया है। श्रीराम का शरीरांत किस प्रकार हुआ इसका उत्तर देना गोस्वामी जी को पसन्द नहीं रहा इसलिए उन्होंने शंकर से इसका उत्तर नहीं दिलवाया।

वस्तुतः वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि श्रीराम अपने भाइयों तथा अयोध्यावासियों के सहित सरयू नदी में डूबकर अपने शरीर का अन्त किये।

1027. प्रश्न—सत्संगी होने पर भी मरते समय लोग परिवार के प्रति मोह में ज्यादा क्यों फंस जाते हैं?

उत्तर—सत्संग का पूरा प्रभाव जब ग्रहण किया जायेगा तब मोह मिट जायेगा। मोह इसलिए होता है कि सत्संग का पूरा प्रभाव नहीं ग्रहण किया गया है।

1028. प्रश्न—वर-वधू की शादी में जीवन में एक दूसरे को न छोड़ने की प्रतिज्ञा होती है। इस अवस्था में जो लोग पत्नी को छोड़कर विरक्त हो जाते हैं क्या उनको पाप नहीं पड़ता है?

उत्तर—जो सच्चे अर्थ में विरक्त होता है वह तो स्वयं कीचड़ से निकलता है और उस पत्नी कही जाने वाली नारी को भी पवित्र-पथ पर चलने के लिए अवसर देता है यदि वह समझ सके तो। फिर उसे पाप क्यों पड़ेगा! वह पुण्यात्मा है तथा अपने उत्तम आदर्श से दूसरों को भी पुण्यपथ बताता है।

1029. प्रश्न—आप कहते हैं कि बिच्छू को भी मत मारो, परन्तु वह यदि घर में घुस रहा हो तो?

उत्तर—बिच्छू कोई सिंह नहीं है कि वह घर में घुसकर सब को मार डालेगा। तुम्हारे घर में पहले से ही अनेक बिच्छू होंगे।

1030. प्रश्न—चरणामृत, महाप्रसाद, सेवा और बन्दगी क्या है?

उत्तर—चरण के अंगूठे से छुआ हुआ जल चरणामृत कहलाता है, परन्तु यह गुरु के चरण से छुआ हो या किसी सन्त के। वैसे जिसने विनय धारण कर लिया, उसने मानो चरणोदक ले लिया। गुरु या संतपुरुष का जूठन महाप्रसाद कहा जाता है। जहां ज्यादा प्रेम होता है वहां लोग एक-दूसरे का जूठन खाते हैं जैसे पति-पत्नी एवं मित्र-मित्र। जिसे गुरु और संत में विशेष प्रेम है वे उनके जूठन खा लेते हैं। वस्तुतः उनका उपदेश ही महाप्रसाद है, जूठन खाने की जरूरत नहीं।

सेवा तन, मन, धन आदि से की जाती है। बंदगी वंदना है जो एक शिष्टाचार है। वैसे सेवा को भी बंदगी कहते हैं।

1031. प्रश्न—नाम की बड़ी महिमा है। आदि नाम क्या है?

उत्तर—नाम से बड़ा नामी की महिमा है जिसने सारे नामों की कल्पना की है। सभी नामों का आदि जीव है जो सबका स्थापक है। अत: अपने चेतन स्वरूप को पहचानो।

1032. प्रश्न—क्या तत्त्वज्ञान से सारी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है?

उत्तर—एक काल में केवल एक वस्तु का ज्ञान होता है। जब जिस वस्तु का तात्त्विक ज्ञान हो जाता है तब उसका रहस्य खुल जाता है। इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि तात्त्विक ज्ञान कोई जादू है और उसके हो जाने पर गुप्त-प्रकट सब कुछ जाना जा सकता है।

1033. प्रश्न—क्या भगवान या देवी-देवता बलि या कुर्बानी के नाम पर जीववध कराना चाहते हैं?

उत्तर—पहली बात तो यह है कि मानव के ऊपर न कोई भगवान है और न देवी-देवता। दुर्जनतोष न्याय उन्हें मान भी लिया जाये तो वे जीववध क्यों चाहेंगे! यह मानव की हिंस्र-पशु की प्रवृत्ति है।

1034. प्रश्न—प्रकाश कोठारी नाम के एक लेखक ने लिखा है कि ब्रह्मचर्य नहीं रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य समर्थक सारी पुस्तकें जला देना चाहिए। वीर्य खर्च के लिए बना है जमा रखने के लिए नहीं। उक्त लेखक के फैलाये भ्रम का निराकरण क्या है?

उत्तर—उक्त लेखक के समान अनेक लोग ऐसे हुए हैं जो जगत को उलटा पाठ पढ़ाये हैं और पढ़ाते हैं। मनुष्य तो वैसे ही विषयकीट बने हैं। महारथी लोग उन्हें और उसी ओर ठेल रहे हैं। परन्तु यह तो सहज समझा जा सकता है कि शरीर के लिए बलप्रद वीर्य को खोकर मनुष्य केवल अपने शरीर तथा मन को खोखला बनाता है। जो जितना वीर्य ध्वंस करेगा, वह उतना शरीर से निर्बल तथा मन से चंचल बनकर दुख भोगेगा। भोगी लोग स्वयं इसका अनुभव करके उन्हें जो उचित लगे वह करें।

ब्रह्मचर्य में बल है, नीरोग्यता है तथा मन की शांति है।

1035. प्रश्न—एक समाचार पत्र में छपा था कि वनस्पति सजीव है और वह पानी के लिए तरसती है। क्या सच है?

उत्तर—पानी न पाकर वह सूख तो जाती ही है, परन्तु वह उससे दुखी होती है यह मनुष्य की कल्पना है।

वनस्पति में जीव है या नहीं है, इसकी असिद्धि या सिद्धि पारख सिद्धांत का मुख्य विषय नहीं है। उसका मुख्य विषय तो है मनुष्य का प्राप्तव्य उसका अपना चेतन स्वरूप एवं निजात्मा ही है। वैसे वनस्पति निर्जीव हैं। इसे विस्तार से समझने के लिए भवयान सटीक का सातवां प्रकरण मननपूर्वक पढ़ें।

1036. प्रश्न—यज्ञ क्या है, क्या यज्ञ ही उन्नति का साधन है, क्या यज्ञ से वृष्टि होती है, क्या यज्ञ न करने से पतन है?

उत्तर—कल्पित देवताओं के नाम लेकर औषधि, अन्न, घी, मेवे आदि आग में डालना तथा पशु-पक्षियों को भी काटकर उन्हें आग में डालना यज्ञ कहलाता है। आज-कल पशु-पक्षी आदि प्राणी यज्ञ के नाम पर नहीं काटे जाते[1] परन्तु औषधि, घी, मेवे, अन्न आज भी आग में डाले जाते हैं।

इस क्रिया से उन्नति मानना, इसे वर्षा का कारण मानना, इससे मोक्ष मानना—सब अन्धविश्वास है जो पुराकाल से चला आया है और यह पुरोहितों का केवल पेटधन्धा बन गया है।

पीछे के विचारकों ने लोकमंगलकारी कामों को यज्ञ नाम दिया, जैसे ज्ञान की चर्चा यज्ञ है; धर्मशाला, वाचनालय, पुस्तकालय, औषधालय, सत्संगाश्रम, अन्न-वस्त्र-यंत्रादि का उत्पादन आदि यज्ञ है।

आग जलाने से वातावरण विषाक्त होता है। अत: व्यर्थ आग न जलावें। वातावरण शुद्ध रखने के लिए वनस्पतियों का विस्तार करना चाहिए।

1037. प्रश्न—क्या अंगों के फड़कने से शुभ तथा अशुभ होते हैं?

उत्तर—अंग वायुविकार से फड़कते हैं। इससे शुभ तथा अशुभ कुछ नहीं होते। जो लोग इससे शुभाशुभ मानते हैं, उन्हें उनके आधार मिल जाते हैं। मनुष्य के जीवन में कुछ-न-कुछ अच्छी तथा बुरी घटनाएं घटती रहती हैं और वे उन्हें उनसे जोड़ते रहते हैं।

1038. प्रश्न—क्या अविवाहित लड़कियां संन्यास ले सकती हैं? यदि ले सकती हैं तो कब और कहां तथा किस प्रकार? यदि नहीं ले सकती हैं, तो क्यों?

उत्तर—पुरुष संन्यास के अधिकारी हैं तो नारियां भी अधिकारिणी हैं। जैसे कुछ पुरुष स्त्रियों की मलिन संगत से हटकर ब्रह्मचर्य एवं स्वतन्त्र जीवन जीना

---

1. **यह हिन्दू समाज के उदार विचारों की विशेषता है जो धर्मशास्त्र में वर्णित यज्ञ के नाम पर पशुवध शताब्दियों से बन्द है। इस सभ्ययुग में भी मुसलमानों द्वारा ईश्वर के नाम से लाखों पशुओं का वध होता है।**

चाहते हैं, वैसे कुछ नारियां भी पुरुषों की मलिन संगत से हटकर ब्रह्मचर्य एवं स्वतन्त्र जीवन जीना चाहती हैं।

भारत में पारख सिद्धान्त में अभी नारी-साधुनियों का कोई स्वतन्त्र मठ नहीं स्थापित हुआ।[1] जो नारियां विरक्त भाव से रहना चाहती हैं वे अपने माता-पिता के घरों में ब्रह्मचर्यव्रत लेकर रहती हैं और साधनामय जीवन व्यतीत करती हैं। जो लड़कियां ब्रह्मचर्यव्रत से रहना चाहें वे अपने माता-पिता के घर में रहकर साधना से रह सकती हैं। कठिनाइयां हर काम में आती हैं। उन्हें झेलकर ही अपने व्रत में दृढ़ रहने वाला अपने उद्देश्य में सफल होता है।

जहां पुरुष-साधु समाज है ऐसे मठ या समाज में नारी-साधुनियों का रहना उचित नहीं है। इसके लिए नारी-साधुनियों का मठ स्थापित होना चाहिए। ऐसी कोई शूर-वीर तथा सब योग्यताओं से सम्पन्न नारी-साधुनी ही कर सकती है। नारी-साधुनी पुरुष मात्र से तथा पुरुष-साधु नारी मात्र से सर्वथा अलग रहकर अपनी-अपनी वैराग्य-साधना में रह सकते हैं।

1039. प्रश्न—मैं तीन बच्चों का पिता हूं, साथ में पत्नी है। अब मुझे ज्ञान हुआ। अब मैं विरक्ति चाहता हूं। क्या करूं?

उत्तर—पत्नी और बच्चों की रक्षा करो। उनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करो तथा मन में वैराग्य रखो। घर में रहकर जल में कमल-जैसा निर्लिप्त व्यवहार करो।

1040. प्रश्न—पुत्र सन्मार्ग पर चलता है तो माता-पिता नफरत करते हैं। क्या माता-पिता की सब बातें माननी चाहिए?

उत्तर—यदि पुत्र सन्मार्ग पर चलता है और माता-पिता नफरत करते हैं तो यह उन्हीं की गलती है। परन्तु इसमें यह भी देखना है कि पुत्र सन्मार्ग पर तो चलता है, किन्तु घर के काम-काज पर ध्यान नहीं देता, तो माता-पिता को कष्ट होगा और उसको लेकर पुत्र के प्रति असन्तोष होगा ही। अतएव पुत्र को चाहिए कि माता-पिता को वह सन्तोष दे। यदि माता-पिता कम समझदार हैं तो भी उनकी सेवा करना तथा उनकी उचित मनसा का पालन करना आवश्यक है।

माता-पिता की गलत आज्ञा मानने की राय तो कोई समझदार न देगा, क्योंकि इससे न पुत्र का कल्याण है और न माता-पिता का; किन्तु पुत्र का

---

1. **ब्रह्मचारिणियों के स्वतंत्र मठ ग्राम पोटियाडीह जिला धमतरी, छत्तीसगढ़ तथा धर्मपुरी, जिला बड़ोदरा (गुजरात) में स्थापित हो गये हैं। वहां कोई ब्रह्मचारिणी रह सकती है। ऐसे अन्य मठ भी स्थापन की दिशा में अग्रसर हैं।**

कर्तव्य है कि जितनी उसकी अपनी शक्ति चले माता-पिता को सन्तोष दे।

1041. प्रश्न—एक दिन अपना माना हुआ सब कुछ नष्ट होगा, फिर भी इसका अहंकार क्यों नहीं जाता?

उत्तर—कुछ भी साथ नहीं जायेगा तथा अन्त में सब कुछ नष्ट हो जायेगा, यह भाव केवल कुछ समय के लिए बुद्धि में आता है, इस भाव की धारणा सदैव एकरस बनी नहीं रहती। जब मन में सदैव विवेक जाग्रत रहता है तब अहंकार समाप्त हो जाता है। इसके लिए सत्संग, सेवा तथा निरन्तर साधना एवं विवेक में मन देना चाहिए।

1042. प्रश्न—शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन-रात, देश, काल आदि कहां पर नहीं हैं? वह कौन-सी दशा है जहां पर पहुंचते ही जीव सारे संशयों से मुक्त हो जाता है?

उत्तर—वह समाधि है। समाधि में न दिन है, न रात, न देश है, न काल, न हर्ष-शोक, मद-भय आदि हैं। वहां शुद्ध चेतन स्वसत्ता मात्र है।

1043. प्रश्न—मैं सबको बड़ा मानता हूं तो किसके-किसके पैर छुऊं?

उत्तर—माता, पिता तथा गुरु के अवश्य छूओ, इसके बाद जिनका छू पाओ छूओ, अन्यथा हाथ जोड़कर नमस्कार कर लो। सबसे अच्छा है हाथ जोड़ लेना।

1044. प्रश्न—यदि कोई मनुष्य मरकर पुनः मनुष्य होना चाहे तो क्या करे?

उत्तर—जो आज ही मनुष्य है, उसे मरकर पुनः मनुष्य बनने की आशा करने की बात निरर्थक है। उसे चाहिए कि वह आज पूर्ण मनुष्यता धारण करे। हमें अपनी पूरी शक्ति वर्तमान में अपने उद्धार में लगाना चाहिए, न कि मरने के बाद के विषय में सोच-सोचकर दिमाग खपाना चाहिए। जो वर्तमान में ठीक है, वह भविष्य में सदैव ठीक रहेगा।

1045. प्रश्न—आपके रचित ग्रंथ, प्रवचन, पत्रिका आदि पढ़ने-सुनने में ऐसा लगता है कि मेरे भीतर-बाहर आप ही प्रदर्शित हो रहे हैं। असंग रहना, मौन रहना, ध्यान मग्न रहना भाता है। जीवन बहुत तेजी से बदल रहा है। मैं पागल तो नहीं हो जाऊंगा?

उत्तर—ऐसे भाव वाला आदमी पागल नहीं, सावधान होता है। मेरी वाणियों से आपको जो लाभ लेना हो वह लें। मेरी वाणियां मेरी नहीं, किन्तु गुरु की ही हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूं।

1046. प्रश्न—रामायण के वाली वानर जाति के थे और तारा एक राजकुमारी, फिर उनकी शादी कैसे हुई?

उत्तर—वाली और तारा दोनों मनुष्य थे। वे वानर इसलिए कहलाते थे कि उनका गणचिह्न (टॉटैम) वानर था। इसी प्रकार जामवन्त का भालू गण-चिह्न था। इन सब बातों को समझने के लिए तथा रामायण का पूर्ण रहस्य समझने के लिए मेरी लिखी पुस्तक 'रामायण रहस्य' पढ़िये।

* * *

1047. प्रश्न—रक्षाबन्धन में बहनें अपने भाई के हाथ की कलाई में राखी बांधकर पवित्र स्नेह एवं उसकी रक्षा की कामना करती हैं, किन्तु पण्डितों द्वारा राखी बांधना क्या सही है?

उत्तर—वस्तुत: रक्षाबंधन का प्रचलन पंडितों द्वारा ही हुआ है। श्रावण पूर्णिमा को एक वर्गाकार वेदी पर राजा अपने मन्त्रियों के साथ बैठता था। वहां वेश्याओं का नृत्य-गान होता था और पुरोहित पंडित पूजा के साथ राजा के हाथ की कलाई में रक्षासूत्र बांधता था और मन्त्र पढ़ता था—"आपको वह रक्षा बांधता हूं जिससे दानवों के राजा बलि बांधे गये थे, हे रक्षा, तुम (यहां से) न हटो, न हटो।" मूल श्लोक इस प्रकार है—"येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबल:। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल।" (भविष्योत्तर पुराण 137/20, एवं धर्मशास्त्र का इतिहास 4/53)।

यह रक्षाबंधन सभी वर्णों के लोगों को पुरोहित बांधते थे, ऐसा विधान था। पीछे वीर-क्षत्रियों को युद्ध में जाते समय शायद बहनें उनकी कलाइयों में बांधने लगीं और रक्षाबंधन के दिन सभी बहनें अपने भाइयों को बांधने लगीं। इस प्रकार यह रक्षाबंधन पंडितों ने बहनों से छीन लिया ऐसी बात नहीं है, किन्तु पंडितों के बाद बहनों में यह प्रचलन हुआ।

1048. प्रश्न—विदेह मुक्तात्मा को उनके भक्त स्तुति-वंदना करके पुकारते हैं, तो क्या वे सुनकर कुछ कृपा करते हैं?

उत्तर—जिसके पास देह ही नहीं है वह किसी की बात सुन कैसे सकता है! विदेह मुक्तात्मा से संसार के लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

1049. प्रश्न—गुरु कबीर के दर्शन होंगे कि नहीं?

उत्तर—गुरु कबीर की देह जड़ तत्त्वों में विलीन हुए चार सौ से अधिक वर्ष हो गये। उनके दर्शन किसी को नहीं होंगे। हां, उनकी वाणी तथा उनके

उच्चादर्शों से प्रेरणा लेकर व्यक्ति आत्म-दर्शन अर्थात स्वरूपज्ञान पा सकता है तथा अपने आत्माराम में सदा के लिए विश्राम कर सकता है। यही जीवन का लक्ष्य भी है।

1050. प्रश्न—क्या बिना जीव-हिंसा किये जीवन बिताया जा सकता है?

उत्तर—अपनी शक्ति चले तक जीव-हिंसा बचाना चाहिए। जो शक्ति के बाहर है, वहां विवशता है। तुम जीव-हिंसा की मंशा छोड़ सकते हो और जहां तक अपना ज्ञान एवं शक्ति चले, वहां तक हिंसा की क्रिया भी छोड़ सकते हो।

1051. प्रश्न—कबीर साहेब ने कहा है—"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय। जो दिल ढूंढ़ा आपना, मुझ सा बुरा न कोय।" आपसी बहस में कुछ लोग कहते हैं कि देखो, कबीर साहेब ने स्वयं को कह दिया है कि मेरे समान कोई बुरा नहीं है, तो मैं चुप हो जाता हूं।

उत्तर—यह तो महान पुरुषों की विनम्रता है। गोस्वामी तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है "मैं अपराध भवन, कुसेवक, शठ, अति लालची, काम-किंकर" (पद संख्या 110, 230, 232) तथा ऐसे शब्द उन्होंने अनेक बार अपने ग्रंथों में अपने लिए कहा है। उन्होंने अपनी दोहावली में कहा है—"रामायण अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति। तुलसी सठ की को सुने, कलि कुचाल पर प्रीति।" अर्थात रामायण के अनुसार सुन्दर भाईचारे के व्यवहार की सीख दी जाती है, परन्तु संसार के लोग महाभारत के अनुसार भाई-भाई लड़ते हैं। तुलसी दास जी कहते हैं कि मेरे जैसे शठ की बात कौन सुनता है, कलिकाल में कुचाल पर ही प्रीति है। इस प्रकार तुलसीदास जी ने अपने को बारम्बार शठ, नीच, पामर आदि कहा है। यह उनकी नीचता नहीं, किन्तु विनम्रता है।

1052. प्रश्न—जैन साधु सफेद कपड़े से मुंह तथा कान क्यों बांधते हैं?

उत्तर—कान नहीं बांधते हैं, किन्तु मुंह बांधने के लिए कान में कपड़े को केवल फंसाते हैं। मुंह इसलिए बांधते हैं कि उससे निकले भाप से सूक्ष्म जन्तु मर न जायें। वे मुख-पट्टी को अहिंसा का प्रतीक भी मानते हैं। इससे बात करते समय दूसरे के ऊपर थूक भी नहीं पड़ता। यह पट्टी उनके पंथ का चिह्न भी हो जाती है।

1053. प्रश्न—साधु-सन्त को सम्पत्ति का मोह नहीं रहता है, तो वह अपने घर में अपना हिस्सा क्यों बंटाते हैं?

उत्तर—सन्त जन अपने पूर्व के माने गये घर तथा धन में हिस्सा नहीं बंटाते। यदि कोई बंटाता है तो वह ठीक नहीं करता है। घर में हिस्सा बंटाना साधु-वेष के विरुद्ध है।

1054. प्रश्न—वाली ने राम का कुछ भी नहीं बिगाड़ा था, फिर राम ने वाली को छिपकर क्यों मारा?

उत्तर—यदि यह घटना सच है तो अपने राजनीतिक लाभ लेने के लिए किया गया है। वाली के मरने पर ही सुग्रीव को राज्य तथा सेना मिलते और वह तभी राम की सहायता कर सकता। राम की वाली के सामने जाने की हिम्मत नहीं थी, इसलिए उन्होंने छिपकर मारा। राम के जीवन में यह सबसे बड़ा धब्बा है। इसीलिए पण्डितों ने क्षमा नहीं की और कहा कि राम ही कृष्ण हुए तथा अन्त में जरा नाम के व्याध से मारे गये।

1055. प्रश्न—अपना मन बहुत रोकने पर भी न रुके तो इसे क्या मानना चाहिए, संकल्पशक्ति की कमी, समझ की कमी या प्रारब्ध?

उत्तर—उक्त कारणों में से कोई भी या सभी कारण हो सकते हैं। दृढ़ संकल्पशक्ति होने से मन रुकने लगता है। इसमें अच्छी समझ तो चाहिए ही। पूर्व के संस्कार ज्यादा बलवान हैं यही मानो प्रारब्धवेग है, परन्तु यह शरीर के भोग की तरह नहीं है। इसे विवेक द्वारा क्षीण किया जा सकता है। अतएव मन रोकने में ही सच्चा सुख है यह समझ जब पक्की हो जाती है तब इस काम को करने के लिए दृढ़ संकल्प लिया जाता है और दृढ़ संकल्प द्वारा जब दीर्घकाल तक मन को वश में करने का प्रयत्न चलता है तब धीरे-धीरे अवश्य सफलता मिलती है। इसमें घबराना नहीं चाहिए। लोग व्याकरण, संगीत, कला आदि में अपनी जिन्दगी का आधा हिस्सा लगा देते हैं, कोई-कोई तो बुढ़ापा तक सफल होते हैं, तो मन रोकने में घबराने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह निश्चित है कि जो पक्के निश्चय से लगा रहेगा उसका मन अवश्य उसके वश में हो जायेगा। वस्तुतः संसार में कुछ भी अपने अधीन नहीं है, केवल मन को ही हम अपने अधीन कर सकते हैं।

1056. प्रश्न—जब जीव को अपने कर्मों के ही फल मिलते हैं, तो हम भक्ति क्यों करें?

उत्तर—कर्मों को सुधारने के लिए मन को कोमल बनाना पड़ता है और मन को कोमल बनाने के लिए भक्ति करनी चाहिए। माता-पिता एवं संत-गुरुजनों की विशेष भक्ति करनी चाहिए। वैसे प्राणि मात्र के प्रति कोमल भाव एवं बरताव करना चाहिए। यह प्राणि-जगत ही भक्ति-भाजन भगवान है। अहिंसा का पालन करना ही भक्ति है।

1057. प्रश्न—प्रेम कब अन्धा होता है और कब महान तथा पवित्र?

उत्तर—संकुचित प्रेम अन्धा है, व्यापक प्रेम महान है। भोगों को पाने के लिए किया गया प्रेम अन्धा है तथा प्राणियों को सुख देने के लिए किया गया प्रेम महान है।

1058. प्रश्न—ज्ञान क्या है, मैं कैसे ज्ञानवान बनूं?

उत्तर—अपनी आत्मा को पहचान लेना ही ज्ञान है और सत्संग से ज्ञानवान हुआ जा सकता है।

1059. प्रश्न—काम-वासना की उपज का कारण संसार, शरीर या प्रारब्ध, क्या है?

उत्तर—मन के अविवेक तथा गलत संकल्पों से काम-वासना की उत्पत्ति होती है। संसार तथा प्रारब्ध उसमें सहायक होते हैं। जो साधक अपने हृदय के अविवेक को नष्ट कर देता है और संकल्पों के त्याग का अभ्यासी हो जाता है, उसके मन से काम-वासना की निवृत्ति हो जाती है। ऐसा साधक सब समय सावधान रहता है। वह देखने, सुनने तथा पांचों विषयों के व्यवहार में सदैव संयम रखकर मन की निरंतर निगरानी रखता है।

1060. प्रश्न—अहंकार की सीमा कहां तक है, क्या रहनी का अहंकार नहीं होता है?

उत्तर—सदैव अपने मन को देखते रहो, जिसका भी अहंकार हो, छोड़ते रहो, अपने आत्मा के अलावा सारा दृश्य ही अहंकार की सीमा है। जब व्यक्ति दृश्यों से लौटकर अपने आप में शांत हो जाता है तब सारे अहंकारों का विलय हो जाता है।

1061. प्रश्न—यदि शरीर छोड़ते समय जो चिन्तन होता है जीव उसी को पाता है, तो यदि व्यक्ति पत्नी-बच्चे का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है तो क्या वह मनुष्य शरीर पायेगा?

उत्तर—पत्नी-बच्चे पशु-पक्षी खानियों में भी मिलते हैं। इसलिए इसको लेकर मनुष्य शरीर ही में आना पड़े ऐसी कोई बात नहीं।

ऐसा जीवन बनाओ कि हर समय अपने अविनाशी स्वरूप राम का ही स्मरण रहे और मरते समय उसी का स्मरण करते हुए अपने आप में शांत हो जाये।

1062. प्रश्न—भजन क्या है और कैसे करें?

उत्तर—मन के विकारों का त्याग भजन है। विचारों द्वारा मनोविकारों का त्याग होता है। मनोविकारों का त्याग हो जाने पर जीव मुक्त ही है।

1063. प्रश्न—पुनर्जन्म के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

उत्तर—सत्ता की अनादिता। जड़ और चेतन दोनों अनादि तथा नित्य वस्तुएं हैं। जो चेतन आज देहधारी है, वह अचानक देह में नहीं आ गया है। वह इसके पहले भी देह में रहा तभी उसके वासनावश इस शरीर में आया है। सभी जीवों के कर्म फल भोगों की भिन्नता प्रत्यक्ष है। यह विषय सूक्ष्म है। इसके विषय में सद्ग्रन्थों में जितना लिखा गया है उतना यहां लिखा जाना सम्भव नहीं। अतएव सद्ग्रन्थ पढ़ो और समझकर संतों एवं भक्तों से साक्षात सत्संग करो।

1064. प्रश्न—जीव जब एक दूसरे से पृथक हैं तब वे अखण्ड कैसे? ब्रह्मवादी कहते हैं कि अज्ञानदशा में जीव अलग-अलग प्रतीत होते हैं, ज्ञान हो जाने पर एक हो जाते हैं। क्या समझें?

उत्तर—यदि संसार में एक अखण्ड सत्ता हो तो संसार रहेगा ही नहीं। गति, स्फूर्ण, संचालन, परिवर्तन आदि में यही कारण है कि संसार असंख्य मौलिक द्रव्यों का संयोग है। यदि जीव एक है तो एक का जन्म दूसरे की मृत्यु, एक का बंध तथा दूसरे का मोक्ष क्यों?

अतएव जीव असंख्य तथा अलग-अलग हैं। अलग-अलग सब जीव अपने आप में अखण्ड हैं। जड़तत्त्वों की अन्तिम इकाई भी अखण्ड है।

अज्ञान-दशा में जो जीव का स्वरूप है वही ज्ञानदशा में भी रहता है। दोनों में फर्क केवल इतना है कि अज्ञान-दशा में वह दुखी रहता है तथा ज्ञान-दशा में दुखों से मुक्त हो जाता है।

जीव गुणों में एक है। अर्थात सभी जीवों का ज्ञानगुण एक है, परन्तु व्यक्तित्व अनेक हैं।

1065. प्रश्न—मनुष्य के ऊपर वंश-परम्परा का प्रभाव पड़ता है या संगति का?

उत्तर—दोनों का। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जीवन भर कुसंगति से बचे और जो वंशगत दोष हों, उन्हें भी अभ्यास से दूर करे।

1066. प्रश्न—चिन्ता और निस्पन्द विचार में क्या अन्तर है?

उत्तर—चिन्ता चंचलता एवं दुख का कारण है और निस्पन्द विचार का अर्थ चंचलता-रहित एवं शांत विचार है।

1067. प्रश्न—किसी लड़की से प्यार करना आप घृणा मानते हैं जबकि वह पति-पत्नी के सम्बन्ध के रूप में बदल सकता है, फिर यह घृणा कैसे हुआ?

उत्तर—अमर्यादित लड़की-लड़के का तथाकथित प्यार पति तथा पत्नी के सम्बन्ध रूप में कहीं एक प्रतिशत से भी कम घटता होगा, शेष तो केवल सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन कर परिवार तथा समाज को गन्दगी से भरता है। अत: इस प्यार के चक्कर से लड़की तथा लड़के को बचकर पढ़ाई-लिखाई और उन्नति के काम में दत्तचित्त होकर लगना चाहिए।

1068. प्रश्न—कुछ लोग 'सत्य नाम' कहने पर इसे निरर्थक बताते हैं। आपके विचार क्या हैं?

उत्तर—'सत्य नाम' सत्य की तरफ संकेत करता है, फिर निरर्थक क्यों है? अभिवादन में अनेक शब्दों का प्रयोग चलता है। उनमें 'सत्य नाम' अच्छा ही है।

1069. प्रश्न—सत्य नाम जीवात्मा वाचक है या परमात्मा वाचक?

उत्तर—परमात्मा आत्मा से कोई अलग वस्तु नहीं है। शुद्धात्मा ही परमात्मा है और उसी के लिए सत्य नाम का प्रयोग बहुत-से लोग करते हैं।

1070. प्रश्न—सहनशील कितना और कब तक बने, क्योंकि इसकी भी सीमा होती है?

उत्तर—साधक को वहां तक सहना चाहिए जहां तक या जब तक कष्ट आये। साधक का सहना ही काम है।

1071. प्रश्न—चन्द्रमा की सोलह कलाएं कौन हैं?

उत्तर—कला का अर्थ अंश है। चन्द्रमा की सोलह कलाएं ये हैं—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा तथा पूर्णामृता। ये तिथि के अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं।

1072. प्रश्न—पूरा शरीर चेतनवत क्यों भासता है?

उत्तर—क्योंकि चेतन ने अपनी सत्ता पूरे शरीर को दे रखी है। जैसे घर में एक बत्ती जल जाने पर पूरा घर प्रकाशित होता है, वैसे जीव के निवास से पूरा शरीर चेतनयुत रहता है।

* * *

1073. प्रश्न—विदेशी लेखक 'दास' शब्द को बड़ी नीच दृष्टि से देखते हैं। फिर हमारे यहां बड़े-बड़े सन्तों के नामों में 'दास' शब्द क्यों लगा है; जैसे—सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि?

उत्तर—पुराकाल में जिन्हें गुलाम बनाकर रखा जाता था, उन्हें दास कहा जाता था। ऋग्वेद पढ़ने से पता लगता है कि आर्य लोग जब सिन्ध तथा पंजाब के क्षेत्र में फैले, तब उन्हें वहां के निवासियों का विरोध सहना पड़ा। उनसे लड़ाइयां हुईं। आर्यों ने उन्हें दस्यु कहा। पीछे से उन्होंने उन पर विजय करके उन्हें दास कहा। ऋग्वेद में आर्यों ने दासों को काले, नकचिपटे, समझ में न आने वाली तथा कर्कस भाषा बोलने वाले और शिश्न (जननेन्द्रिय) को देवता मानने वाले 'शिश्न देवा' कहा है। ये सब निश्चित ही भारत के आदिवासी थे। ऋग्वेद के अनुसार ये धनी, बड़े-बड़े दुर्ग वाले तथा शूरवीर थे। ये आर्यों के धर्म यज्ञ-हवन को नहीं मानते थे। बहुत युद्ध के बाद आर्यों ने इन पर विजय पायी और उन्होंने इन्हें अपना गुलाम बनाया तथा दास कहा।

वैसे दास-प्रथा पूरे संसार में थी। बलवान लोग निर्बलों को अपने अधीन करके उनसे अपनी सेवा कराते थे और उन्हें दास कहते थे। मनुस्मृति (8/415) के अनुसार दासों के सात प्रकार हैं—"जिसे युद्ध में बन्दी बना लिया गया हो, जो अपनी जीविका के लिए स्वयं समर्पित हो गया हो, जो स्वामी के घर में रहने वाले दास-दासी से पैदा हुआ हो, जो खरीद कर लाया गया हो, जिसे दान में प्राप्त किया गया हो, जो पिता की परम्परा से उत्तराधिकार में मिला हो और ऋण आदि के कारण जिसे दण्डित करके रखा गया हो।"

आज जैसे बाजारों में बैल, घोड़े आदि बिकते हैं, वैसे पुराकाल में दास-दासी के नाम से स्त्री-पुरुष बिकते थे, राजा-महाराजा ब्राह्मणों एवं पुरोहितों को दान में देते थे। यह निश्चित ही विश्व-व्यापी क्रूर-प्रथा थी। भारत में अंग्रेजों के आने के बाद तक यह प्रथा चालू थी। सन् 1843 में इसे बन्द कराने के लिए कानून पास किया गया था। नेपाल में दास-प्रथा बीसवीं शताब्दी के शुरू में बन्द हुई है।

'दास' शब्द का अपवाद भी है। वैदिक काल का एक आर्य-राजा 'दिवोदास' था जिसका पुत्र 'सुदास' हुआ। इतरा नाम की दासी के पुत्र 'महीदास' थे जो 'ऐतरेय महीदास' कहलाते थे। इन्हीं के नाम से ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ बना है। ये ब्रह्मचारी थे तथा 116 वर्षों तक जीवित रहे।

भारत में जब भक्ति-सम्प्रदाय का उदय हुआ, तब कुछ शताब्दियों के बाद साधकों ने अपने आपको भगवान या सद्गुरु का दास कहा और माना। इसलिए भक्ति-सम्प्रदाय के उच्चकोटि के सन्तों के नाम में भी 'दास' शब्द का प्रयोग

हुआ। इसे अपनी विनम्रता के लिए सन्तों ने स्वयं स्वीकारा है। कबीर साहेब तो जीव ही को शिव एवं आत्मा को ही परमात्मा मानते थे। इस प्रकार वे आत्मज्ञानी पुरुष थे। परन्तु उन्होंने विनम्रता के लिए स्वयं को जगह-जगह दास कहा। सन्त समर्थ रामदास का 'दासबोध' ग्रंथ का ही नाम है। बृहत् हिन्दी कोश में दास के अनेक अर्थ देते हुए 'ज्ञानात्मा' तथा 'आत्मज्ञानी' भी दिया गया है। इतना निश्चित समझ लो कि 'दास' विशेषण से सम्पन्न जो सन्त हैं, वे वैसे दास नहीं हैं जो पुरानी प्रथा के व्यक्ति थे।

कितने शब्द देश-काल के आयाम में चलते-चलते अपने अर्थ बदलते हैं। ऋग्वैदिक[1] प्रतिष्ठित आर्य-राजा दु:शीम, पृथु, तथा वेन के साथ एक राजा 'राम' नाम से याद किये गये हैं, जिनके लिए 'असुर' विशेषण लगा है। असुर बलवान को कहते हैं। 'असु' का अर्थ प्राण है तथा 'असुर' का अर्थ प्राणवान एवं बलवान है। परन्तु आज कोई भारतीय अपने नाम में असुर विशेषण नहीं चाहेगा। ऋग्वेद में एक सौ पांच (105) बार असुर शब्द आया है। जिनमें पंद्रह (15) बार घृणा व्यंजक है और नब्बे (90) बार आदर सूचक। ऋग्वेद (3/55) में बाइस (22) बार महद्देवानामसुरत्वमेकम्—महान देवताओं का असुरत्व (बल) एक है, कहा गया है। आर्य तथा वेदों के अनुसार 'देव' चमकने वाला या कल्याण-दाता है, परन्तु पारसियों के शास्त्रों में देव का अर्थ महा दुष्ट है। संस्कृत-कोश के अनुसार 'राम' का अर्थ सुहावना, आनन्दप्रद, हर्षदायक, सुन्दर, प्रिय, मनोहर के साथ मलिन, धूमिल तथा काला भी है। ईसा पूर्व काल में 'हरि' का अर्थ घोड़ा, वानर आदि था, किन्तु पीछे ईश्वर तथा आत्मा हो गया। वेदों में इन्द्र सर्वोच्च देवता है, परन्तु पुराण तथा भक्तिकाल में इन्द्र पतित माना जाने लगा।

अतएव केवल शब्द के चक्कर में न पड़कर उसके देश-काल समर्थित भाव को समझने का प्रयास करना चाहिए। दास नाम से प्रचलित संत मन-इन्द्रियों को जीतकर जगत के स्वामी होते हैं। वे तो अपनी विनम्रता के लिए स्वयं को दास कहते या लिखते हैं।

1074. प्रश्न—आज-कल हर व्यक्ति नौकरी के पीछे भाग रहा है जबकि पहले ऐसा नहीं था। क्या इस क्रिया का लगातार विकास उचित है?

उत्तर—नौकरी की जगहें सीमित हैं। अतएव उनके पीछे बहुत लोगों के भागने का परिणाम निराशा ही होगा। लोगों को खेती, कला तथा व्यवसाय पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

1075. प्रश्न—कोई भी प्रतिज्ञा लेते समय भय क्यों होता है?

---

1. **ऋग्वेद** 10/93/14।

उत्तर—प्रतिज्ञा को निभाने में लगने वाले त्याग और श्रम की दुर्बलता के कारण। किसी भी प्रतिज्ञा एवं उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए हमें बड़े-से-बड़े त्याग तथा श्रम करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

1076. प्रश्न—मैं साधु बनूं कि माता-पिता की सेवा करूं?

उत्तर—मन से साधु हो जाओ और माता-पिता की सेवा करो। जब मन में पूर्ण वैराग्य उदय होगा, तब राय लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

1077. प्रश्न—मन बहुत रोकने पर भी नहीं रुकता, क्या करें?

उत्तर—खूब सेवा का काम करो, पढ़ो-लिखो तथा सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करो। मन को गलत चिन्तन से हटाकर उसे अच्छे चिन्तन एवं अच्छे काम में लगाओ। इस प्रकार करते चलो। धीरे-धीरे वह अपने वश में हो जायेगा। जीवन भर मन को वश में रखकर ही सच्चा सुख मिल सकता है।

1078. प्रश्न—मुहब्बत जिसने की है, धोखा खाया है। फिर भी लोग सावधान क्यों नहीं होते?

उत्तर—मोह-मूढ़ता के कारण। इसे छोड़ना चाहिए।

1079. प्रश्न—शील और धर्म में क्या अन्तर है?

उत्तर—मन, वाणी तथा आचरण की कोमलता, नैतिकता एवं समस्त शुभाचार शील की परिभाषा है और यही सब मानव-धर्म है। जो शीलवान है, वह धार्मिक है।

1080. प्रश्न—मनसा-भ्रम क्या है?

उत्तर—मन की कल्पना से उठा हुआ भ्रम। सत्संग, सद्ग्रन्थावलोकन तथा विवेक से मन का भ्रम मिटता है।

1081. प्रश्न—संसार में अधिकतम दुख है, फिर हम इसमें क्यों जीना चाहते हैं?

उत्तर—मोह-वश। जिनका मोह मिट जाता है वह न जीना चाहता है और न मरना। वह सदैव अपने स्वरूप में, आत्म-स्थिति में स्थित रहता है।

1082. प्रश्न—कबीरपंथ के पारख सिद्धांत में इलाहाबाद का कबीर संस्थान निरन्तर प्रगति करता चला जा रहा है। यह वहां के कर्मठ साधु-ब्रह्मचारियों के श्रम, सहयोग एवं सद्भावना का परिणाम है। आपने अपने साधुओं के लिए अच्छी व्यवस्था कर रखी है। परन्तु हम ब्रह्मचारिणियों के

लिए आप क्या कर रहे हैं? ब्रह्मचारिणियों के लिए एक मठ होना चाहिए, जहां वे रहकर स्वाध्याय एवं साधना कर सकें।

उत्तर—यह उचित है कि ब्रह्मचारिणियों का मठ हो, परन्तु इसका स्थापन ब्रह्मचारिणियों को ही करना चाहिए। आज से चालीस-पैंतालीस वर्ष पूर्व एक लड़की सुदूर युगोस्लाविया (यूरोप) से भारत आयी थी और उसने अपने श्रम एवं सेवा से भारत में महान कीर्तिमान स्थापित किया। आज उसके पूरे विश्व में सेवा केन्द्र हैं जिनमें वृद्धों, शिशुओं, रोगियों, अपंगों की सेवा होती है और इनमें सत्ताइस सौ ब्रह्मचारिणियां काम करती हैं। यह लड़की है मदर टेरेसा जो आज वृद्धा है।

लखनऊ के नवाब के कमरे में एक सांप निकला। उन्होंने घबराकर नौकरानी से कहा—अरे, किसी मरदुये को बुला। नौकरानी ने कहा—हुजूर! आप भी तो मरदुये हैं। नवाब ने कहा कि तू ठीक कहती है और उन्होंने तलवार लेकर सांप को मार दिया। तो बेटी, तुम लोग स्वयं यह काम कर सकती हो। नारियों के मठ में पुरुष की छाया भी नहीं होनी चाहिए। तुम इतनी बड़ी वीरांगना हो कि पत्र में अपने नाम और पता तक देने की हिम्मत नहीं की, तो तुमसे ज्यादा क्या आशा की जाये! लेकिन मैं तुम्हें साहस देना चाहता हूं कि तुम कायरता छोड़कर अपने आपको प्रकट करो और ब्रह्मचारिणी समाज के उत्थान के लिए डट जाओ।

1083. प्रश्न—मैं चार वर्षों से स्कूल में ही एक विजाति लड़की पर आशिक हूं और वह मेरे ऊपर। यह बात दोनों के घरवाले जान जाने पर अलग-अलग हम दोनों की सजाति लड़की-लड़के से शादी कर दिये। परन्तु हम दोनों उन्हें न चाहकर एक दूसरे को चाहते हैं। हम दोनों परस्पर माल्यार्पण एवं सेन्दुरदान भी गुप्त रूप से कर लिए हैं। हम एक दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते, मर जायेंगे। हम क्या करें?

उत्तर—कायरता छोड़ दो। कौन किसके बिना नहीं रह पाता है! अभी पता चल जाये कि लड़की असाध्य बीमारी से पीड़ित है, तो तुम उसे देखना भी पसन्द नहीं करोगे; और तुम्हारे ऐसा हो जाने पर वह तुम्हें देखना नहीं चाहेगी। माता-पिता ने जिससे शादी कर दी है, तुम दोनों को अपना मन उन्हीं में लगाना चाहिए। जीवन को द्वन्द्वों में मत डालो। तुम उस लड़की को समझा दो कि वह अपने विवाहित पति से प्रेम करे और वह तुमसे अपना मन पूर्णतया हटा ले। और तुम उससे पूर्णतया हट जाओ। तुम दोनों भावुकता छोड़कर अपनी-अपनी मर्यादा में चलो।

1084. प्रश्न—समन्वय क्या है?

उत्तर—मेल बैठाना। विरोधी बातों को हटाकर अनुकूल बातों का मेल बैठाना ही समन्वय है। तुम अपने पास के लोगों की विरोधी बातें छोड़कर उनकी अनुकूल बातें अपने लिए लो और मेल मिलाप से रहो।

1085. प्रश्न—क्या गांधारी के सौ पुत्र थे?

उत्तर—एक स्त्री अपने जीवन में सौ पुत्रों को जन्म नहीं दे सकती। हां, अनेक स्त्रियों से सौ पुत्र एक पुरुष द्वारा हो सकते हैं।

1086. प्रश्न—विद्यार्थी को कैसा जीवन रखना चाहिए?

उत्तर—सादा, सरल, निश्छल, श्रमशील और सत्यपरायण।

1087. प्रश्न—विषय-वासना से शरीर और मन दोनों खोखले हो जाते हैं। मैं इससे कैसे बचूं? मन में वैराग्य कैसे आये?

उत्तर—यह प्रश्न यदि तुम्हारे हृदय की गहराई से हो और यदि तुम इसे अपने मन में सब समय बनाये रख सके तो धीरे-धीरे स्वयं विषयों से वैराग्य हो जायेगा। विषयों के प्रति निरन्तर घृणा होने से वैराग्य हो जाता है। अंततः यथार्थ विवेक द्वारा संसार की वास्तविकता का जब पूर्णतया दर्शन हो जाता है तब पूर्ण वैराग्य हो जाता है। प्राणी-पदार्थों में भोग बुद्धि का उदय न होना ही वैराग्य की पराकाष्ठा है।

1088. प्रश्न—क्या किसी महिला साधिका को पुरुषों से ज्यादा घनिष्ठता, हंसी-मजाक आदि करना चाहिए?

उत्तर—सामान्य स्त्रियों को भी पर पुरुषों की घनिष्ठता से दूर रहना चाहिए; और साधिकाओं को तो सभी पुरुषों से हटकर रहना चाहिए।

1089. प्रश्न—हमारे मन में अच्छी भावना के साथ गलत भावनाएं भी आती हैं, उन्हें कैसे रोका जाये?

उत्तर—गलत को गलत जान लेने पर उनका आना रुकने लगेगा। हमें चाहिए कि हम सावधानी से गलत को गलत समझें।

1090. प्रश्न—शिशु मुस्कुराते हैं। बिना पूर्व अनुभव के ऐसा कैसे होता है?

उत्तर—जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों से जीवों के ऐसे देह-स्वभाव हैं जिससे वे अनुकूल मनोभावना पर मुस्कुराते हैं।

1091. प्रश्न—मैं जब किसी काम को करने के लिए या कहीं जाने के लिए सोचता हूं तब मेरे भीतर उसके विरोधी विचार भी उठते हैं। इस प्रकार मैं

बहुत समय तक उलझन में पड़कर सही निर्णय नहीं ले पाता हूं। इसका समाधान कैसे हो?

उत्तर—यह मानसिक दुर्बलता है। विवेकवान सज्जनों-संतों का सत्संग करो, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो और गहराई से मन का निरीक्षण करो। चंचलता छोड़कर अन्तर्मुखी बनो। आत्मज्ञान, आत्मविश्वास तथा आत्सयंम बढ़ते जाने से उपर्युक्त दुर्बलता मिट जायेगी।

*   *   *

1092. प्रश्न—रामजन्मभूमि और बाबरी मसजिद को लेकर देश में इंसान के बहुत रक्त बहे, क्या यह उचित है?

उत्तर—राजनीतिक लोग धार्मिक भावुकों को बहकाकर उन पर अपना चौधराना चलाते हैं, उनसे खून खराबा कराते हैं और इसी के सहारे शासन की गद्दी पर पहुंचना चाहते हैं। इस कांड से न राम की प्रतिष्ठा है और न रहीम की। इससे मानवता, धर्म एवं देश सबका विनाश है। श्रीराम ने अयोध्या की राजगद्दी इसलिए त्याग दी कि अयोध्या में शांति रहे, किंतु आज कुछ नेता राजगद्दी पर पहुंचने के लिए अयोध्या की शांति भंग करने में लगे हैं। फिर भी उनका दंभ है कि हम रामभक्त हैं।

1093. प्रश्न—सुना है कि एक धर्मगुरु ने अपनी इच्छा से शरीर छोड़ा है। उसकी पत्नी भी अपनी इच्छा से ही शरीर छोड़ेगी। वे बहुत पहुंचे हुए हैं। क्या उनके मार्ग पर चलकर हम भी वैसे बन सकते हैं?

उत्तर—धोखे में मत पड़ो। सत्संग, स्वाध्याय एवं आत्मनिरीक्षण करके अपने आप का सुधार करो।

1094. प्रश्न—'कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय। आदि नाम जो गुप्त जपे, जाने बिरला कोय।' यह आदि नाम क्या है?

उत्तर—यह सब गोरखधंधा है। सारे नाम तथा मन्त्र मनुष्यों के कल्पित एवं रचित हैं जिसे जिस नाम एवं मन्त्र में श्रद्धा हो वह जप सकता है। इससे मनुष्य के मन में सात्विक प्रसन्नता होती है। मोक्ष का अर्थ है मन का वासनाहीन हो जाना। सारे संस्कारों, आग्रहों, प्रतिकारों, क्षोभों आदि से छुटकारा ही मोक्ष है। पूर्ण निर्भयता मोक्ष है। यह सच्चा विवेक उदय होने पर होता है।

1095. प्रश्न—दवा देने से पेट के कीड़े मरते हैं, तो क्या इससे हमें पाप पड़ेगा?

उत्तर—तुम तो रोगी को रोग-मुक्त करने के लिए दवा देते हो। तुम्हारा काम पुण्य का है।

1096. प्रश्न—हम दवा देकर मरीज से यदि कम पैसे लेते हैं तो मरीज कहता है कि इतनी सस्ती दवा से रोग कैसे दूर होगा! यदि ज्यादा पैसा लिया जाये तो रोगी को रोग-नाश होने पर विश्वास होता है। सन्त कहते हैं कि दवा का दाम उचित लिया करो। क्यों करें?

उत्तर—दाम उचित लो। तुम्हारी कार्य कुशलता से लोग धीरे-धीरे प्रभावित होंगे। इससे तुम्हारी आमदनी भी बढ़ेगी।

1097. प्रश्न—जब ज्ञान से सभी कर्म नष्ट होना माना जाता है, तब ज्ञानियों के भी रोगग्रस्त होने का क्या कारण है?

उत्तर—कर्म वे नष्ट होते हैं जो वासनागत एवं संस्कार रूप में हैं। जिन कर्मों के फलभोग प्रारब्ध रूप में हैं और शरीर में उदय होने के उन्मुख हैं, उनका नाश ज्ञान से नहीं होता। उनका तो भोग ही से क्षय होगा। ज्ञान की आग से मान्यता का जंगल जलता है, लकड़ी का नहीं।

1098. प्रश्न—मोह की पराकाष्ठा क्या है?

उत्तर—अपने माने गये नाम-रूप को प्रकाशित करने का भाव।

1099. प्रश्न—कर्म करे औ रहे अकर्मी, ऐसी युक्ति बतावे। सदा आनन्द फन्द से न्यारा, भोग में योग जगावे॥ इसका अभिप्राय क्या है?

उत्तर—ज्ञानी ऐसी युक्ति बताते हैं कि अशुभ कर्म करे नहीं, केवल शुभ कर्म करे और शुभ कर्म करते हुए भी उसके अहंकार तथा फल की कामना से रहित रहे तो मानो वह कर्म करते हुए भी अकर्म है। विषयों के माने हुए आनन्द के बन्धनों से अपने मन को सदैव अलग रखे अथवा बन्धनों से अलग रहकर सदैव त्याग में आनन्दित रहे और पूर्व से विद्यमान इस भोगी मन में योग का अभ्यास जाग्रत करे। अर्थात भोग-मार्ग छोड़कर योग एवं त्याग की तरफ बढ़े।

1100. प्रश्न—इच्छाओं पर विजय कैसे पायें?

उत्तर—उन्हें दुखदायी समझकर। श्रम करते चलो आवश्यकता की पूर्ति अपने आप होगी। इच्छा का सदैव त्याग करो क्योंकि वह पूरी होने वाली नहीं है।

1101. प्रश्न—अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। त्रिदेवा शाखा भये, पत्र भया संसार॥ इसका भाव क्या है?

उत्तर—यह आत्मा ही अक्षय पुरुष है। यही ज्ञान-विज्ञान का मूल होने से मानो पेड़ है। निरंजन मन है जो शाखा है। मन ही से सारी कल्पनाएं फैलती हैं। सत, रज तथा तम ये तीन गुण हैं। ये उपशाखाएं हैं। सारे कर्म त्रिगुणात्मक ही हैं। संसार का मतलब मोह-माया का जंजाल है जो पत्र है।

तुम्हीं अक्षय पुरुष आत्मा एवं चेतन हो। तुम्हीं मन, त्रिगुण-कर्म एवं मोह-प्रपंच में भूले हो। तुम इन्हें त्यागकर अपने आप में स्थित हो जाओ तो मुक्त ही हो।

इसका दूसरा अर्थ है ईश्वर आदि पुरुष वृक्ष है, हिरण्यगर्भ निरंजन है जो उसकी शाखा है, ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव उपशाखाएं हैं और संसार की विविधता उसके पत्ते हैं। परन्तु इस अर्थ में कोई बौद्धिक सन्तोष नहीं मिल सकता है और न इसमें कोई मानव के उपयोग की बात ही है।

1102. प्रश्न—हिन्दू पूर्व तथा मुसलिम पश्चिम तरफ झुककर नमस्कार क्यों करते हैं?

उत्तर—जिधर सूर्य उगता है उधर पूर्व कहते हैं। सूर्य प्रकाशस्वरूप होने से ज्ञान का प्रतीक है। अत: हिन्दू पूर्व की ओर झुककर मानो ज्ञान का आदर करते हैं। मुसलमानों का मूल पूजा-घर अरब देश के मक्का नगर में काबा है जो भारत के पश्चिम स्थित है। अत: वे अपने पूजा-घर की ओर झुककर उसका आदर करते हैं।

परन्तु कबीर साहेब ने उक्त दोनों को चेतावनी दी है कि मनुष्य का दिल ही पूजा-घर है और चेतन-आत्मा ही ज्ञान का सूर्य है। अत: हर दिल को आदर देना सच्ची उपासना है। उनका मूल वचन है—

पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥

(बीजक, शब्द 97/10-11)

1103. प्रश्न—श्री काशी साहेब ने कहा है "नेत्र आप को नाहीं देखत। जीभ निज स्वाद कभी नहिं लेवत।" इसी प्रकार जीव अपने आपको नहीं देखता। तो निज स्वरूप का ज्ञान कैसे हो?

उत्तर—तुम्हीं सबको जानने वाले हो। तुम्हारी सत्ता निर्विवाद है। तुम वासनाओं को छोड़कर अपने आप में शांत होओ।

1104. प्रश्न—मृत्यु के बाद जीव तुरन्त शरीर धारण करता है या देर में। यदि देर में धारण करता है तो उस समय कहां रहता है?

उत्तर—जीव एक शरीर छोड़ने के बाद दूसरा शरीर तुरन्त धारण करता है। उपयुक्त स्थान न मिलने पर कुछ देर हो सकती है। इस अन्तराल में उसे रहने की कोई स्थिर जगह की आवश्यकता नहीं। यह विशाल संसार क्या उसके लिए कम पड़ जायेगा! ये ऐसी रहस्यात्मक बातें हैं कि इन्हें ज्यों-का-त्यों बता पाना असम्भव है। जिस कलम से मैं यह उत्तर लिख रहा हूं इसमें लगे सारे जड़-कण एवं परमाणु इस कलम के निर्माण के पहले कहां थे, आज से सौ वर्ष पूर्व कहां थे, पानी की जो बूंदें कल हमारी छत पर पड़ी थीं, उनके परमाणु अब कहां हैं? बता पाना असम्भव है। परन्तु इन पदार्थों के सारे परमाणु सदा से रहे हैं तथा सदा रहेंगे। सत्ता का अन्त नहीं होता। केवल गमनागमन होता है। इसी प्रकार जीव भी जहां रहेगा वहां रहेगा। वह मिट नहीं सकता।

1105. प्रश्न—विवेक जड़ है या चेतन?

उत्तर—विवेक एक मनोभाव है। उसे जड़ नहीं कह सकते और वह जीव से अलग कोई स्वतन्त्र चेतन भी नहीं है। चेतन मनुष्य जब किन्हीं दो बातों का नीर-क्षीर निर्णय करता है, तब उस समय वह मनोदशा विवेक है।

1106. प्रश्न—कहा जाता है कि जीवों के अच्छे कर्मों से ही उन्हें मनुष्य-शरीर मिलते हैं। आजकल मनुष्यों की संख्या अधिक है, तो क्या आज के जीव ज्यादा अच्छे कर्म करने वाले हैं?

उत्तर—मनुष्य का यह भ्रम है कि पहले के लोग अच्छे थे, आज बुरे हैं तथा आगे अधिक बुरे हो जायेंगे। परन्तु ऐसी बात नहीं है। अच्छे-बुरे सब समय में होते हैं। आज ज्यादा मनुष्य हैं तो जीव ज्यादा अच्छे कर्म करने वाले आज सिद्ध हों तो क्या आश्चर्य है! इसके अलावा केवल मानव शरीर का मिलना मात्र ज्यादा सौभाग्य की बात नहीं है। ज्यादा सौभाग्य की बात है मानवीय-आचरण में चलना। यदि मानवीय-आचरण न हो तो मानव पशु-पक्षी से भी ज्यादा मलिन एवं दुखी है।

1107. प्रश्न—अधिकतर लोग अपने माने हुए देवता के साक्षात्कार का दावा करते हैं। क्या कोई देव होता है?

उत्तर—मानव के समान भी इस संसार में कोई देवता नहीं होता, तो मानव से बढ़कर देवता का होना कहना व्यर्थ ही है। मनुष्य का अपने आत्मा से अलग देवता की स्थापना करना उसका अपने आपको धोखा देना है। अत: सारे देवी-देवता निरे कल्पित हैं, फिर उनके साक्षात्कार का दावा करना एक भावुकता नहीं तो क्या है!

1108. प्रश्न—आसक्ति और कर्म से जीव के देह धारण में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—देह और पांचों विषयों में आसक्ति और इस आसक्ति से किये गये कर्म ही तो जीव के बन्धन हैं। इसी से जीव का मन भटकता है। जिसका मन भटकता है उसको संसार में भटकना ही है।

1109. प्रश्न—जैसे बीज से वृक्ष होते हैं, वैसे कर्म से देह होती है। इसका खुलासा क्या है?

उत्तर—जैसा बीज होगा वैसा वृक्ष। आम, कटहल, नीबू, बेर आदि के बीज से उन्हीं के तो वृक्ष होंगे। इसी प्रकार जीव ने जैसे कर्म किये हैं उन्हीं के अनुसार उसे देह तथा सुख-दुख भोग मिलेंगे।

जो ज्यादा काम की बात है वह है वर्तमान में अपने मन, वाणी तथा कर्मों का सुधार करना। यही जीवन का सुधार है। जीवन के सुधार में ही जीव को शांति मिलेगी।

हम जितना अपने मन को इच्छाओं से रहित रखेंगे, अर्थात हमारी इच्छाएं जितनी कम होंगी उतनी हमें शांति मिलेगी। हम दूसरे की वस्तुओं को देखकर उसी प्रकार वस्तुएं पाने की इच्छा में न पड़ें। संसार में वस्तुएं सबको समान रूप से नहीं मिलतीं। अतएव सदैव अपने मन को बटोरकर रखना चाहिए। रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़े तथा खाने के लिए रोटी मिल जाये, बस क्या चाहिए!

1110. प्रश्न—मानव-जीवन का परम लक्ष्य क्या है?

उत्तर—पूर्ण आत्मविश्राम एवं जीवन में गहरी शांति जीवन-आनंद की पराकाष्ठा है। यही जीवन का परम लक्ष्य है।

1111. प्रश्न—इस लक्ष्य की प्राप्ति कैसे होगी?

उत्तर—स्वरूपज्ञान और पूर्ण निर्मोहता से।

लेखक की अन्य कृतियां

बीजक टीका (सजिल्द)	80.00
बीजक टीका (अजिल्द)	70.00
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड	225.00
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड	225.00
बीजक प्रवचन	45.00
कबीर बीजक शिक्षा	90.00
संत कबीर और उनके उपदेश	100.00
कहत कबीर	110.00
कबीर दर्शन	200.00
कबीर : जीवन और दर्शन	40.00
कबीर का सच्चा रास्ता	20.00
कबीर की उलटवांसियां	25.00
कबीर अमृतवाणी सटीक	40.00
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	35.00
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि	13.00
कबीर कौन?	3.00
कबीर सन्देश	3.00
कबीर का प्रम	4.00
कबीर साहेब	7.00
कबीर का पारख सिद्धांत	30.00
कबीर परिचय सटीक	37.00
पंचग्रथी सटीक	200.00
विवेक प्रकाश सटीक	100.00
बोधसार सटीक	35.00
रहनि प्रबोधिनी सटीक	50.00
गुरुपारख बोध सटीक	17.00
मुक्तिद्वार सटीक	75.00
रामायण रहस्य	200.00
वेद क्या कहते हैं?	175.00
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)	80.00
मानसमणि	28.00
तुलसी पंचामृत	25.00
उपनिषद् सौरभ	55.00
योगदर्शन	55.00
गीतासार	55.00
वैदिक राष्ट्रीयता	6.00
श्री कृष्ण और गीता	6.00
मोक्ष शास्त्र	90.00
कल्याणपथ	30.00
ब्रह्मचर्य जीवन	28.00
बूंद बूंद अमृत	18.00
सब सुख तेरे पास	18.00
बसै आनंद अटारी	20.00
छाड़हू मन विस्तारा	15.00
घूंघट के पट खोल	20.00
हंसा सुधि करू अपनो देश	20.00
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को	18.00
समुद्र समाना बुंद में	20.00
मेरी और ह्वेन सां की डायरी	28.00
बंदे करले आप निबेरा	20.00
शाश्वत जीवन	35.00
सहज समाधि	13.00
ज्ञान चौंतीसा	13.00
सपने सोया मानवा	10.00
ढाई आखर	35.00
पारख समाधि क्या है?	2.50
धर्म को डुबानेवाला कौन?	30.00
समझे की गति एक है	30.00
धर्म और मजहब	22.00
जीवन का सच्चा आनंद	25.00
प्रश्नोत्तरी	100.00
पत्रावली	65.00
संसार के महापुरुष	140.00
फूले और पेरियार	4.00
व्यवहार की कला	25.00
स्त्री बाल शिक्षा	25.00
आप किधर जा रहे हैं?	12.00
स्वर्ग और मोक्ष	17.00
ऐसी करनी कर चलो	25.00
ये भ्रम भूत सकल जग खाया	30.00
सरल शिक्षा	28.00
जगन्मीमांसा	27.00
बुद्धि विनोद	15.00
हृदय के गीत	25.00
वैराग्य संजोवनी	20.00
भजनावली	20.00
आदेश प्रभा	3.00
राम से कबीर	12.00
अनंत की ओर	10.00
कबीरपंथी जीवनचर्या	12.00
अहिंसा शुद्धाहार	8.00
हितोपदेश समाधान	10.00

मैं कौन हूं ?	5.00
ब्राह्मण कौन ?	7.00
नास्तिक कौन ?	2.00
कृष्ण कौन ?	3.00
संत कौन ?	3.00
हिन्दू कौन ?	3.00
जीवन क्या है ?	4.00
ध्यान क्या है ?	4.00
योग क्या है ?	4.00
ईश्वर क्या है ?	6.00
अद्वैत क्या है ?	5.00
जागत नींद न कीजै	2.50
सरल बोध	4.00
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	3.00
सत्यनिष्ठा	40.00
कबीर अमृतवाणी वाणी (बड़ी)	80.00
बुद्ध क्या कहते हैं ? (सटीक)	13.00
गृहस्थ धर्म	65.00
कबीर खड़ा बाजार में	65.00
सत्य की खोज	70.00
स्वभाव का सुधार	65.00
भूला लोग कहे घर मेरा	30.00
ऊची घाटी राम की	35.00
शंकराचार्य क्या कहते हैं ?	90.00
न्यायनामा (सटीक)	15.00
भवयान	140.00
विष्णु और वैष्णव	5.00
बीजक टीका (मराठी)	110.00
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर	140.00
लाओत्ज़े क्या कहते हैं ?	130.00
राम नाम भजु लागू तीर	18.00
आत्मसंयम ही राम भजन है	25.00
आत्मधन की परख	20.00

ENGLISH TRANSLATION

Kabir Bijak (Commentary)	90.00
Eternal Life	50.00
Art of Human Behaviour	40.00
Who am I?	6.00
What is Life?	6.00
Kabir Amritvani	125.00
The Bijak of Kabir (In Verses)	110.00
Kabir Bijak (Elucidation Sakhi Chapter)	250.00
Sant Kabir and his Teaching	200.00
Life and Philosophy of Kabir	50.00

गुजराती अनुवाद

बीजक मूल	30.00
बीजक व्याख्या : भाग-1	250.00
बीजक व्याख्या : भाग-2	250.00
कबीर अमृतवाणी	50.00
अढ़ी अक्षर प्रेम ना	60.00
व्यवहार नी कला	40.00
गुरुपारख बोध	20.00
स्त्री बाल शिक्षा	35.00
शाश्वत जीवन	45.00
ध्यान क्या है ?	5.00
हूं कोण छूं ?	6.00
धर्म ने डुबारनार कोण ?	45.00
जीवन शुं छे ?	6.00
ईश्वर शुं छे ?	6.00
कबीर सन्देश	5.00
श्री कृष्ण अने गीता	7.00
कबीर नो साचां प्रेम	6.00
गुरुवंदना	6.00
संत कबीर अने ओमना उपदेश	150.00

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत

बीजक मूल (छोटा)	20.00
बीजक मूल (बड़ा)	25.00
कबीर भजनावली (भाग-1)	23.00
कबीर भजनावली (भाग-2)	23.00
न्यायनामा **(श्री निर्मल साहेब)**	3.00

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत

विवेक प्रकाश मूल	12.00
बोधसार मूल	5.00
रहनि प्रबोधिनी मूल	4.00

भजन प्रवेशिका **(श्री निर्बंध साहेब)**	80.00

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत

विशाल वचनामृत	80.00

संत श्री धर्मेंद्र साहेब कृत

कबीर के ज्वलंत रूप	25.00
सारसार को गहि रहे	25.00
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत	3.00
पूजिय विप्र शील गुण हीना	2.50
सबकी मांगे खैर	40.00
सुखी जीवन की कला	55.00
बूंद बूंद से घट भरे	55.00

गुजराती अनुवाद

सुखी जीवन नी कला	70.00
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत	5.00

संत श्री अशोक साहेब कृत

पानी में मीन पियासी	25.00
धनी कौन?	17.00
बोध कथाएं	40.00
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	30.00

श्री भावसिंह हिरवानी कृत

कबीर (नाटक)	40.00
प्रेरक कहानियां	40.00
जीवन का सच	40.00
काया कल्प	25.00
समर्पण	15.00
बाल कहानियां	17.00
माटी का मोह	—

अन्य लेखकों की

गुरुवंदना (संकलित)	5.00
कल्पतरु (घनश्याम प्रसाद वर्मा)	15.00
संत वचनामृत (अज्ञात)	2.00
विनय पद (श्री सजीवन साहेब)	10.00
आत्म संयम (")	17.00
जग बौराना (रणजीत सिंह)	20.00
ज्ञान गीता (विष्णुदयाल साहेब)	6.00
पुष्पांजलि (डा. नीलमणि)	3.00
जीवन गीत (श्री जीवन साहेब)	3.00
भक्ति ज्ञान प्रकाश (बलदेव साहेब)	3.00
मधुसंचय (सत्यानंद त्यागी)	15.00
आनंद सिंधु (")	30.00
परख बोध (श्री मनी लाल)	18.00
कसौटी (श्री शिवप्रसाद मिश्र)	25.00
जन जन संत कबीर (श्री गोविंद देव)	3.00
संत ईसा और कबीर (श्री विल्सन जॉन)	3.00
कबीर एक नया चिन्तन (श्री आत्मा प्रसाद उपाध्याय)	35.00
विचार माला (श्री विश्वनाथ श्रीवास्तव)	40.00

कबीर पारख संस्थान

संत कबीर रोड, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211 011

लेखक की अन्य कृतियां

बीजक टीका (सजिल्द)	80.00
बीजक टीका (अजिल्द)	70.00
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड	225.00
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड	225.00
बीजक प्रवचन	45.00
कबीर बीजक शिक्षा	90.00
संत कबीर और उनके उपदेश	100.00
कहत कबीर	110.00
कबीर दर्शन	200.00
कबीर : जीवन और दर्शन	40.00
कबीर का सच्चा रास्ता	20.00
कबीर की उलटवांसियां	25.00
कबीर अमृतवाणी सटीक	40.00
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	35.00
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि	13.00
कबीर कौन?	3.00
कबीर सन्देश	3.00
कबीर का प्रेम	4.00
कबीर साहेब	7.00
कबीर का पारख सिद्धांत	30.00
कबीर परिचय सटीक	37.00
पंचग्रथी सटीक	200.00
विवेक प्रकाश सटीक	100.00
बोधसार सटीक	35.00
रहनि प्रबोधिनी सटीक	50.00
गुरुपारख बोध सटीक	17.00
मुक्तिद्वार सटीक	75.00
रामायण रहस्य	200.00
वेद क्या कहते हैं?	175.00
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)	80.00
मानसमणि	28.00
तुलसी पंचामृत	25.00
उपनिषद् सौरभ	55.00
योगदर्शन	55.00
गीतासार	55.00
वैदिक राष्ट्रीयता	6.00
श्री कृष्ण और गीता	6.00
मोक्ष शास्त्र	90.00
कल्याणपथ	30.00
ब्रह्मचर्य जीवन	28.00
बूंद बूंद अमृत	18.00
सब सुख तेरे पास	18.00
बसै आनंद अटारी	20.00
छाड़हू मन विस्तारा	15.00
घूंघट के पट खोल	20.00
हंसा सुधि करू अपनो देश	20.00
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को	18.00
समुद्र समाना बुंद में	20.00
मेरी और ह्वेन सां की डायरी	28.00
बंदे करले आप निबेरा	20.00
शाश्वत जीवन	35.00
सहज समाधि	13.00
ज्ञान चौंतीसा	13.00
सपने सोया मानवा	10.00
ढाई आखर	35.00
पारख समाधि क्या है?	2.50
धर्म को डुबानेवाला कौन?	30.00
समझे की गति एक है	30.00
धर्म और मजहब	22.00
जीवन का सच्चा आनंद	25.00
प्रश्नोत्तरी	100.00
पत्रावली	65.00
संसार के महापुरुष	140.00
फूले और पेरियार	4.00
व्यवहार की कला	25.00
स्त्री बाल शिक्षा	25.00
आप किधर जा रहे हैं?	12.00
स्वर्ग और मोक्ष	17.00
ऐसी करनी कर चलो	25.00
ये भ्रम भूत सकल जग खाया	30.00
सरल शिक्षा	28.00
जगन्मीमांसा	27.00
बुद्धि विनोद	15.00
हृदय के गीत	25.00
वैराग्य संजीवनी	20.00
भजनावली	20.00
आदेश प्रभा	3.00
राम से कबीर	12.00
अनंत की ओर	10.00
कबीरपंथी जीवनचर्या	12.00
अहिंसा शुद्धाहार	8.00
हितोपदेश समाधान	10.00

मैं कौन हूं?	5.00
ब्राह्मण कौन?	7.00
नास्तिक कौन?	2.00
कृष्ण कौन?	3.00
संत कौन?	3.00
हिन्दू कौन?	3.00
जीवन क्या है?	4.00
ध्यान क्या है?	4.00
योग क्या है?	4.00
ईश्वर क्या है?	6.00
अद्वैत क्या है?	5.00
जागत नींद न कीजै	2.50
सरल बोध	4.00
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	3.00
सत्यनिष्ठा	40.00
कबीर अमृतवाणी वाणी (बड़ी)	80.00
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)	13.00
गृहस्थ धर्म	65.00
कबीर खड़ा बाजार में	65.00
सत्य की खोज	70.00
स्वभाव का सुधार	65.00
भूला लोग कहे घर मेरा	30.00
ऊची घाटी राम की	35.00
शंकराचार्य क्या कहते हैं?	90.00
न्यायनामा (सटीक)	15.00
भवयान	140.00
विष्णु और वैष्णव	5.00
बीजक टीका (मराठी)	110.00
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर	140.00
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?	130.00
रामनाम भजु लागू तीर	18.00
आत्मसंयम ही राम भजन है	25.00
आत्मधन की परख	20.00

ENGLISH TRANSLATION

Kabir Bijak (Commentary)	90.00
Eternal Life	50.00
Art of Human Behaviour	40.00
Who am I?	6.00
What is Life?	6.00
Kabir Amritvani	125.00
The Bijak of Kabir (In Verses)	110.00
Kabir Bijak (Elucidation Sakhi Chapter)	250.00
Sant Kabir and his Teaching	200.00
Life and Philosophy of Kabir	50.00

गुजराती अनुवाद

बीजक मूल	30.00
बीजक व्याख्या : भाग-1	250.00
बीजक व्याख्या : भाग-2	250.00
कबीर अमृतवाणी	50.00
अढ़ी अक्षर प्रेम ना	60.00
व्यवहार नी कला	40.00
गुरुपारख बोध	20.00
स्त्री बाल शिक्षा	35.00
शाश्वत जीवन	45.00
ध्यान क्या है?	5.00
हूं कोण छूं?	6.00
धर्म ने डुबारनार कोण?	45.00
जीवन शुं छे?	6.00
ईश्वर शुं छे?	6.00
कबीर सन्देश	5.00
श्री कृष्ण अने गीता	7.00
कबीर नो साचां प्रेम	6.00
गुरुवंदना	6.00
संत कबीर अने अेमना उपदेश	150.00

पुस्तक मिलने का पता

कबीर पारख संस्थान

संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211 011

दूरभाष : (0532) 2436820, 2436020, 2436100